प्रोफेसर रामदरश मिश्र

(सरस्वती सम्मान से सम्मानित व्यक्तित्व)
(संरक्षक)

INTERNATIONAL PEER- REVIEWED(REFEREED) JOURNAL

RNI (UPHIN/2021/80567)

साहित्य मेघ

ISSN: 2583 - 5750

(साहित्यिक हिंदी मासिक)
प्रकाशन का आरंभिक माह/वर्ष/ः अप्रैल 2021

सम्पादक मण्डल

भारत

प्रोफेसर ओमप्रकाश सिंह
भारतीय भाषा केन्द्र,जे.एन.यू.
नई दिल्ली
opsingh@mail.jnu.ac.in
M:(९८९९४४६८६१)
प्रोफेसर चन्द्रदेव यादव
विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग,
जामिया मिल्लिया इस्लामिया,नई दिल्ली
cyadav@jmi.ac.in
M: (९८१८१५८७४५)
प्रोफेसर जितेंद्र श्रीवास्तव
विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग,
इंदिरा गांधी ओपन विश्वविद्यालय (इग्नू),
नई दिल्ली
jksrivastava@ignou.ac.in
M:9818913798
प्रोफेसर राज कुमार
M:09415201281
drrajkumar@bhu.ac.in
हिंदी विभाग,काशी हिंदू विश्वविद्यालय ,वाराणसी
प्रोफेसर प्रभाकर सिंह
(9450623078)
prabhakarhindi@bhu.ac.in
प्रोफेसर,हिंदी विभाग,काशी
हिंदू विश्वविद्यालय,वाराणसी

प्रोफेसर श्रद्धा सिंह ९४१५५३०५८७
प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
shraddha.singh@bhu.ac.in
डॉ.आभा गुप्ता ठाकुर
प्रोफेसर, हिंदी विभाग,काशी हिंदू
विश्वविद्यालय,वाराणसी
(9450960955)
abhag.hindi@bhu.ac.in
डॉ.गाजुला राजू
सहायक प्राध्यापक,हिन्दी एवं आधुनिक
भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद
विश्वविद्यालय,प्रयागराज २११००२
(9059379268)
raju.g@allduniv.ac.in
डॉ.जर्नादन
(सहायक प्राध्यापक)
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
9026258686
janardan@allduniv.ac.in
डॉ. बिजय कुमार रबिदास
bkrabidas@allduniv.ac.in
9432345604
सहायक आचार्य हिन्दी एवं आधुनिक
भारतीय भाषा विभाग,इलाहाबाद
विश्वविद्यालय,प्रयागराज २११००२

विदेश

प्रोफ़ेसर उल्फत मुखीबोवा
ulpatxon_muxibova@tsuos.uz
M:998946443037
Tashkand State
University of
Oriental Studies,
Tashkand,Uzbekistan
प्रोफेसर ग्युज़ेल स्त्रेलकोवा
str@iaas.msu.ru.
M: +79199933635
एशिया और अफ़्रीकी देश
अध्ययन संस्थान,मास्को राजकीय
विश्वविद्यालय,मास्को
Farzaneh Azam Lotfi
f.azamlotfi@ut.ac.ir
Associate Professor
Department of foreign
languages
University of Tehran,Iran

परामर्श मण्डल

भारत

डॉ. प्रताप सहगल
(९८१०६३८५६३)
प्रो. अब्दुल बिस्मिल्लाह
(९८११३०६३३१)
डॉ.शशि सहगल
(९८९९१६६१२९)
प्रो. कृपाशंकर पाण्डेय
(९९८४५२३७०६)
प्रो. मोहन
(९८७१११५५००)
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
प्रो.लालचंद राम
९९९००७०८९५
विभागाध्यक्ष,एन सी ई आर टी
प्रो.राम आहलाद चौधरी
(९४३२०५१५००)
(विभागाध्यक्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय)
प्रोफेसर (पूर्व) शत्रुघ्न कुमार

shatrughnakumar@ignou.ac.in

प्रो.चंदा देवी
(८००४९२८४४१)(इला. यू.)
प्रो. रामकली सराफ
(९३८९४३२१६५)
डॉ० प्रभा पंत
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग,
एम०बी०रा०स्ना०महाविद्यालय,हल्द्वानी
dr.prabhapant@gmail.com
प्रो. रूबी जुत्शी
कश्मीर यूनिवर्सिटी
९४१९०५८५८५

विदेश

प्रो. सरन घई
(±१ (६४७) ९९३-०३३०)
कनाडा
तेजेन्द्र शर्मा
(४४ ७४००३१३४३३)
(यू.के.)
प्रो. पुष्पिता अवस्थी
(±९१ ७०५८४-६२९५१)
(www.pushpitaawasthi.com)
नीदरलैंड
डॉ. सुरेश चंद्र शुक्ल
'शरद आलोक'
(±४७ ९००७०३१८)
(speil.nett@gmail.com)
नॉर्वे
अनुराग शर्मा
(±१ (४१२) ६९२-१३६२)
(indiasmart@gmail.com)
अमेरिका
रेखा राजवंशी
(±61 403116301)
ऑस्ट्रेलिया

प्रकाशक, मुद्रक और मालिक डॉ. मो. सलीम ने अज़ीम इंडिया प्रिंटर्स, अटाला, प्रयागराज (इलाहाबाद) में छपवा कर ४८३ अटाला, प्रयागराज (इलाहाबाद) से प्रकाशित किया।सम्पादक डॉ.मो.सलीम,४८३अटाला,प्रयागराज (इलाहाबाद)सभी मामले प्रयागराज (इलाहाबाद) की ही अदालत में होंगे।

साहित्य मेघ

sahityamegh.com
sahityamegh@gmail.com

दिसम्बर 2023
वर्षः3,अंकः12

डॉ. दानिश
9919142411
प्रधान संपादक

डॉ.राजविंदर कौर
9759912434
सह-संपादक (अवैतनिक)

डॉ.तबस्सुम जहां
9873104110
उप-संपादक (अवैतनिक)

कृष्ण कुमार जायसवाल
9450827797
प्रूफ रीडर

नवगीत और जातीय अस्मिता	डॉ. राजेन्द्र गौतम	४
छत्तीसगढ़ी प्रहेलिका : एक दृष्टि	प्रो.रामनारायण पटेल	९
कालिदास के साहित्य का मानस पर प्रभाव	प्रोफेसर जय मंगल पाण्डेय	१३
'हरिकृष्ण 'प्रेमी' के नाटकों में चित्रित समाज'	कृष्ण कुमार जायसवाल	१८
राष्ट्र की आत्मकथा के रूप में साहित्य	डॉ. संजय गौतम	२५
मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी की रचनाओं में व्यंग्य के रंग	डॉ. संजय गौतम	३२
पुनर्नवाः लोक एवं शास्त्र का द्वंद्व	संजीव कुमार मिश्र	३८
विज्ञापनों की दुनिया एवं हिन्दी की भूमिका	डॉ० गरिमा सिंह	४१
उर्दू में रामकथा में लीन मुस्लिम राम भक्त	डॉ० अजय मालवीय	४६
दलित उत्थान में बाबा साहेब की भूमिका	हरीश राम	५०
नई कहानी :कुछ विचार, कुछ बिन्दु	वांग मेइचेन (Wang Meicen)	५६
प्रेमचंद की कथा-परंपरा में अमरकांत	गैन लूटिंग (Gan Luting)	५९
निर्मला पुतुल की कविताओं में पारिस्थितिक स्त्रीवादी चिंतन	सोनू कुमार ठाकुर	६४
हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों में नारी का बदलता परिवेश	नाइराह कुरेशी	६८
स्त्री अस्मिता संघर्ष और जिजीविषा का सशक्त रूप-छिन्नमस्ता	सुशीला बाई	७३
'तीसरी ताली' उपन्यास में चित्रित एलजीबीटी	सीमा कुशवाहा	७७
भोजपुरी थारू लोकगीतों में स्त्री की विरह वेदना	अवधेश कुमार	८२
बंगमहिला और हिन्दी नवजागरण की रुपरेखा	चंचल साह	८५
'कफ़न' परजीवी संस्कृति का आईना	धर्मवीर सिंह	९१
'कहब त लग जाई धक से' आर्टिकल-१५ फ़िल्म में दलित सरोकार	सुरेंद्र कुमार	९४
ज्योतिपंखी गीत	डॉ हरिश्चन्द्र वर्मा	९८

नवगीत और जातीय अस्मिता

डॉ. राजेन्द्र गौतम

पूर्व प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

समकालीन हिंदी आलोचना के सन्दर्भ में नवगीत और जातीय अस्मिता जैसे पद काफी असुविधा पैदा करते हैं क्योंकि हिन्दी आलोचना और रचना से जुड़ा एक वर्ग इन दोनों के प्रति न तो सहज रूप से ग्रहणशील है और न ही इनकी प्रासंगकिता के प्रति आश्वस्त है। नवगीत का एक उभार नवें दशक में 'नवगीतदशक' योजना के साथ आया था। इक्कीसवीं सदी का आरंभ फिर इसके नए उभार के साथ हुआ है। इन दो दशकों में कई अच्छे नवगीत-संग्रह प्रकाशित हुए हैं लेकिन तथाकथित मुख्यधारा का आलोचक इस रचनात्मकता को आज भी पूरी तरह नजरअंदाज किए है और विडम्बना यह है कि 'इलीट' वर्ग तक सीमित, फिर भी जनवादी कही जाने वाली ऐसी कविता जिसे डॉ. दूधनाथ सिंह ने एक नई किस्म का रीतिकाल कहा है, उसकी दृष्टि के केन्द्र में बनी रही है। इससे भी बड़ी विडम्बना यह है कि सैद्धान्तिक रूप में इस आलोचक को साहित्य में जिस प्रगतिशील और समष्टि-उन्मुखी युगबोध की उपस्थिति की अपेक्षा रहती है, नवगीत की उपेक्षा का कारण उस युगबोध की अनुपस्थिति नहीं है अपितु गीत एवं छन्द के प्रति 'एलर्जिक' होना ही इसके मूल में है। इसी 'एलर्जी' के कारण अनेक आलोचक बिना पढ़े ही नवगीत पर अति रोमानियत का आरोप तो लगा ही देते हैं, उसे अबौद्धिक कहकर कविता से अलग 'केटेग्राइज' करके उसे बिरादरी से बाहर करने का षड्यंत्र भी रचते हैं।

नवगीत अब छह दशक की यात्रा पूरी कर चुका है। इन छह दशकों में हिन्दी कविता में अनेक प्रवृत्तिगत परिवर्तन हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि एक 'लेमैन' तो आज भी समूची छन्दमुक्त कविता को 'नयी कविता' के रूप में ही जानता है, जबकि यह सन् ६२-६३ तक आते-आते ही मृतप्रायः हो गई थी। मुक्तिबोध की मृत्यु के साथ ही महत्त्व प्राप्त करने वाली नवप्रगतिशील कविता, तदनन्तर आपात्काल के आतंक की प्रतिक्रिया में जन्मी कविता और फिर अस्सी और नब्बे के दौर में आम आदमी और जनवाद की कविता अन्ततः भूमण्डलीकरण और उत्तराधुनिकता के दौर तक पहुँचती है। इन पाँच दशकों में अपेक्षाकृत विशिष्ट अभिव्यक्तिगत क्षमता का परिचय देते हुए नवगीत ने भी हिन्दी कविता में समकक्ष पूरकता की भूमिका का निर्वाह किया है और यह धारा किसी भी रूप में जड़ीभूत नहीं हुई है। इसमें समूची हिन्दी कविता के समानान्तर निरन्तर प्रवृत्तिगत परिवर्तन हुए हैं परन्तु यह प्रवृत्तिसाम्य किसी भी रूप में नवगीत के व्यक्तित्व का विलय नहीं है अपितु युगबोध के सजग वहन के साथ-साथ इसकी कुछ व्यावर्तक विशेषताएँ हैं। लयात्मक अभिव्यक्ति के साथ-साथ जातीय अस्मिता की अभिव्यक्ति गत पाँच-छह दशकों

की हिन्दी कविता में नवगीत की अपनी पहचान रेखांकित करती हैं।

आरम्भ में ही हमने कहा था कि जातीय अभिव्यक्ति को भी आज के अनेक विमर्श ग्राह्य मूल्य नहीं मानते। इसीलिए बारीक अक्षरों में लिखी जाने वाली 'स्टैचूएरी वार्निंग' की तरह ध्यान में रखना होगा कि इस अवधारणा को एक संकीर्णतावादी दृष्टि से जोड़ना साहित्य के लिए अहितकर भी हो सकता है। जातीयता का एक अनुवाद 'नेशनलिटी' भी कर लिया जाता है और 'नेशनलिटी' का पुनरनुवाद राष्ट्रीयता है। आज राष्ट्रवाद को वर्चस्व की संस्कृति का लक्षण बतलाते हुए एक ओर जहाँ इसे उस संकीर्णतावादी उभार से जोड़ा जाता है, जिसकी उपस्थिति उन्नीसवी-बीसवीं शती में आधुनिक काल की प्रथम दो चरणों की कविता में और आलोचना में तो दिखलाई देती ही है, दूसरी ओर यह एक खतरनाक समकालीन राजनैतिक एजेन्डा भी है, जिसे एक भावनात्मक 'रेजिमेन्टशन' के रूप में देखा जाता है। हमारा मानना है कि नवगीत में जातीय अस्मिता की उपस्थिति इन रूपों में नहीं है या नहीं होनी चाहिए। वास्तव में यहाँ जातीय अस्मिता किसी संकीर्ण राष्ट्रवाद की स्थापना न हो कर 'देश' से जुड़ने की, उससे भौगोलिक परिचय प्राप्त करने और उसे प्रगाढ़ करने की मनःस्थिति से सम्बद्ध है। निश्चित रूप से जातीयता का सम्बन्ध संस्कृति से है, पर यह संस्कृति विविधता -- डाइवर्सिटी -- की ही द्योतक है। यदि इस वैविध्य-सम्पन्न जातीयता अथवा सांस्कृतिकता का कोई प्रतिलोम है तो वह है-- वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण। विश्वग्राम का नारा लेकर आनेवाले उत्तर आधुनिक सन्दर्भ गज़ब की एकरूप संस्कृति रच रहे हैं। बीसवीं सदी का अंतिम दशक बोलियों और लोक-भाषाओं को हड़पता हुआ आया। विज्ञापित माल की एकरूप समता की आँधी हमारी सांस्कृतिक जड़ों को झकझोरती हुई आई। आदमी की पहचान 'वस्तु' के रूप में स्थापित हो रही है और साहित्य तथा संस्कृति की 'उत्पाद' के रूप में। ग्लोबलाइजेशन तमाम आंचलिक विशेषताओं को निगलता हुआ आया था। अपनी अस्मिता को अपनी ही भूमि पर बचाने का प्रयास वैसा ही नहीं होता, जैसा 'डायस्पोरा साहित्य' में कई बार रूढ़ियों को बंदरिया के मृत बच्चे की तरह छाती से चिपटाने के प्रयास के रूप में देखा जाता है अपितु नवगीत ने जातीय अस्मिता के सवाल को भिन्न रूप में देखा है। यहाँ तक कि बाज़ारवाद की वर्तमान आँधी में विश्वग्राम के 'हिडन एजेंडा' के माध्यम से होने वाले आर्थिक शोषण को भी उसने पहचाना है। गुलाब सिंह, अनूप अशेष और कैलाश गौतम के गाँव आज शोषण और विकृति से घिर कर कैसे होते जा रहे हैं, उनकी चिन्ता के बहुत-से पक्ष जातीय अस्मिता से ही जुड़े हैं। विशेष यह है कि विश्वग्राम के एकरूपता वाले इस खतरे को हिन्दी साहित्यकारों ने जब पहचाना, उससे पहले से ही नवगीत इसकी ओर ध्यान दिलाता रहा है।

जातीयता की अभिव्यक्ति की दो दिशाएँ होती हैं-- प्रकृति और संस्कृति। प्रकृति का आगामी विस्तार लोक-चेतना, आंचलिकता और दृश्यात्मक प्रकृति में होता है, संस्कृति की व्याप्ति सामाजिक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में, लोकाचारों में, उत्सवों-पर्वों में तथा जीवन-मरण के अनेक प्रसंगों में होती है। सन् '४३ के बाद का 'नयी कविता' का आंदोलन एक कृत्रिम अन्तर्राष्ट्रीयता के दावे के साथ कविता को परम्परा और संस्कृति से काट देता है और साहित्य में जातीय अस्मिता लुप्त होती नजर आती है। इसीलिए डॉ. शंभुनाथ सिंह नवगीत के स्वरूप की व्याख्या करते हुए सर्वाधिक बल जातीय अस्मिता पर ही देते हैं। वे चार दशक पहले 'नवगीत दशक-दो' की भूमिका में लिखते हैं--"नवगीत आधुनिकतावादी कविता है, किन्तु वह आधुनिकता को सार्वभौम और सार्वकालिक नहीं बल्कि देश-काल-सापेक्ष मानता है। अतः आधुनिकता भारतीय परिप्रेक्ष्य वाली विशिष्ट आधुनिकता है... नवगीत भारत की आत्मा को प्रतिबिम्बित करने वाली कविता है... यह लोकधर्मी और लोकाश्रयी कविता है, यह नयी कविता की तरह गिने-चुने अभिजात जनों (एलीट) की कविता नहीं है... नवगीत इस अर्थ में भी भारतीय कविता है कि वह अपने देश की ज़मीन और सामान्य जनता से जुड़ा है। उसकी जड़े गहरायी तक भारतीय जनजीवन में घुसी हैं। वह देश की आँचलिक संस्कृति और विभिन्न क्षेत्रों की लोकधर्मिता को अपना उपजीव्य बना कर आदिम बिम्बों की सृष्टि करता है और इस तरह भारतीय अस्मिता को उजागर करता है। फलतः वह नयी कविता की भाँति विदेशों से आयातित कविता नहीं बल्कि भारतीय मिट्टी की बहुविध रस-गन्ध में रची बसी देसी कविता है।"

नयी कविता के बाद धूमिल आदि के माध्यम से हिन्दी कविता आर्थिक स्तर पर भारतीय सन्दर्भों की ओर मुड़ती जरूर है परन्तु क्रमशः अपने वक्तव्य-प्रधान स्वरूप में वह अनुभव और चेतना के स्तर पर जनजीवन से नहीं जुड़ पाती। बाद में तो संप्रेषण की विकलांगता ने कविता के अस्तित्व को ही संकटग्रस्त बना दिया है। समकालीन कविता का बहुलांश ऐसा है, जिसमें ऋतुएँ गायब हैं, गाँव अनुपस्थित हैं, प्रकृति का दूर-दूर तक अस्तित्व नहीं, लोक-भाषा की ऊष्मा नहीं, जिसका उत्सव-धार्मिता से कोई नाता नहीं, जबकि नवगीत या तो इन स्थितियों के माध्यम से जन के मन से जुड़ा है अथवा उसने इनकी अनुपस्थिति से उत्पन्न हुए शून्य को रेखांकित किया है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि नवगीत 'बारहमासा' या 'कैलेंडर-गाथा' है अथवा यह प्रगति-विरोधी है। स्थिति इससे भिन्न है। यह सही है कि नवगीत में जातीय अस्मिता के चित्रण के सन्दर्भ में अकसर अतीत उभरा है, अकसर कवि नोस्टैल्जिक भी हुए हैं, अकसर इसमें पुरा-बिम्बों का प्रयोग हुआ है, अकसर भारतीय मिथक वर्तमान के चित्रण के लिए आए है परन्तु ये स्थितियाँ इसी प्रकार प्रगति-विरोधी नहीं हैं, जिस प्रकार मिथकों के प्रयोग से त्रिलोचन जन-कविता के लिए अछूत नहीं हो जाते। जब नवगीतकार यह कहता है-- 'ये शहर होते गाँव पहचाने नहीं जाते' तो इसका अर्थ यह नहीं है कि नवगीत विकास का विरोध कर रहा है। यहाँ तो संकेतित विकृतियों का ही, उल्लेख प्रासंगिक है। गुलाबसिंह गाँव की इस सांस्कृतिक शाश्वता को यदि यों रेखांकित करते हैः

जलती यहाँ वहाँ बुझ जाती
आँच अलावों की
गोरी कभी साँवली दिखती
काया गाँवों की

तो वे उसके अन्तहीन शोषण का इतिहास भी तो इस रूप में लिखते हैः

शब्दों के हाथी पर
ऊँघता महावत है,
गाँव इधर
लाठी और भैंस की कहावत है
शीत-घाम का वैभव,
रातों का अंधकार,
पकते गुड़ की सुंगध
धूल धुएँ का गुबार,
पेट-पीठ के रिश्ते
ढो रहा यथावत है

यह सही है कि नवगीत में 'पिछले दिन' हैं अर्थात् 'छूटे हुए अतीत की कचोट' कुछ ज्यादा ही है। परन्तु क्या यह स्मृति-उद्वेग कुछ टूट जाने, कुछ छूट जाने के कारण नहीं हैं? यह टूटना और छूटना क्या मनुष्यता का ही नहीं है? इसके बावजूद कुछ फार्मूलबद्ध नवगीतकारों को एक नकली विलाप करते भी देखा जा सकता है। देश-काल की विभीषिका से आँख चुरा कर अतीतमोह की माँद में छिपने वाला कलमकार साहित्य को वरेण्य नहीं दे सकता। यों बात केवल अतीत की नहीं है। आशंकाएँ भविष्य को लेकर भी हैं। नवगीत जब जीवन में जातीय अस्मिता को अनुपस्थित पाता है तो चिंतित होकर सत्यनारायण के शब्दों में कह उठता हैः

एका, आने वाला है कल समय कठिन।
खेल खिलौने नहीं रहेंगे
रोबट होगा
जल के प्लावन में डूबा
अक्षय वट होगा
नहीं दिखेंगे कूल किनारे
नहीं पुलिन
दाँत समय के होंगे
ज्यादा ही पैने
बिखरे होंगे तोते मैनों के डैने
नहीं रहेंगे कथा कहानी वाले दिन।
किलकारी पर कलरव पर
पहरे होंगे
मृग छोने सहमे ठिठके
ठहरे होंगे,
होंगे नहीं कुलाँचें भरते हुए हिरन।

नवगीत को केवल अतीत-चर्चा मानने वाले 'सुधी जनों' को उस त्रासदी को भी समझना होगा, जिसे आज का सामान्य जन झेल रहा है। उसकी तो यह भी विडम्बना है कि पीछे लौटने का उसके पास विकल्प ही नहीं रह गयाः

अब पीछे लौटना असंभव है
हम ने हर पिछला पुल तोड़ दिया

माना आगे जलता जंगल है
पीपल की भी ठंडी छाँह नहीं
इन सूनी अँधियारी रातों में
थामेगा अब कोई बाँह नहीं
जिस पथ पर अभिशापित उत्सव है
हमने वह पथ कब का छोड़ दिया। (योगेंद्रदत्त शर्मा)

नवगीत में जातीय अस्मिता की चर्चा के साथ कुछ और भी खतरे भी जुड़े हैं। उनके प्रति हमें सावधान रहना होगा। उत्सवों, पर्वों, पुरा-सन्दर्भों, इतिहास-प्रकरणों आदि के उल्लेख के आधार पर इस जातीय अस्मिता को साम्प्रदायिक संकीर्णता के साथ रखकर देखने की चूक का अंदेसा बना रहता है। नवगीत न केवल 'सेक्यूलर' काव्य है अपितु यह हर तरह की साम्प्रदायिकता का विरोधी भी है। हमने पहले ही कहा था कि राजभक्ति की पर्याय राष्ट्रभक्ति नवगीत में नहीं है। है, तो बस देश-प्रेम और यह देश-प्रेम उसके अनुभव का अंग है, पचास वर्षों की हिन्दी की छन्दमुक्त कविता में अधिकांशतः देश का 'एरियल सर्वे' ही मिलता है पर नवगीत ने भारत को पैदल चल कर ही जाना-पहचाना है। वह बाबा आम्टे का आदर्श प्रस्तुत करता है। नईम का मालवा उनके गीतों में सप्राण रूप में उपस्थित है। वंशी और मादल में ठाकुर प्रसाद सिंह ने संथाल परगना को जीवंत कर दिया है। अनूप अशेष और श्याम सुंदर दुबे ने यदि अपने अंचल के गाँवों के जीवन की एक तस्वीर प्रस्तुत की है तो गुलाब सिंह के गीत इन कवियों की फोटोकॉपी नहीं हैं, बल्कि पूर्वांचल की अलग तस्वीर उनमें है। जनपरक गीतों में भी रमेश रंजक, नचिकेता या शांति सुमन के गीत भी एक दूसरे का दोहराव नहीं हैं। महेश अनघ का लोक अपनी तरह की मौलिकता लिए है। सत्यनारायण और माहेश्वर तिवारी ने वर्तमान की जटिलताओं के समानान्तर जातीय अस्मिता को प्रस्तुत किया है। यहाँ तक कि इनकी अग्रज पीढ़ी के नवगीतकारों में यदि 'पुरवैया धीर बहो' जैसे गीतों में लोक का एक विशिष्ट रूप शंभुनाथ सिंह प्रस्तुत करते हैं तो वीरेन्द्र मिश्र सागर-संस्कृति का एक दूसरा ही लोक प्रस्तुत करते हैं। देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के गीत पुराबिम्बों का बेजोड़ वैशिष्ट्य लिए हैं, तो शिव बहादुर सिंह भदौरिया जन-संवेदना को अपनी तरह से साकार करते हैं। कैलाश गौतम ने अपसंस्कृति मे धकेले गए गांव को प्रस्तुत किया है तो यश मालवीय का छोटी-छोटी घटनाओं वाले दैनिक जीवन से जुड़ा अपना सांस्कृतिक बोध है। भारतेन्दु वर्तमान को अलग तरह से जन-साक्षेप बिम्बों में प्रस्तुत करते हैं। समग्रतः नवगीत संस्कार का काव्य है और इसके लिए वह शर्मिंदा नहीं है। स्वर्गीय उमाकांत मालवीय ने लिखा थाः ''अपने एकांत क्षणों में मैं बहुधा बड़े खेद से अनुभव करता हूँ कि मेरी पीढ़ी संस्कारों से अपेक्षाकृत बहुत ही विपन्न है...''। मालवीय जी की यह खिन्नता तत्कालीन नयी कविता के सन्दर्भ में सही है पर उन्होंने जिस परम्परा से अपने को जोड़ा था, उस नवगीत-धारा में संस्कार-जन्य जातीय अस्मिता के काव्य को ही प्रमुखता मिली है। उल्लेखनीय यह है कि यह संस्कारिता सांप्रदायिक शक्तियों के साथ नहीं खड़ी है। गत दो दशकों में हम साम्प्रादायिकता और आतंकवाद के तीखे दंशों को झेलते रहे हैं। नवगीत काव्य में इन सन्दर्भों को जिस शिद्दत के साथ चित्रित किया है, वह उसकी युगबोध की सजगता का प्रमाण है। बाज़ारवाद हो या भूमंडलीकरण, स्त्री-विमर्श हो या दलित विमर्श, उत्तर उपनिवेशवाद हो या उत्तर आधुनिकता, नवगीत में न तो खोल में छिपने की स्थिति है, न दृष्टिभ्रम की। नवगीत की पलायन-विरोधी संघर्षशील प्रवृत्ति के दर्शन इसकी सहवर्ती धारा जनगीत में होते हैं जो खेल-खलिहान में किसान के संघर्ष और जनोल्लास के माध्यम से जातीय अस्मिता को चित्रित करती है।

कविता में जातीय अस्मिता की अभिव्यक्ति को लेकर एक सवाल यह उठाया जा सकता है कि उत्तर आधुनिक युग में जब 'इतिहास' और 'परम्परा' ही अप्रासंगिक हो गए हैं, यहाँ तक कि विचारधाराओं के स्थगन के साथ विचार का भी अन्त हो गया है, तब स्मृति-आश्रित जातीय अस्मिता की क्या प्रासंगिकता है? एक स्मृति-भ्रष्ट राष्ट्र की दानवीयता और नृशंसता हम बीसवीं सदी के अंत में इराक-युद्ध में और गत दो वर्षों में यूक्रेन-रूस युद्ध में तथा इजराइल-हमास संघर्ष में देख चुके हैं। हिटलर की नृशंसता की शिकार जाति अब स्वयं नृशंसता में हिटलर को मात दे रही है। जब-जब हम सह-अस्तित्व के इतिहास की उपेक्षा करते हैं, तभी ऐसी स्थितियाँ पैदा होती हैं, जिसे समय के सन्दर्भ में गवाही देते हुए गहरे दुःख के साथ कभी नवगीतकार नईम ने यों रेखांकित किया थाः
प्यार से मिलते हुए दिन

ईद से उत्सव कभी
आज बल्लम बर्छियों से
भेंटते मुझको सभी

नवगीत ने अन्तरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय सन्दर्भों में स्मृति-भ्रष्टता से उत्पन्न ऐसी स्थितियों की ओर यदि ध्यान आकर्षित किया है तो इसे हिन्दी कविता की उपलब्धि ही माना जाना चाहिए। इतिहास और परम्परा की हत्या के क्रम में हमारी भाषाओं और बोलियों को दफ़न करने का जो अन्तरराष्ट्रीय षड्यंत्र है, नवगीत ने उसका भी प्रतिरोध किया है। ओसारा, डीह, मसुरी, माँडने कढ़ा, शिकनी, जोतदार, सूप, निबौरी, उज्जर-बाजर, दिया-देवी, बंसवारी, उजरौटी, पाग, छानी-छप्पर, टेंट, खपरैल, मड़ैया, टूसे, जोन्हा, पोथी, कजरी, चैता, बिरहा, क्वार, बासन जैसे हजारों ऐसे शब्द हैं, जिनमें लोक की संवेदनाएँ धड़कती हैं, जिनके मरने से कविता की जन-संवेदनाओं को व्यक्त करने की शक्ति ही खत्म हो जाएगी। नवगीत ने ऐसे असंख्य शब्दों को जिंदा रखा है। इसी प्रकार मिथक कविता को अर्थगत बहुस्तरीयता प्रदान करते हैं। नवगीत की भाषा में मिथकीय तत्त्वों का प्रयोग जातीय अस्मिता का एक और रूप प्रस्तुत करता है।

नवगीत की जातीय अस्मिता के सन्दर्भ में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि शायद ही आधुनिक हिन्दी कविता की किसी अन्य काव्य-सरणी में नदी के रूपक का इतना सार्थक प्रयोग हुआ है, जितना नवगीत में। भदौरिया जी चाहते हैं 'नदी का बहना मुझमें हो', वीरेन्द्र मिश्र सावधान करते हैं 'नदी के अंग कटेंगे तो नदी रोएगी', इन्द्र जी अनुभव करते हैं 'नदी की देह में छाले पड़े', माहेश्वर तिवारी नदी के अकेलेपन को महसूसते हैं। प्रस्तुत लेखक की चिंता हैः 'कर कत्ल नदी का/ ध्येय सदी का/ फैलना बस रेगिस्तान', यश कहते हैं 'सब नदियां अपनी गहराई में रोती हैं', निराला ने कहा थाः 'नद के उद्गार घटे', कैलाश महसूसते हैं 'ओझल नदी के कूल से हम छू गए', श्रीकृष्ण को दूध की नदी के जहर होने का मलाल है, कुँवर बेचैन कुहरे भरी नदी में मां की काया को देखते हैं, शंभुनाथ जी ने अनुभव किया थाः 'जहाँ बह रहा है नदियों में फौलाद', सत्यनारायण नदी-सा बहता हुआ दिन तलाश रहे हैं, विद्यानंदन राजीव बहती गर्म नदी की दहकते सूरज के बीच की विडम्बना को प्रस्तुत करते हैं। योगेन्द्रदत्त शर्मा को लगता है- 'घायल सीने को सहलाता/ सिसक रहा है पाट नदी का', जहीर कुरेशी की पीड़ा है- 'फिर नदी की देह पर हमले हुए फिर नदी रोने लगी मैदान में' विनोद श्रीवास्तव कहते हैं-'आज नदी में पाँव डुबोते याद हमें किरणों की आई'। वास्तव में एक शाश्वती परम्परा ही यह नदी है। जातीय अस्मिता में उसी शाश्वती परम्परा का अस्तित्व है और नवगीतकार तमाम सवालों से टकराता हुआ, वर्तमान के सारे संकटों से भेंटता हुआ, अपने वक्त के रूबरू खड़ा होकर जो लड़ाई लड़ रहा है, उसमें इस परम्परा की प्रेरक नदी का होना जरूरी है। कृष्ण बक्षी के शब्दों में कहें- 'गढ़ सके तो गढ़/ बुन सके तो बुन/ एक भाषा है नदी की।'

यों तो समकालीन हिंदी कविता में नवगीत की उपलब्धि के अनेक पक्ष हैं, जातीय अस्मिता का प्रभावपूर्ण चित्रण भी इसकी उपेक्षा को असंभव बनाता है।

राजेन्द्र गौतम

९०६ झेलम प्लाटः ८, सेक्टरः ५ द्वारका,
नई दिल्ली-११००७५, मो. ९८६८१४०४६९.
rajendragautam99@yahoo.com

छत्तीसगढ़ी प्रहेलिका : एक दृष्टि

प्रो.रामनारायण पटेल

प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-७
मो.: ९९६८४४७८२४

‘प्रहेलिका’ क्या है, लोक और शास्त्र में इसका प्रचलन कब से हुआ? पहले यह जान लेना आवश्यक होगा । ‘प्रहेलिका’ मूलतः संस्कृत शब्द है । शब्दकोश के अनुसार, ‘प्रहेलिका’- प्रहिलृइन, प्रहेलिृ कन्ृटॉप से व्युत्पन्न है ।’१ इसे ‘पहेली’, ‘बुझौवल’ या ‘कूटप्रश्न’ भी कहा जाता है । संस्कृत में यह ‘ब्रह्मोदय’ नाम से भी प्रचलित है । काव्यशास्त्रियों के अनुसार प्रहेलिका शब्दालंकार का एक भेद है । उनके अनुसार, किसी तथ्य को छिपाकर जो बाह्य या आंतर अर्थ को संकेतित करे, उसे ‘प्रहेलिका’ कहा जाता है । ‘विदग्ध-मुख-मंडन’ में कहा गया है-

‘व्यक्तीकृत्य कमप्यर्थ स्वरूपार्थस्य गोपनात ।
यत्र बह्यान्तरावर्थो कथ्यते सा प्रहेलिका ।।’२

अलंकार के रूप में इसका प्रथम उल्लेख भामह के ‘काव्यालंकार’ में हुआ है-

‘नानाधात्वर्थगंभीरा यमकव्यपदेशिनि ।
प्रहेलिका सा ह्युदिता रामशर्माच्युतोदरे ।।
काव्यान्यपि यदीमानि व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत ।
उत्सवः सुधियामेव हंत दूर्मेधसो हताः ।।’३

भामह ने ‘हेय यमक’ के संदर्भ में लिखा है कि जहाँ नाना प्रकार के अप्रसिद्ध धातु से उत्पन्न दुर्बोध शब्दों का व्यवहार किया जाय, वहाँ ‘हेय यमक’ होता है और निकृष्ट यमक को ही प्रहेलिका कहते हैं । बाद में आचार्य दंडी’४ और रुद्रट जैसे विद्वानों ने भी इसे अलंकार के रूप में ही परिभाषित किया है । आचार्य दंडी ने कहा है कि जहां पदों में संधि हो जाने पर अभीष्ट अर्थ का बोध न हो सके और उसमें गूढ़ार्थता का समावेश हो जाए, प्रहेलिका है-

‘क्रीडागोष्ठी विनोदेषु तज्ज्ञैराकीर्णमंत्रणे ।
परव्यामोहने चापि सोपयोगाः प्रहेलिकाः ।।
याहुः समागताम नाम गूढ़ार्थ पदसंधिना ।
वंचितान्यत्र रुढ़ेन यत्र शब्देन वंचना ।।’५

यहाँ यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि कुछ विद्वानों ने इसे अलंकार स्वीकार तो किया है, किन्तु उसे चमत्कारमात्र माना है; जैसा कि आचार्य विश्वनाथ ने कहा-

‘रहस्य परिपंथित्वान्नालंकारः प्रहेलिका ।
उक्तिवैचित्र्यमात्रं सा च्युतदात्ताक्षरादिका ।।’६

इतना तो निश्चित है कि काव्यशास्त्र में प्रहेलिका को अलंकार के एक प्रकार के रूप में स्वीकार किया गया है । यह संस्कृत में अंतर्लापिका या बहिर्लापिका के रूप में प्रयुक्त है। अंतर्लापिका, जैसे-

कस्तूरी जायते कस्मात् को हंति परिणाकुलम ।
किं कुर्मात्कारो युद्धे मृगात्सिंहः पलायनम् ।।’

अर्थात, कस्तूरी किसमें होता है? (मृगात- मृग में), हाथियों के कुल को कौन मारता है? (सिंह), युद्ध में कातर या कायर क्या करता है? (पलायनम्- पलायन)

संस्कृत की भांति खड़ीबोली में भी प्रहेलिकाएँ विद्यमान हैं। खड़ीबोली में अमीर खुसरो का योगदान महत्त्वपूर्ण है। उनकी पहेलियाँ तो जगजाहिर हैं । उन्होंने ‘पहेली’ और ‘मुकरियां’ लिखकर जनभाषा को समृद्ध किया और लोकप्रिय बनाया । उनकी अंतर्लापिका (बूझ पहेलियाँ) और बहिर्लापिका (बिन बूझ पहेलियाँ) के ढंग पर लिखी गई पहेलियां देखिए-

अंतर्लापिका-

‘सावन भादो बहुत चलत है, माघ-पूस में थोरी।

अमीर खुसरो यों कहे, तू बूझ पहेली मोरी ।।'
-(मोरी़ छोटी नाली)

बहिर्लापिका-

'आगे-आगे बहिना आई, पीछे - पीछे भइया ।
दांत निकाले बाबा आए, बुरका ओढ़े मइया ।।'
-(भुट्टा)

'एक राजा की अनोखी रानी'
नीचे से वह पीवे पानी ।' -
(दीये की बाती)

इसी तरह कुछ मुकरियां देखिए-

'उछल कूद कर जो वह आया, धरा ढका सभी कुछ खाया ।
दौड़ झपट जा बैठा अन्दर, ऐ सखी साजन, ना सखी बन्दर ।' -(बन्दर)

मध्यकाल में कबीर जैसे संत कवियों की उलटबांसियों में भी पहेली के कुछ रूप दिखाई देते हैं जिसमें ज्ञान-ध्यान के साथ-साथ सामाजिक संचेतना विद्यमान है । सीधा कहें कि यहाँ पहेलियाँ कुतूहल या मनोरंजन की विषय नहीं हैं, सामाजिक-सांस्कृतिक शिक्षा और नवीन चेतना या सचेतता के विषय हैं । बाद के रीतिकालीन आचार्यों ने, विशेषतः केशवदास ने पहेली के संबंध में विचार किया है । उनके अनुसार-

'बरनिय वस्तु दूराय जहं, कौन हुं एक प्रकार ।
तासों कहत प्रहेलिका, कविकुल बुद्धि उदार ।।'७

कहना न होगा कि प्रहेलिका केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं है, इससे समाज की बुद्धिमत्ता और सजगता भी प्रकट होती है । प्रारंभ में लोक में इसका प्रचलन भले ही एक कौतुहल के रूप में होता रहा हो, किन्तु उद्देश्य सामाजिक-सांस्कृतिक समझ बढ़ाना ही रहा है । इस संबंध में पाश्चात्य विद्वान् फेजर महोदय का कहना है कि प्रहेलिका का उदय उस समय हुआ होगा, जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन पड़ी होगी । स्पष्ट है कि प्रारंभ में भावाभिव्यक्ति के लिए इसमें संकेतात्मक शब्द अथवा शब्द-चित्र का सहारा लिया जाता रहा होगा । और इस प्रकार पहेली का जन्म हुआ ।

जैसा कि प्रारंभ में हमने कहा है कि प्रहेलिका को 'ब्रह्मोदय' भी कहा गया है । वैदिक काल में आनुष्ठानिक कार्यादि में ब्रह्मोदय के प्रचलन का प्रमाण मिलता है । उस समय ब्रह्मोदय के बिना अश्वमेघ जैसे यज्ञादि की पूर्णता नहीं मानी जाती थी । अश्वमेघ में अश्व की बलि के पूर्व 'होता' (पुरोहित) और ब्राह्मण होत्तृ (यजमान) से ब्रह्मोदय (पहेली) पूछते थे । यह एक प्रकार से यज्ञ में छिपी कामना की अभिव्यक्ति अथवा बुद्धि-व्यायाम जैसी क्रिया थी । बाद के लौकिक-धार्मिक संस्कृत ग्रंथों; जैसे- 'महाभारत' और 'रामायण' में भी प्रहेलिका के कुछ रूप मिलते हैं । 'महाभारत' का यक्ष प्रश्न अथवा 'रामायण' में परशुराम के गर्व-खण्डन का प्रसंग इसका एक रूप माना जा सकता है । इसी तरह लोकभाषाओँ में प्रहेलिका के विविध रूपों को देखा जा सकता है । छत्तीसगढ़ी भाषा में 'हनुमान' के जन्म के सम्बन्ध में एक पहेली बुझाई जाती है-

'बाप कुंवारा, बेटा कुंवारा
अउ कुंवारी महतारी ।
कोरा म लइका हो गय
रहस बता बेदाचारी ।।'

इसी तरह 'रावण-मंदोदरी' प्रसंग में कहा जाता है-

'खटिया गांथे तान-वितान
दू सुतइया बाइस कान ।'

'एक पीढ़ियन चार खूंटा, चारों अब्बड़ सुघ्घर बेटा'- यह राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न का सन्दर्भ देता है ।

बहरहाल, 'पहेली' को छत्तीसगढ़ी में 'जनउला' (धंधा), 'बुझौवल', 'बिसकुटक' भी कहा जाता है । किंतु आज इनमें 'जनउला' ही अधिक प्रचलन में है । छत्तीसगढ़ी जनउला की शैली वक्रतापूर्ण लिये हुए होती है- भाव, भाषा और कथ्य- तीनों दृष्टियों से । इसकी वक्रता ही इसके सौंदर्य के प्रधान गुण हैं । इससे उत्सुकता प्रारंभ से अंत तक बनी रहती है । कलात्मकता, चित्रात्मकता, तुकांतता, लयबद्धता तथा बोधगम्यता छत्तीसगढ़ी जनउला की पहचान है । यह छत्तीसगढ़ के जन-जीवन में एकदम घुल मिल गया है । शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्ग के लोग दैनंदिन जीवन में इसका प्रयोग करते हैं । छत्तीसगढ़ में इसकी लोकप्रियता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि १७ वीं शताब्दी के राजकवि गोपाल मिश्र ने अपनी रचना 'खूब तमाशा' (सं. १७४७ वि.) में इसका उल्लेख किया है-

'जोरा जरब जरब की पहरै, जोबन जोर उनाई,
पावस बीर बधूटी छूटी, किधौं राई मुनाई ।।
कंचन बेली सबै सहेली, कहैं पहेली छाजै,
सहर राजपुर राजसिंघ कौ, जीत नौंव तैं बाजै ।।'८

छत्तीसगढ़ी पहेलियां अधिकांशतः प्रकृतिपरक, जन-जीवन संबंधी आचार-व्यवहार और गुण-धर्म के आधार पर कहे गए हैं । कुछ उदाहरण देखिए-

(क) गुण-धर्म के आधार पर आधारित पहेलियाँ-

'मनुख सहीं हाथ गोड़, मनुख सहीं काया ।
बारों महीना बइठ रहा, खोंधरा मिले न छाया ।।'

(अर्थात, मनुष्य के समान हाथ, पैर और शरीर तो है किंतु वह मनुष्य नहीं है । बारहों महीना बिना घोंसला और छायादार स्थान में जीवन निर्वाह करने वाला वह प्राणी कौन है?...... बंदर)

(ख) प्रकृतिपरक पहेलियाँ-

(१) 'पर्री भर लाई, आकास म बगराई ।' - (तारे)

(२) 'मांझा तरैया म भैंसा चोंता ।' - (निनमान / कछुआ)

(३) 'मांझा तरैया कंचन थार, तेकर ऊपर चांदी ढार ।'-(कमल पत्ता और उस पर पानी की बूंदे)

(४) तराई भीतर टेड़गा नांगर ।' - (चिंगरी मछरी / झींगा)

(५) एक थारी म दू अंडा, एक तीपै एक ठंडा ।' -(सूरज और चाँद)

(ग) दैनिक जीवन से गृहित पहेलियां-

'सिरपुर म बाघ भेंटेंव, चिमटपुर धर लानेंव ।
हथनपुर म देखनी होगे, नखनपुर मार डारेंव ।।'

डसिरपुर यानी सिर ऊपर बाघ भेटेंव (जुएँ देखा), और चिमटपुर (चिमटी) में उसे पकड़ लिया । हथनपुर (हथेली) में लोगों ने उस जुएँ को गौर से देखा और नखनपुर (नाखून) में उसे मार डाला गया. 'बीच तरिया म कोंकड़ा फदफदाय' (यहाँ 'कोंकड़ा' यानी मुर्रा फोड़ने का दृश्य है) तथा 'आय लूलू जाय लूलू, पानी ल डराय लूलू' ('लूलू' यानी जूता) ।

इसी तरह की कुछ अन्य पहेलियाँ देखिए-

'करिया बोज के लाल निकारे,
उंखरु बइठ के फदाफद मारे ।'

(लोहार द्वारा कच्चे लोहे को भट्ठी में डाला गया और लोहा जब गर्म हुआ तो उसे उंखडू बैठकर हथौड़े से बार-बार आघात किया गया । इस क्रिया-व्यापार की यहाँ व्यंजना है) तथा- 'नन्द बाबा के नौ सौ गाय/ रात चरत दिन बेड़े जाय' (तारे) । ये दृष्टिकूटपरक पहेलियाँ हैं । इसी तरह कुछ योन-वृत्तिपरक पहेलियाँ भी मिलते हैं; यथा- 'तैं सूतत हस, मैं हलावत हों' ।

छत्तीसगढ़ी में कुछ पहेलियां तो ऐसी हैं जो या तो उपमानों द्वारा चित्र-निर्मित हैं और अस्पष्ट भी हैं अथवा ध्यान-साधना से संबंधित हैं तथा कुछ ऐसे हैं जो संस्कृत की भांति कथा पर आधारित हैं । ध्यान-साधना से संबंधित यह पहेली देखिए-

'नीचे हावै डबरा, तेखर ऊपर दुंदुभी ।
तेखर ऊपर जुगजुगी, तेखर ऊपर कोइली बानी ।
तेखर ऊपर रुख जामैं, बीच म सुसुमनी ।'

इसमें हठयोगी साधना के विभिन्न सोपानों का वर्णन है । यहां कुंडलिनी से सहस्त्रार की यात्रा वर्णित है । इसमें 'डबरा' कुंडलिनी है, 'दुंदुभी' अनहद-चक्र, 'जुगजुगी' विशुद्ध-चक्र, 'कोयली' आज्ञा-चक्र, 'रुख' (पेड़) सहस्त्रदल कमल है, जहाँ रस की धार है और 'सुसुमनी' सुषुम्ना नाड़ी है । यह रहस्यवाद से युक्त पहेली है । जैसा कि संत कबीर ने कहा है- 'आकासे मुखी औंधा कुआं, पाताले पनिहारि/ ताका पाणि को हंसा पीवे, बिरला आदि विचारि ।' इसी तरह संसार की असारता और क्षणभंगुरता को व्यंजित करने वाली यह पहेली देखिए-

'तैं रांधे न मैं रान्धेंव, चूर कइसे गिस ।
तैं खाए न मैं खायेंव, सिरा कइसे गिस?'

इसमें आश्चर्य भरी जिज्ञासा है कि- 'न हमने भोजन बनाया न तुमने, फिर पक कैसे गया?, न हमने खाना खाया न तुमने, फिर समाप्त कैसे हो गया?' दूसरे संदर्भ में देखें तो यह प्राथमिक स्तर पर 'ओले' का अर्थ देता है किंतु गंभीरतापूर्वक विचार करें तो पाएंगे कि इसमें जीवन और जगत के मिथ्यात्व की व्यंजना है । इसी प्रकार एक रहस्यात्मक पहेली देखिए, जिसमें सतगुरु की खोज में निकले शिष्य की उत्कंठा व्यक्त है-

'जात रहेंव तोर करा, भेंटी डारेंव तोला ।
घरी मोला धियान दे, धर राखिहों तोला ।।'

(तुमको खोजने निकला था कि तुम्हीं से भेंट हो गयी, अब मुझे ध्यान-साधना दे दो ताकि हृदय में तुझे रख लूं)

कुछ जनउला तो उलटबांसी की तरह हैं, जिसकी चर्चा हम पीछे कर आए हैं, फिर भी यहाँ कुछ उदाहरण देखिए-

'बिना पांव के अहिरा भइया, अउ बिना सिंग के गाय ।
अइसन अचरज हम नइ देखेंन, खारन खेत कुदाय ।।'

तथा-

'एक सिंग के बोकरा, बेर-बेर नरियाय ।
ऊपर ले चारा चरे, अउ बाखा म पगुराय ।।' -(जतरी)

पहले उदाहरण में 'अहिरा' और 'बिना सिंग के गाय' क्रमशः 'सर्प' और 'मेंढक' के प्रतीक लगते हैं किंतु वास्तविक अर्थ में यह इंद्रियों के प्रतीक हैं, जो मन को भटकाते हैं । दूसरा उदाहरण भी प्रतीकार्थ है । इसमें सामान्य अर्थ है- 'जांता' (चक्की) और 'पउहा' (चक्की की डंडी) । लेकिन गूढ़ार्थ है- मन की क्रियाएँ । मन को 'एकसिंगी बकरा' कहा गया है जो जीव को भटकाता है और सांसारिक मोह-जाल में उलझाये मस्त रहता है । मन सोचता कुछ और है तथा कार्य कुछ और ही कराता है । उसकी इस प्रवृत्ति को यहां प्रतीकों के माध्यम से व्यंजित किया गया है ।

जापानी ज़ेन-दर्शन, जो भारतीय ध्यान-साधना से ही प्रादुर्भूत है, उसमें इस प्रकार की पहेलीनुमा उलटबांसी को 'को-ऑन' (र्ख्दह) कहा जाता है । 'को-ऑन' अंतर्बोध की अवस्था है । आधुनिक हिंदी साहित्य में ऐसी अंतर्बोधजन्य पहेलियां कवि अज्ञेय की छोटी-छोटी रचनाओं में मिल जाते हैं । उनकी एक रचना का नाम है- 'पहेली' । इस रचना में गुरु शिष्य से कहता है-

'कहां चला ले जाल अभी
पहले मछलियां तो पकड़ ला?'

वर्षों ध्यान लगाने के बाद बुढ़ापे में शिष्य को गहरी अनुभूति हुई-

'अरे, कब से बेचारी मछली
घिर अगाध से
सागर खोज रही है!'९

छत्तीसगढ़ी भाषा में ऐसी अनेक पहेलियां बिखरी पड़ीं हैं, जो जीवन के अनुभव से संग्रथित हैं । इन पहेलियों में जो संकेतार्थ हैं वह एक निश्चित अर्थ के बोधक हैं । ये जीवन में दिशा-वाहक जैसे कार्य करते हैं । इनमें यहाँ की सांस्कृतिक-परंपरा, प्रवृत्तियां, क्रियाएं, जीवन के सुख-दुःख सब कुछ विद्यमान हैं । अतः इन्हें आज एकत्रित करके सहेजने की आवश्यकता है ।

सन्दर्भः

१. संस्कृत-हिंदी शब्दकोश, आप्टे, पृष्ठ ७३१
२. वही, पृष्ठ ७३१
३. काव्यालंकार (भामह), २/१९-२०
४. देखें, काव्यादर्श (दंडी), ३/९-१०७
५. वही, ३/९७-९८
६. साहित्यदर्पण (आचार्य विश्वनाथ), १०/१३
७. कविप्रिया, केशवदास, १३/३०
८. 'खूब तमाशा' (गोपाल मिश्र), नीतिशतक, छंद-३३
९. सदानीरा-२, (पहेली), अज्ञेय, नेशनल पब्लि. हाउस, दिल्ली, सं. २००३, पृष्ठ २५

प्रो. रामनारायण पटेल
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-७
मोबाः ९९६८४४७८२४

कालिदास के साहित्य का मानस पर प्रभाव

प्रोफेसर जय मंगल पाण्डेय

अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
बी०एन०के०बी० स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अकबरपुर, अम्बेडकरनगर २२४१२२ (उ०प्र०)

जिस काव्य की अजस्र धारा में महाकवि कालिदास हैं, उसी ही रामकाव्य के अद्वितीय अमरगायक गोस्वामी तुलसीदास भी हैं। इनके द्वारा रचित द्वादश प्रामाणिक रामकाव्यों में सर्वप्रधान श्री रामचरित मानस ही है। रामकाव्य परम्परा में भी श्री रामचरितमानस संस्कृत-हिन्दी वाङ्मय के लिए सेतु सिद्ध हुआ है, जिन्होंने इसकी रचना 'भाषा' (लोकभाषा) में करके रामगाथा को जन-जन तक पहुँचायाय किन्तु इसकी मूल भावभूमि वाल्मीकि के 'रामायण' पर ही आश्रित है। यद्यपि राम काव्य की प्रस्थान कृति 'रामायण' होते हुए सर्वग्राहय व सुपाठ्य नहीं थाय लेकिन सुगमता एवं सुबोधता के अभाव को 'भाषा' में रचित श्री रामचरितमानस की कथा में अनेक ग्रंथो की प्रेरणा एवं महती भूमिका है। आचार्य सीताराम चतुर्वेदी के द्वारा सम्पादित ग्रन्थावली से ऐसे संदर्भ या कृतियों की नामावली २६५ दी गई है।१

वस्तुतः इन्हीं कृतियों से सहायता लेकर गोस्वामी जी ने श्री रामचरित मानस की रचना की। ग्रंथ-सूची में समस्त संस्कृत वाड्मय की ही रचनाएँ हैय किन्तु गोस्वामी जी ने पालि, प्राकृत को भी संस्कृत-साहित्य के साथ उसके सार को ग्रहण किया। स्वतः उन्हीं के शब्दों में सुस्पष्ट है-

'गावत वेद पुरान अष्टदस, छवो सास्त्र सब ग्रन्थन को रस।२

उन्होंने अपने मानस के मंगलाचरण में भी विविध ग्रन्थों की ओर संकेत किया है-

'नानापुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।।३

इस हिन्दी साहित्य के अद्वितीय ग्रन्थ में तुलसी के मूलभाव की अभिव्यक्ति कथावस्तु के गुम्फन में चरित्र के दर्शन और प्रबन्ध-स्थापना में परिलक्षित होता है। साथ ही गूढ़ दर्शन, रमणीयता, साहित्यिकता और जीवन्त-संवाद का दिग्दर्शन भी श्रीरामचरितमानस में होता हैय जिसमें वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति प्रभृत महान् साहित्यकारों का जीवन-दर्शन और भारतीय संस्कृति का सार समाहित है।

इस श्रीरामचरितमानस पर वैदिक-साहित्य की अपेक्षा लौकिक-संस्कृत-साहित्य का सर्वाधिक प्रभाव है, इसमें भी महाकवि कालिदास का अक्षुण्ण प्रभाव दिखाई देता है। तुलसीदास की यह रचना कालिदास के रघुवंश से अधिक प्रभावित हैय अपेक्षाकृत 'कुमार-संभव' की। कालिदास की ख्याति विश्वविश्रुत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम् से हुई तथा ये महाकवि कालिदास हुए य इसीलिए 'शाकुन्तलम् की सर्वप्रचलित सूक्ति विख्यात है-

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्रापि च शकुन्तला।/तत्रापि च चतुथोऽडकोस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्।।

इस 'अभिज्ञानशाकुतम्' की प्रमुख प्रसंग कण्व

 ISSN: 2583 - 5750

आश्रम में आखेट के समय दुष्यन्त का सारथी के साथ आना, शकुन्तला से गान्धर्व विवाहादि की घटना है। गोस्वामी तुलसीदास ने इस प्रसंग से प्रेरणा लेकर 'पुष्प-वाटिका' (फुलवारी) की संघटना की, जो पूर्णतः शाकुन्तला -दुष्यन्त के मिलन को सीता - राम के मिलन का साम्य प्रसंग प्रतीत होता है।

कालिदास की सर्वश्रेष्ठ नाट्यकृति एवं संस्कृत का अद्वितीय नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तम् का अत्यल्प प्रभाव मानस पर दिखाई पड़ता है। उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध में मात्र एक स्थान पर 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के एक श्लोक के उत्तरपाद का आंशिक भाव दिखाई देता है-

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादमस्तीव्रमुष्णं/शमयति परितापं छाययां संश्रितानाम्।।४

मानस में इस श्लोक का छाया भाव है -

भूर्ज तर सम सन्त कृपाला। पर हित नित सह विपति विसाला।।५

श्री रामचरितमानस पर 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की अपेक्षा कुमारसंभव का प्रभाव अधिक है। 'कुमारसम्भव' में कार्तिकेय की सम्पूर्ण कथा होने से श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड पर अधिक प्रभाव है, जहाँ शिव-पार्वती विवाहादि का प्रसंग आया है।

ऐसे एक दर्जन श्लोकों का प्रभाव केवल बालकाण्ड में ही दिखाई देता हैय जबकि अयोध्या में तीन एवं सुन्दरकाण्ड के एक ही प्रसंग में कुमारसंभव के श्लोकों का छाया रूप दिखाई देता है।

श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड के आरम्भ में शिव के वर प्राप्ति की तपश्चर्या के वर्णन का आधार कुमारसम्भव ही जान पड़ता है। कुमार-संभव में लिखा है -

अयाचितोपस्थितमम्बु केवलं रसात्मकस्योडपतेश्च रश्मयः।
बभूव तस्याः किल पारणाविधिर्न वृक्षवृत्ति व्यतिरिक्तसाधनः।।
स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता परा हिकाष्ठा तपस्तया पुनः।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां वदत्यपर्णेति च तां पुराविदः।।६

इस प्रसंग का, मानस में उल्लिखित चौपाई इस प्रकार है

कुछ दिन भोजन वारि बतासा। कीन्ह कठिन कुछ दिन उपवासा।।
बेल पत्र महि परै सुखाई। तीन सहस संवत सोइ खाई।।
पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नाम तब भयउ अपरना।।७

मृणालिकापेलमेवमाद्रिर्वतेः स्वमंगं ग्लपयन्त्यहर्निशम्।
तपः शरीरैः कठिनैरूपार्जितं तपस्विनां दूरमधश्चकार सो।।८

पार्वती की शिव के प्रति परम आस्था को संकेत करने वाला दोहा -

महादेव अवगुण भवन, विष्णु सकल गुण धाम।
जेहिकर मन रम जाहि सन, तेहि ताहि सत् काम।।९

कुमार संभव की यह सूक्ति पूर्ण श्लोक में साम्य रखती है-

अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया तथा विधस्तावदशेषमस्तु सः।
ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं कामवृत्तिर्वचनीयमीयक्षतै।।१०

शिव साधना की जागृति हेतु कामदेव की भूमिका के संदर्भ में, कालिदास ने कई नीति-वचनात्मक वाक्यों को लिखा है-

पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनाभ्यः स्फुरत्प्रवालोष्ठमनोहराभ्याः।
लतावधूभ्यस्तरवोप्य वायुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि।।
मध्बुद्विरेफः कुसुमैक पात्रे पपौ प्रियां स्वामनुरक्तसानः। श्रृगेण च स्पर्शनिमीलिताक्षी मृगीकण्डूयत कृष्णसारः।।११

इस पद्यांश का भावार्थ गोस्वामी जी ने अपने चौपाई में करते हुए लिखा है-

सबके हृदय मदन अभिलाखा । लता निहारि नवहिं तरु साखा ।।
नदी उमंगि अंबुधि कहँ धाई। संगम करहिं तलाव-तलाई ।।
जहँ असिदसा जड़न्ह कै बरनी। को कहि सकै सचेतन्ह करनी ।।
पसु पक्षी नभ जल थल चारी। भए कावस समय बिसारी।।१२

शिव के नेत्रोन्मीलन से प्रकम्पित कामदेव की दशा को कालिदास ने इन शब्दों में लिखा है-

स्मरस्तथा भूतमयुग्मनेत्रं पश्यन्नदूरान्मनसाप्य धृष्यम्।
नारलक्षयत्साध्वंससन्नहस्तः स्रस्तं शरं चापमपि स्वहस्तात्।।१३

इसी प्रसंग को मानसकार ने भयातुर कामदेव की अन्तर्वाह्यमनोचिंतन को इस प्रकार बताया है-

उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जब लगि काम संभु पहँ गयऊ ।।
सिवहि विलोकि ससंकेउमारू। भयउ जथाथिति सब संसारू ।।
भए तुरत जग-जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गए मतवारे ।।
रुद्रहिं देखि मदन भय माना। दुराधर्ष दुर्गम भगवाना।।१४
शंकर के मन में काम के प्रभाव से जागे शिव के साथ समस्त जगत् भी कामोदिप्त हो गया था -
श्रुत्वाप्सरो गीतिरपि क्षणेस्मिन् हरः प्रसंख्यानपरो बभूव।१५ के सन्दर्भ में
तुलसीदास कहते हैं-कलहंस पिक सुक सरस रवकरि गान नाचहिं अपछरा।।१६
कुमारसंभव में पार्वती के विवाह की तिथि रखी जाती है -
वैवाहिकीं तिथिं पृष्टास्तत्क्षणं हरबन्धुना।
ते त्रयहादुर्ध्वमक्षाय चेरुश्चीरपरिग्रहः।।१७
तो मानस में सप्त ऋषियों ने विवाह की तिथि इस प्रकार निर्धारित किये-
सुदिन सुनखत सुघरि सोचाई। वेगि वेद विधि लगन धराई।
पत्र सप्तरिषिन्ह सोई दीन्ही। गहि पद विनय हिमाचल कीन्हीं।।१८
शिव के गणों द्वारा उन्हें आभूषण से सजाये जाने का मानस में अत्यन्त सुन्दर चौपाई मिलती है -
सिवहिं संभुगन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौर सवारा।।
कुंडल कंगन पहिरे व्याला।। तन विभूति पट केहरि छाला।
ससि ललाट सुन्दर सिर गंगा। नयन तीनि उपवीत भुजंगा।
गरल कंठ, उर नर सिर माला। असिव वेष, शिवधाम कृपाला।।
कर त्रिसूल अरु डमरू बिरजा। चले वसह चढ़ि बजहिं बाजा।।
देखि सिंवीह सुरतिय मुसुकाहीं।। वरलायक दुलहिनि जग नाहीं।।
विष्णु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि-चढ़ि वाहन चले बराता।।१९
यह भाव 'कुमारसम्भव' में इस प्रकार मिलता है -
वभूव भस्मैव सितांगरागः कपालमेवामल शेखरश्रीः।
उपान्तभागेषु च रोचनांको गजाजिनस्यैव दुकूलीभावः।।
तमभ्यगच्छत् प्रथमो विधाता श्रीवत्सलक्ष्मा पुरूषश्च साक्षात्।
जयेति वाचारमहिमानमस्य संवधन्यन्तो हरिषेव वहिनम।।२०
कुमार-संभव में पार्वती विधाता की अनुपमकृति है, जिसे स्वयं विधाता ने अत्यन्त सिद्धता से गढ़ा है-
सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथा प्रदेशं विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्य सौंदर्यदिदृक्षयेव।।२१
इसी भावानुभूमि पर अनिंद्य-सुन्दरी जगज्जननी सीता को भी तुलसी ने इन शब्दों में विरचित किया है -
देखि सीय सोभासुख पावा। हृदय सराहत बचन न आवा ।।
जनु विरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि विस्व कहँ प्रगटि दिखाई।। २२
वन-गमन के समय का हृदय स्पर्शी भाव, सुमित्रा ने अपने पुत्र लक्ष्मण को मानस में समझाया है -
पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई।
नतरु बॉझ भलि वादि विआनी। राम विमुख सुत ते हित हानी।। २३
यही भाव 'कुमार-सम्भव' में यथावत् ही द्रष्टव्य है -
सा भूमौ पुत्रिणी रामा हरिदासो हि यत्सुतः।
करोसि हित हानिं च श्रीरामविमुखः सुतः।।
इसी कुमार-सम्भव की सुप्रसिद्ध सूक्ति विद्वानों में अतिसराहनीय है -
आत्मेश्वराणां न हि जातु विघ्नाः।
इसका अक्षरानुवाद तुलसी ने समरथ को नहिं दोष गुसाई। रवि पावक सुरसरि की नाई। में करके जन-जन तक कालिदास को पहॅुचा दिया। 'कुमार-संभव' का यह प्रसिद्ध सूक्ति है-शाम्येत्प्रत्युपकरण-नोपकारेण दुर्जनः।
इसी के आधार पर 'सुन्दरकाण्ड' के अन्त में गोस्वामी जी ने नीति-वचन कहा है-
काटेहि पै कदरी फरै कोटि जतन कोइ सींच।
विनय न मान खगेसु सुनु डाटेहि पै नव नीच।। २४
श्रीरामचरितमानस पर सर्वाधिक प्रभाव 'कुमार-सम्भव' के बाद 'रघुवंश' रचना का ही है। इस रचना की मानस के प्रणयन में अनेक अहम् भूमिका है। यही कारण है कि रामचरितमानस और रघुवंश महाकाव्य में अधिक साम्य के साथ अनेक भाव-विचार समान मालूम पड़ते हैं। रघुवंश के मंगलाचरण सहित निरन्तर तीनों श्लोकों का

गहरा प्रभाव तुलसी पर पड़ा है। रघुवंश का आदि श्लोक-
वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपतये।
जगतः पितरौ बंदे पार्वती परमेश्वरौ।।२५
कालिदास ने अपने उमा शंकर आराध्य देव को जैसे शब्द-अर्थ से युक्त माना हैं, उसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास भी अपने प्रिय सीताराम ईष्ट को शब्दार्थ से अभिन्न बताया हैंः-
गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न ।
बंदी सीताराम पद जिनहिं परम प्रिय खिन्न।।२६
सभी भक्त-अभक्त कवियों ने अपने काव्य-प्रणयन की समर्थता के बावजूद भी
अपनी असमर्थता या असफलता की दुहाई दी हैय किन्तु कालिदास ने रघुवंश में अत्यन्त चतुराई से अपनी विनम्रता को प्रकट किया है-
मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्वाहुरिव वामनः।।२७
क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम।।२८
इस श्लोक का तुलसीदास ने मानो शब्दशः अनुवाद ही कर दिया हो -
अति अपार जे सरितवर जौ नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकाउ परमलघु बिनु श्रम पारहिं जहिं।।२९
’ स्पष्टतः गोस्वामी जी काव्य विनम्रता की प्रेरित यहीं से मिली होगी जिसे अपने मानस के प्रारम्भ में लिखा है-
जानि कृपा करि किंकरामोहू। सब मिलि करहूॅ छाॅड़ि छल-छोहू।
निज बुद्धि बल भरोस मोहिं नाहीं। तातें विनत करौ सब पाहिं।।
करन चहौ रघुपति गुन गहा। लघुमति मोरि चरित अवगाहा।।
सूझ न एकौ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ।।
मति अति नीचि ऊँचि रुचि अचिछि। चाहिय अमिय जग जुरैना छाछी ।।३०
तुलसीदास ने जिस रामकथा का वर्णन किया है, उन्हीं के शब्दों में, वह कथा पूर्ववर्ती ऋषिमुनियों के द्वारा गायी जा चुकी है -
अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसुरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः।।३१
बुध बरनहिं हरि जस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी।।
तेहि बल मैं रघुपति गुन गाथा। कहिहऊँ नाइ रामपद माथा।।
मुनिन्ह प्रथम हरिकिरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहिं भाई।।३२
तुलसीदास, महाकवि कालिदास के लोक मांगलिक व लोकवादी परंपरा में ही आते हैं, क्योंकि वेद से कविता की जो रसधारा जो प्रवाहित हुई, उसे आदिकवि वाल्मीकि ने ग्रहण किया। तदुपरान्त इस काव्यरस के बूँद को व्यासजी ने प्राप्त किया। अनन्तर इस काव्यरस के बूंद को पुनः कालिदास ने पाया । उनसे बचे काव्यरस को अन्त में तुलसीदास ही प्राप्त किये, अतः कालिदास ने विष्णु के अवतार को जागतिक कमीपदेश का उद्देश्य बताते हुए
लोकानुग्रह कहा है - लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः ।। ३३
इसे तुलसी ने लोक-मंगल कहा है - विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार ।।३४
बालकाण्ड में वर्णित दशरथ द्वारा राम, रामानुज को विश्वामित्र के हाथों में सौंपे जाने का प्रसंग रघुवंश से छायानुवाद की भांति ग्रहण किया गया मालूम होता है-
आहूय राम रामेति लक्ष्मणेति च सादरम।
आलिंग्य मूध्र्यवध्राय कौशिकायसमपन्यत।।
मातृवर्गचरणस्पृशौ मुनेस्तौ प्रपदय पदवीं महौजसः।।
अतिआदर दोउ तनय बुलाए। हृदय लाइ बहुभांति सिखाए।।
मेरे प्रान नाथ सुतदोऊ। तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ।।
सौंपेभूप रिसिंहि सुत बहु विधि देइ असीस। जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस।।३५
इसी प्रकार अयोध्या में बधुओं के आगमन को कालिदास ने धर्म, अर्थ, काम
और मोक्ष का अवध में आगमन माना तो तुलसीदास भी प्रभावित होकर वही पुरुषार्थ ही मानते हैं, जो द्रष्टव्य हैं -
स चतुर्धाबभौ व्यस्तः प्रसवः पृथिवीपतेः।
धर्मार्थकाममोक्षाणामवतारइवांगवान।।३६
मुदित अवधपति सकल सुत बधुन समेत निहारि। जनु पाये महिपाल मनि क्रियन सहित फलचारि।।३७
किन्तु यहाँ कालिदास से कुछ अधिक आगे तुलसीदास की विचार-मंजूषा दिखाई देती हैं, जिसमें उन्होंने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के साथ श्रद्धा, सेवा, तपस्या और भक्ति नामक चार क्रियाओं का भी संकेत कर दिया

है।
मानस में कुछ ऐसे प्रसंग-स्थल की चौपाई हैं, जिन्हें रघुवंश से मिलाने पर यही प्रतीत होता है कि अभिप्राय संज्ञान में उससे अधिग्रहण हुआ है- अपश्यतां दाशरथी जनन्यौ छेदावापघ्नतरोर्व्रतत्यो।।३८

इस रघुवंश के अर्द्धश्लोक का छायानुवाद प्रस्तुत चौपाई में मिलता है - देखी राम, दुखित महतारी। जनु सुवेलि अवली हिम मारी।।३९

महाकवि कालिदास ने रघुकुल के आदर्श चरित्र को आचक्ष्य सत्वा वशिनां रधूणां मनः विमुख प्रवृत्तिः।।४०

श्लोक के द्वारा जो स्थापना दी है, उसे तुलसीदास ने एक समुन्नत भावभूमि के द्वारा रघुवंशी चरित्रों को अधिक उज्ज्वलता प्रदान की है-

रघुवंसिन्ह कै सहज सुभाऊ। कुपन्थ पगु धरइ न काऊ।।
जे सपनेऊ परनारि न हेरी।।४१

महाकवि कालिदास जिस प्रसिद्ध श्लोक के कारण 'उपमा कालिदासस्य' के गौरव से विभूषित हुए -

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिम्बरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्टइव प्रपेद्ये, विवर्णभावं स स भूमिपालः।।४२

के भाव को अत्यन्त कुशलतापूर्वक तुलसीदास ने अपने रामचरित मानस में इस प्रकार ग्रहण किया है -

सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छविगृह दीपशिखा जनुबरई।।४३

तुलसी ने सीताहरण के समय उनके विलाप को क्रौञ्ची पक्षी की भाँति बताया - विलपति अति कुररी की नाई।।४४

कालिदास के रघुवंश से सीताविलाप की ध्वनि को ग्रहण किया है -

सा मुक्तकण्ठं व्यसनातिभाराच्चक्रन्द विग्नाकुररीव भूपः।।४५

गोस्वामी तुलसीदास और महान् कवि कालिदास की रचनाओं में वर्णित रामराज्य की संकल्पनाओं में अधिक व्यापक, जनरंजक, सुखदायक एवं मंगलकारी रामराज्य, तुलसी का ही माना जाता है। श्रेष्ठ प्रसंगों में रामराज्य का भी वर्णन भी आता है। इसका आंशिक रूप रघुवंश से ग्रहण किया गया प्रतीत होता है -

न शठा नैव वाचाटा वंचका न हिंसकाः।
न च पाखण्डिनो भांडा न रण्डानैव शैंडिकाः।।४६

यहाँ तुलसी के मानस में अधिकांश भाव यही प्रकट हैं इन चौपायों में - अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब विरुज सरीरा।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।
सब निर्भेद धरम रत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।
सब गुनज्ञ पंडित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी।।४७

रामादि भाइयों के स्नेहिल भाव को रघुवंश से यथावत तुलसीदास ने मानो उतार लिया है-
भ्रातृभिर्भुजंमानं तं वीक्ष्यापुर्मातरः सुखम।४८
यही भाव श्रीराम चरितमानस में लिखा गया है-

अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
बी०एन०के०बी० स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अकबरपुर, अम्बेडकरनगर २२४१२२ (उ०प्र०)

'हरिकृष्ण 'प्रेमी' के नाटकों में चित्रित समाज'

कृष्ण कुमार जायसवाल

शोधार्थी, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
ई-मेलः kris3hna33@gmail~com
मो.ः ९४५०८२७७९७

मनुष्य के जन्म के साथ समाज का भी जन्म होता है। मनुष्यों का समूह ही समाज कहलाता है और मनुष्य सामाजिक प्राणी। समाज मनुष्यों के पारस्परिक संबंधों, संघर्षों, क्रियाकलापों, नियंत्रण की प्रणालियों एवं व्यावहारिक ढंगों से परिचालित एवं विकसित होता है। समाज शब्द व्यापक रूप से प्रयुक्त होने वाला शब्द है। परिवार की इकाई के रूप में यह सबसे छोटा एवं देश के रूप में सबसे बड़ा हो सकता है। प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज, नियम, लोकाचार, वेश-भूषा, प्रथाएँ एवं परम्पराएं होती हैं जिसके अनुरूप समाज का संचालन होता है। मनुष्यों के आपसी सहयोग से ही एक बेहतर समाज की स्थापना होती है एवं इसके द्वारा सामाजिक जीवन में व्यवस्था बनी रहती है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। समाज के ढांचे में भी हमेशा परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन जीवन एवं जगत के सभी पक्षों में होता है। मैकाइवर तथा पेज ने सामाजिक संबंधों की सदैव परिवर्तन होने वाली जटिल व्यवस्था को ही समाज कहा है। इनके अनुसार यह सामाजिक संबंधों का जाल है जो सदैव परिवर्तित होता रहता है।

साहित्य और समाज, दोनों का पुराना नाता है। जहाँ समाज है वहाँ साहित्य भी अवश्य उपस्थित है। साहित्य किसी समाज की झाँकी प्रस्तुत करता है। साहित्य में समाज निहित है और समाज में साहित्य। समाज साहित्य रचने की प्रेरणा देता है तो साहित्य समाज की वर्तमान स्थिति, संस्कृति, रीति-रिवाज़, त्योहारों आदि को संरक्षित कर भावी समाज एवं पीढ़ी को और अधिक उन्नत एवं क्रियाशील बनाने में मदद करता है। साहित्यकार समाज में हो रहे परिवर्तनों का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करता है और अपनी रचनाशीलता का प्रयोग कर उसे साहित्य का रूप देता है। साहित्यकार समाज से बहुत बारीकी से जुड़ा होता है। बगैर समाज के उसका कोई महत्व अथवा मूल्य नहीं होता। वह समाज के परिवेश में घुलकर उसमें निहित सामाजिक भावों, विचारों, सौंदर्यबोध और स्थितियों को अपने साहित्य में पिरोकर समाज के आस्वादन हेतु उपयुक्त बनाता है- 'साहित्य में कवि या लेखक के व्यक्तिगत तथा सामाजिक अनुभवों, दार्शनिक-आध्यात्मिक विचारों, प्रेम-भावना और सौंदर्यबोध आदि की अभिव्यक्ति होती है।'१

साहित्य की रचना हेतु समाज का होना अत्यंत आवश्यक है। जिस तरह का समाज होगा, साहित्य

भी उसी तरह का रचा जाएगा। साहित्य समाज के मानकों, कई महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारियों को साथ लेकर चलता है। साहित्य समाज का मार्गदर्शक है। नाटक साहित्य की सबसे पुरानी एवं उत्कृष्ट विधा है। यह अन्य विधाओं से कई मायनों में विशिष्ट है। इसके वैशिष्ट्य का कारण इसका दृश्यत्व है। अन्य विधाएं केवल कंठ और कानों तक ही सीमित रहती हैं किन्तु नाटक कंठ एवं कानों के साथ-साथ आँखों से भी अभिन्न रूप से जुड़ा होता है- 'काव्येषु नाटकं रम्यं के अनुसार नाटक सर्वाधिक रमणीय तथा काव्य में श्रेष्ठ नाट्यविधा है।'२ यह पूर्णतया सामाजिक विधा है क्योंकि इसके आयोजन से लेकर अवलोकन तक की सभी क्रियाएं समाज द्वारा एवं समाज में ही संपादित होती हैं।

मनुष्य सामाजिक प्राणी होता है तो साहित्यकार विशिष्ट सामाजिक प्राणी। वह पूरे विश्व को अपना परिवार समझता है। उसकी संवेदनशीलता व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के साथ-साथ संपूर्ण विश्व से जुड़ी होती है। फलस्वरूप उसका व्यक्तित्व विराट एवं संवेदनशील होता है। वह समाज, राष्ट्र एवं विश्व में हो रही कठिनाइयों व समस्याओं को अपनी समस्या समझ उसके समाधान हेतु प्रयासरत रहता है और अपनी विवेकशीलता से उसपर अपनी बौद्धिक प्रतिक्रिया भी देता है जिसमें उसका मानवीय दृष्टिकोण भी शामिल रहता है। जब उसके जीवन के विविध पक्षों के अनुभवों के अभिव्यक्ति की बात आती है तब वह अपनी तटस्थता एवं ईमानदारी का सहारा लेता है।

नाटककार समाज की संस्कृति, प्रकृति एवं परिवेश में घट रहे विभिन्न क्रियाकलापों, वेश-भूषा, भाषा आदि के आधार पर अपने कथानक, पात्र एवं संवाद का चुनाव कर उसे नाटकीय रूप देता है। वह अपने कथानक में कल्पना का समावेश तो करता ही है किन्तु उसकी यह कल्पना भी समाज के अनुरूप होती है। अतः नाटककार सामाजिक परिवर्तनों एवं गतिविधियों के प्रति बहुत जागरूक होता है। वह सामाजिक जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव पर भी दृष्टि रखता है एवं उन्हीं के इर्दगिर्द अपने नाटक का ताना-बाना बुनता है- 'नाटक सामाजिकों की अभिवृत्तियों, कार्य व्यवहारों को अभिनय के माध्यम से रंगमंच पर उपास्थित करता है, जिसे देखकर सामाजिकों का मनः प्रसादन होता है। नाटक में सभी वर्गों, जातियों की अवस्था, गुण, रुचि के अनुसार सामग्री उपलब्ध रहती है। नाटक की कथावस्तु में धर्म, क्रीड़ा, श्रम, हास्य, युद्ध एवं काम आदि भावों की अभिव्यंजना रहती है। वास्तव में भाव ही हमारे जीवनगत एवं सामाजिक मूल्य हैं। मंच पर इन्हें प्रतिफलित होते देखकर हमें एक प्रकार का आनंद मिलता है। हमारे सामाजिक भाव की तृप्ति होती है।'३

नाटक एक ऐसी विधा है जिसे देखकर एक अनपढ़ भी अपने सामाजिक भावों की तुष्टि कर लेता है। इसका महत्व सभी लोगों के लिए एक जैसा है। यही कारण है कि इसे समाज के अत्यंत निकट माना जाता है। नाटक अनुभूति एवं संप्रेषण दोनों ही प्रकार से समाज की ओर झुका हुआ है जिसका आस्वादन दर्शक एक साथ बैठकर करते हैं। नाटककार की वैयक्तिक अनुभूति भी नाटक में सामूहिकता का रूप ले लेती है। नाटक में मानवीय संवेदना अत्यंत सजीवता के साथ प्रेषित होती है। नाटककार प्रमुख रूप से समाज की वास्तविक स्थिति का चित्रण करने का प्रयास करता है। इस तरह वह अपने आपको समाज से बहुत जुड़ा हुआ पाता है। वस्तुतः नाटककार समाज की सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक आदि स्थितियों को आधार बनाकर उसे कल्पना एवं

समाजोपयोगी रस से पुष्ट कर नाटक की रचना करता है।

प्रसादोत्तर युग के हरिकृष्ण 'प्रेमी' जी कुछ इसी प्रकार के नाटककार हैं। प्रेमी जी ने अपने युग की परिस्थितियों को अपने नाटकों में प्रधानता तो दी ही है साथ ही मध्ययुगीन सामाजिक परिवेश को भी मुख्य रूप से शामिल किया है। प्रेमी जी के नाटकों में समाज के कई रूप हैं। उनके नाटकों में चित्रित समाज कभी मुगलकालीन ऐतिहासिक परिवेश का रूप ले लेता है, कभी राजस्थानी समाज की संस्कृति एवं शौर्य को शामिल करता है, कभी बुन्देलखंडी वीरता को, तो कभी स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान समाज की स्थिति का अद्भुत चित्र प्रस्तुत करता है जिसके केंद्र में राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक समन्वयता, सामाजिक एकजुटता एवं भाईचारे की भावना मुख्य रूप से शामिल रहती है। उदाहरण के लिए उनके आहुति, विष-पान, प्रतिशोध, उद्धार, प्रकाश-स्तंभ, विदा, शीशदान एवं रक्त-दान आदि नाटक देखे जा सकते हैं।

प्रसादोत्तर नाटककार हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने अपने नाटकों में सामाजिक मूल्यों को बड़ी तरजीह दी। उन्होंने भले ही तीन सामाजिक नाटकों 'ममता', 'छाया' और 'बंधन' की रचना की और इनमें समाज के सभी वर्गों का वास्तविक अंकन भी किया। किंतु उनके अन्य ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नाटकों में समाज का जो चित्रण मिलता है वह इन सामाजिक नाटकों को भी पीछे छोड़ देता है। उन्होंने अपने ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से आदर्श समाज एवं मिली-जुली संस्कृति के स्थापना की वकालत की। उन्होंने इन नाटकों में केवल समाज के विभिन्न वर्गों का चित्रण ही नहीं किया बल्कि इसमें सामाजिक एवं धार्मिक सद्भावों, भारतीय त्योहारों, रीति-रिवाजों, लोक मान्यताओं के साथ-साथ स्त्री की अस्मिता का भी चित्रण बखूबी किया। प्रेमी जी ने सामाजिक वर्गों के अन्तर्गत धनिक वर्ग की संवेदनहीनता एवं विलासिता का प्रभावशाली चित्रण कर धनिक एवं निर्धन वर्ग के द्वंद्व को भी दिखाया है- 'देखती नहीं हो वह सेठ खजांची राम की मोटर जा रही है। वे गरीबों पर धूल उड़ाते हुए चले जा रहे हैं।'४

प्रेमी जी के नाटकों में मुख्यतः उच्च वर्ग ही शामिल हैं किंतु उन्होंने अन्य वर्गों को भी स्थान दिया है। उन्होंने निर्धन वर्ग के साथ-साथ श्रमिक वर्ग के जीवन संघर्षों का बड़ा यथार्थ चित्रण किया है। 'बंधन' नाटक की निम्न पंक्तियाँ श्रमिक वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं कि बाग-बगीचे लगाने वाले, राजा के महलों का निर्माण करने वाले, यहाँ तक कि शस्त्र बनाने और उठाने वाले श्रमिक ही हैं किंतु इनके बदले उन्हें अपमान के सिवाय कुछ नहीं मिलता-

'चली मजदूरों की टोली
हमीं ने बाग लगाए हैं,
हमीं ने महल बनाए हैं,
हमीं ने राज जमाये हैं,
हमारी ही खाली झोली।
चली मजदूरों की टोली।
हमीं ने शस्त्र बनाये हैं,
हमीं ने शस्त्र उठाये हैं,
चलाते हम ही आये हैं,
हमारे ही ऊपर गोली।
चली मजदूरों की टोली।'५

हरिकृष्ण 'प्रेमी' जी ने निर्धन एवं श्रमिक वर्ग को अपने नाटकों में शामिल तो किया ही साथ ही उन्होंने भारतीय समाज में उपस्थित वर्ण एवं जाति व्यवस्था का खूब विरोध भी किया। प्रेमी जी प्रत्येक

व्यक्ति को समान रूप से देखते थे चाहे वह हिन्दू हो अथवा मुस्लिम, ब्राह्मण हो अथवा क्षत्रिय, वैश्य हो अथवा शूद्र। वह उनकी महानता को कर्म की कसौटी पर कसते थे- 'जन्म के कारण कोई नीच-ऊँच नहीं होता। कर्म ही असली कसौटी है।'६ लगभग सभी नाटकों में उनकी यह दृष्टि स्पष्ट होती है। जाति प्रथा का उग्र विरोध 'प्रकाश स्तंभ' नाटक में भी दिखाई देता है- 'जाति-प्रथा ने हमारे समाज को छिन्न-भिन्न कर दिया है। हममें पारस्परिक भ्रातृभाव समाप्त हो गया है। उच्च जाति वालों ने समाज के बड़े अंश को अस्पृश्य और दास की स्थिति में पहुँचा दिया है।'७

xxx xxx xxx

'मनुष्य मनुष्य में भेद करना ही तो हम भारतीयों की सबसे बड़ी भूल है। हम राजपूत, जाति और पद के अभिमान में, अन्य लोगों को छोटा समझने लगे।'८

सामाजिक एकता की स्थापना प्रेमी जी के नाटकों का ही नहीं बल्कि उनके जीवन का भी ध्येय रहा है। समाज में शत्रुता, धार्मिक कटुता एवं कट्टरता, जातीय विषमता को नष्ट कर समाज को राष्ट्रीय रंग में रंगना एवं मानवता की स्थापना उनकी विशेषता रही है। उन्होंने इसके लिए हर संभव प्रयास भी किए। यहाँ तक कि अपने नाटकों में अंतरजातीय एवं अंतर्राष्ट्रीय विवाह को अपना खुला समर्थन दिया है- 'मानव मात्र की एक जाति है। पद्मा और बाप्पा दोनों ही मानव-संतान हैं। दोनों में प्रेम और प्रेम के उपरांत विवाह होना किंचित भी अस्वाभाविक नहीं है और ऐसा न करना सामाजिक अपराध है।'९ xxxx xx 'अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य ने ही यवन राजा सेल्यूकस की पुत्री से विवाह किया था और दूरदर्शी, लौह-पुरुष, कुशल राजनीतिज्ञ, ब्राह्मणत्व के अभिमान, ज्ञान के मार्तण्ड, आचार्य चाणक्य ने उस विवाह को सम्पन्न कराया था।'१०

हरिकृष्ण 'प्रेमी' भारतीय संस्कृति एवं मानवता के पोषक हैं। उनके नाटकों में राष्ट्रीय चेतना मनुष्य के एकता की परिचायक है। साथ ही उन्होंने अपने नाटकों में धार्मिक कट्टरता की भर्त्सना की है। प्रसादोत्तर युग में समाज विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिवर्तनों से गुजर रहा था। समाज विभिन्न वर्गों एवं समुदायों में बंटा था। हिन्दू-मुस्लिम दोनों एक-दूसरे के कट्टर विरोधी थे, जिसका लाभ अंग्रेज बखूबी उठाते थे। प्रेमी जी ने इन्हें एकजुट करने का सार्थक प्रयास किया। मानवता के धर्म को सर्वोपरि मान उन्होंने धार्मिक सद्भाव को अपने नाटकों का केंद्र बनाया- 'असली मजहब तो है नेकी करना और खुदगरजी से बचना; न गरीबों को सताना और न मजबूतों के आगे सर झुकाना। एक लफ़्ज में 'इंसानियत' ही सच्चा मजहब है।'११

औरंगजेब कट्टर मुसलमान था। उसकी इस्लाम के प्रति प्रतिबद्धता एवं धार्मिक कट्टरता जगजाहिर है। वह धार्मिक प्रचार के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार था। 'विदा' नाटक में औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा स्वयं औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता का विरोध करती हुई दिखाई देती है- 'आप सादा जीवन व्यतीत करते हैं, इसलिए आपके लिए मेरे दिल में बहुत सम्मान है- लेकिन आप इस्लाम के प्रचार के जोश में कलाओं का नाश करना चाहते हैं, इसलिए मेरा मन भी आपसे विद्रोह करने को उत्तेजित हो उठता है।'१२ वहीं इसी नाटक में जहानारा हिन्दू-मुस्लिम एकता की प्रतिमूर्ति है। जहानारा के माध्यम से प्रेमी जी ने भारतीय समाज में हिन्दू-मुस्लिम की सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता को चित्रित कर धार्मिक भेदभाव को कुछ हद तक कम करने का प्रयास किया है- 'हिन्दू-मुसलमानों का

मेल इस इमारत को कायम रखने वाला चूना था, तुमने उसी को बर्बाद कर दिया। बिना चूने के यह इमारत कब तक खड़ी रहेगी? तुम्हारे पहले यह दुनिया नहीं जानती थी कि इस मुल्क में हिन्दुओं का राज है या मुसलमानों का। दुनिया की सारी ताकतें हिन्दोस्तान के क़दमों में सर झुकाती थीं और इसका फख्र हर एक हिन्दोस्तानी को था, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान।'१३

भारतीय समाज, संस्कृति एवं साहित्य में क्षत्रियों को जनता एवं राष्ट्र का संरक्षक माना गया है। हरिकृष्ण 'प्रेमी' जी ने अपने कई नाटकों में क्षत्रिय धर्म एवं कर्म का चित्रण किया है। क्षत्रिय कर्म को राष्ट्रीयता से जोड़कर प्रेमी जी ने क्षत्रिय जाति को विशिष्ट गौरव से अनुप्राणित कर दिया है। क्षत्रियों की युद्धप्रियता उनके वीरता एवं शौर्य का प्रमाण है। अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए वह यमराज से भी लड़ सकता है- 'राजपूत यम से भी युद्ध करने में नहीं घबराता। जिस तरह पतंग दीप की ज्योति-शिखा पर प्राणोत्सर्ग कर देता है उसी तरह हम भी रणचंडी की छवि-ज्वाला में जल मरने को प्रस्तुत हैं।'१४ क्षत्रिय अपनी आन, अपनी शान, अपनी परम्परा एवं अपने देश की प्रतिष्ठा के लिए युद्ध करने को तत्पर रहता है। कायरता का उसके जीवन में कोई स्थान नहीं है- 'राजपूत होकर जो प्राणों का मोह करता है उसको धिक्कार है। हमें एक न एक दिन मरना ही है तब घर पर पलंग पर साँसे तोड़कर निर्लज्ज मृत्यु पाने की अपेक्षा रणभूमि में मस्तक कटा कर गौरव की मृत्यु क्यों न मरें।'१५

भारतीय त्योहार सामाजिक एकता, सौहार्द्र, प्रेम, बंधुत्व एवं भाईचारे के प्रतीक हैं। प्रत्येक त्योहार की अपनी-अपनी विशेषताएँ एवं मान्यताएँ हैं, चाहे होली हो, दिवाली हो, रक्षाबंधन हो अथवा ईद-बकरीद। प्रेमी जी ने इन त्योहारों को अपने नाटकों में प्रमुख स्थान दिया है। यहाँ तक कि उन्होंने अपने एक नाटक का नाम ही 'रक्षाबंधन' रखा है। 'रक्षाबंधन' नाटक में राखी के महत्व को चित्रित किया गया है। राखी भाई-बहन के पवित्र रिश्ते का सूचक है। वह मात्र एक धागा नहीं है, बल्कि प्रेम का मजबूत बंधन है जिससे गैरों को भी अपना भाई बनाया जा सकता है। कर्मवती द्वारा भेजी गई राखी पाकर हुमायूँ कहता है- 'बहन का रिश्ता दुनिया के सारे सुखों, दौलतों, ताकतों और सलतनतों से बढ़ कर है। मैं इस रिश्ते की इज्जत रखूँगा। सलतनत जाय, पर मैं दुनिया को यह कहते नहीं सुनना चाहता कि मुसलमान बहन की इज्जत करना नहीं जानते। तख़्त से उतर कर अगर किसी सच्ची बहन के दिल में जगह पा सकूँ, तो अपने आपको दुनिया का सबसे बड़ा खुशकिस्मत इनसान समझूँगा। बहन कर्मवती ! तुम्हारी राखी मुझे वही ताकत दे, जो वह राजपूतों को देती है।'१६

प्रेमी जी समाज में स्त्री की अस्मिता की रक्षा हेतु प्रतिबद्ध हैं। उनके नाटकों में चित्रित अधिकांशतः स्त्रियाँ अपने सम्मान, स्वाभिमान एवं अधिकारों की रक्षा करने में समर्थ है। प्रेमी जी के नाटकों में स्त्रियाँ कई रूपों में उपस्थित हैं। एक तरफ उसका राष्ट्रप्रेमी वीरांगना रूप है तो दूसरी तरफ उसका गृहस्थ रूप। किसी नाटक में वह ऊँचे कुल की क्षत्राणी है तो किसी नाटक में सामंती व्यवस्था से पीड़ित एक अबला स्त्री। इन विविधताओं में एक चीज समान रूप से सभी स्त्री-पात्रों में विद्यमान है, वह है अपने स्वाभिमान एवं अपने अस्मिता की रक्षा का दृढ़ संकल्प। उसका कामिनी रूप त्याज्य है तो उसकी वीरता एवं नीति कुशलता ग्रहण करने योग्य- 'नारी को समझना बड़ा कठिन है। जब मैं उसे घर के सारे छोटे-बड़े धन्धे करते देखता हूँ, मेरा सिर श्रद्धा से झुक जाता है, लेकिन जब मैं

उसे बन-ठनकर, चेहरे पर पाउडर और होंठों पर लिपिस्टिक लगाए, भड़कीली पोशाक पहने किसी होटल में प्रवेश करते देखता हूँ, तो क्रोध से अंधा हो उठता हूँ।'१७

भारतीय समाज में स्त्रियों को वह यथोचित स्थान नहीं मिला जो प्राचीन काल में प्राप्त था। यहाँ तक कि स्त्रियों की स्थिति मध्यकाल से बिगड़नी शुरू हुई और वर्तमान समय तक भी पूरी तरह सुधर नहीं पाई। आज भी दहेज़ हत्या, घरेलू हिंसा के मामले समाज में आये दिन देखने को मिलते हैं, जिसकी वजह से कई स्त्रियाँ तो आत्महत्या करने को मजबूर होती हैं। फिर भी वर्तमान में स्त्रियों की स्थिति पहले से तो काफी बेहतर है। प्रसादोत्तर युग में पर्दा प्रथा, सती-प्रथा, बाल-विवाह एवं वैधव्य की समस्या मुँह बाए खड़ी थी। स्त्रियों को अपने विवेक से कार्य करने तक की स्वतंत्रता नहीं थी। वह पूरी तरह पुरुषों पर आश्रित थी। हिन्दू समाज में उनकी स्थिति मुस्लिम समाज की अपेक्षा कुछ हद तक ठीक थी- 'हमारे मर्दों ने स्त्रियों को परदे में बंद कर उन्हें दुर्बल बना दिया है। हमारे समाज में स्त्रियों को सिर्फ मनोरंजन का सामान-एक खिलौना समझा जाता है। हमारा समाज अपने आधे अंग को बेकार कर बैठा है। मुसलमानों की यह दुर्बलता किसी दिन उन्हें पराजित, पतित और दास बना कर छोड़ेगी।'१८

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हरिकृष्ण 'प्रेमी' जी सामाजिक समरसता एवं बंधुत्व के दूत हैं जिनके ऊपर भारतीय समाज एवं संस्कृति के संरक्षण की जिम्मेदारी है और उन्होंने अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह बखूबी किया है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के आलोक में संपूर्ण समाज को मानवता का पाठ पढ़ाया है। उनके लिए धन मायने नहीं रखता बल्कि आपसी प्रेम एवं भाईचारा मायने रखता है। यह भाईचारा, आपसी प्रेम, बंधुत्व, राष्ट्रप्रेम एवं सांस्कृतिक विविधता में एकता उनके लगभग सभी नाटकों में इत्र की भांति फैला हुआ है जो संपूर्ण साहित्य को अपने मनमोहक खशबू में समेटे हुए है। उनके लिए कोई जाति ऊँची-नीची नहीं है, बल्कि कर्म की महानता उन्हें ऊँचा बनाये हुए है। स्त्रियों को समाज में बराबरी का स्थान दिलाने के लिए उन्होंने खूब प्रयास किया। प्रेमी जी ने समाज के विभिन्न पहलुओं को छुआ है। उनकी सूक्ष्म साहित्यिक दृष्टि से समाज का कोई भी अंग छिपा नहीं है। अपने नाटकों में कई जगहों पर उन्होंने परंपरा की लीक से हटकर बातें की हैं किंतु लोकमानस की उपेक्षा करना उनके लिए संभव नहीं हो पाया है। हरिकृष्ण 'प्रेमी' जी ने उन परंपराओं एवं मान्यताओं को सिरे से ख़ारिज किया है जो मनुष्य की मनुष्यता में बाधक हैं, जिनसे धार्मिक सद्भावना, विश्वबन्धुता, सामाजिक एकता एवं मानवीयता को ठेस पहुँचती है।

संदर्भ-सूचीः

१. डॉ. देवराज, भारतीय संस्कृति, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, चौथा संस्करण, १९७९, पृष्ठ २५

२. डॉ. करुणा शर्मा, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का नाट्य-साहित्य : सामाजिक दृष्टि, पृष्ठ ३४

३. बाबू गुलाबराय, हिंदी नाट्यविमर्श, पृष्ठ ३४

४. हरिकृष्ण प्रेमी, बंधन नाटक, पृष्ठ ३०

५. वही, पृष्ठ १३-१४

६. हरिकृष्ण प्रेमी, संरक्षक नाटक, पृष्ठ १३०

७. हरिकृष्ण प्रेमी, प्रकाश-स्तंभ नाटक,

हिंदी भवन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९५४, पृष्ठ १९

८. हरिकृष्ण प्रेमी, साँपों की सृष्टि, पृष्ठ २०-२१

९. हरिकृष्ण प्रेमी, प्रकाश-स्तंभ नाटक, हिंदी भवन प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९५४, पृष्ठ ७

१०. वही, पृष्ठ ११५

११. हरिकृष्ण प्रेमी, प्रतिशोध नाटक, हिंदी भवन, जालंधर और इलाहाबाद प्रकाशन, १९५२, पृष्ठ ९८

१२. हरिकृष्ण प्रेमी, विदा नाटक, पृष्ठ ७

१३. हरिकृष्ण प्रेमी, प्रतिशोध नाटक, हिंदी भवन, जालंधर और इलाहाबाद प्रकाशन, १९५२, पृष्ठ १२४-१२५

१४. हरिकृष्ण प्रेमी, स्वप्न-भंग नाटक, आत्माराम एंड संस प्रकाशन, कश्मीरी गेट, दिल्ली, चौथा संस्करण, १९५२, पृष्ठ ८०

१५. हरिकृष्ण प्रेमी, बन्धु-मिलन, आधुनिक प्रकाशन गृह, अलोपीबाग, इलाहाबाद, चौथा संस्करण, १९७८, पृष्ठ २०-२१

१६. हरिकृष्ण प्रेमी, रक्षाबंधन नाटक, हिंदी भवन, जालंधर और इलाहाबाद प्रकाशन, १६वाँ। संस्करण, पृष्ठ ५५

१७. हरिकृष्ण प्रेमी, छाया नाटक, पृष्ठ ३०

१८. हरिकृष्ण प्रेमी, स्वप्न-भंग नाटक, आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, चौथा संस्करण, १९५२, पृष्ठ ६५

कृष्ण कुमार जायसवाल,
शोधार्थी, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
ई-मेलः kris3hna33@gmail.com
मो. : ९४५०८२७७९७

राष्ट्र की आत्मकथा के रूप में साहित्य

डॉ॰ संजय गौतम

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
संपर्क – sgautam20@gmail.com

साहित्य के राष्ट्रीय स्वरूप और उसके राजनीतिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व से गहरे जुड़ने की भावना की अभिव्यक्ति का एक उदाहरण अंग्रेजी साहित्य के प्रति ब्रिटिश लोगों के दृष्टिकोण में देखा जा सकता है। उन्नीसवीं सदी के मध्य में इंग्लैंड में साहित्य को प्राचीन समय के केवल एक वर्ग विशेष की रुचि का प्रदर्शन ही नहीं माना गया, बल्कि अंग्रेजी साहित्य को उस समय राष्ट्र के सांस्कृतिक इतिहास का निर्माण का कारक माना जा रहा था। लंदन में चार्ल्स किंग्जले ने क्वीन्स कॉलेज का उद्घाटन भाषण देते हुए सन् १८४८ में कहा था कि साहित्य और कुछ नहीं बल्कि राष्ट्र की आत्मकथा' (the autobiography of the nation) है। साहित्य के प्रति इस दृष्टिकाण का एक पक्ष राष्ट्रीय गौरव से साहित्यिक श्रेष्ठता को जोड़ना भी था। उदाहरण स्वरूप मैकाले के उस वक्तव्य को याद किया जा सकता है जिसमें उन्होंने कहा था कि 'यूरोप की किसी भी अच्छी लाइब्रेरी की पुस्तकों की एकमात्र शेल्फ भारत और अरब के समस्त साहित्य की तुलना में श्रेष्ठ है। संस्कृत भाषा में उपलब्ध समस्त साहित्य से प्राप्त जितनी ऐतिहासिक जानकारी है, वह इंग्लैंड के स्कूलों में दी जाने वाली आरंभिक जानकारी से भी बहुत कम है।' इस प्रकार औपनिवेशिक सत्ता का अहम् अपने देशीय साहित्य को जहाँ आत्मकथा का स्वरूप बतला रहा था, वहीं उसके माध्यम से राष्ट्रीय संस्कृति की श्रेष्ठता स्थापित कर अपनी 'राष्ट्रीय पहचान' को रेखांकित कर रहा था। इसके बरक्स भारत में साहित्य की निम्नस्तरीयता प्रतिपादित करना, उसके सांस्कृतिक और राजनीतिक स्तर पर पिछड़े होने का सूचक था। यह उनकी अपनी परिभाषा के तहत ही यहाँ किसी 'राष्ट्र' या उसकी 'आत्मकथा' के स्वरूप को अस्तित्वविहीन मानना था। इस तर्क की परिणति स्वाभाविक रूप से भारतीय समाज में उपस्थित किसी भी साहित्य-परंपरा को नकारने के साथ-साथ समाज को असभ्य मानने में ही होती है।

साहित्य की सामाजिकता के प्रश्न का साहित्य के विमर्श में धीरे-धीरे केंद्रीय स्थान पाना एक महत्त्वपूर्ण

घटना बना। यह युगीन परिस्थितियों का दबाव ही था कि साहित्य की सामाजिक भूमिका या सक्रियता को उजागर किया जाए। तब क्या यह मान लेना चाहिए कि भारत में साहित्य और समाज के रिश्तों के प्रति उपजी संवेदना का मुख्य कारण भारतीयों द्वारा अंग्रेजी साहित्य के प्रति ब्रिटिश लोगों की धारणा का अनुकरण मात्र रहा? दूसरे शब्दों में राष्ट्र अथवा समाज और साहित्य के परस्पर संबंधों के प्रति उत्पन्न नवीन दृष्टिकोण क्या सीधे-सीधे ब्रिटिश शासकों के भारतीय साहित्य के प्रति दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया माना जा सकता है? यहाँ साहित्य को राष्ट्रीय अस्मिता का प्रश्न बनाने की ललक कहाँ तक अंग्रेजी साहित्य द्वारा उपलब्ध कराए गए पैमानों का अनुकरण करती है? अंततः राष्ट्र की आत्मकथा के रूप में स्वत्व की पहचान करने वाले साहित्य का 'आत्म' कौन है? उसका स्वरूप कैसा है?

इसमें कोई दो राय नहीं है कि भारतेंदु युग या उसके बाद के अधिकांश साहित्यकार अंग्रेजी अथवा अन्य विदेशी भाषाओं के साहित्य से परिचित थे। अंग्रेजी साहित्य की पुस्तकों के अनुवाद और साहित्य के अनेक सिद्धांतों पर हुई बहसें इसके साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। किंतु इस चेतना के हिंदी साहित्य में प्रस्फुटन को केवल विदेशी साहित्य से प्रभावित होना या सीधे-सीधे अंग्रेजी शासन के या उनके साहित्य संबंधी गौरव के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया मानना सही प्रतीत नहीं होता, बल्कि यह प्रक्रिया बहुस्तरीय है। जैसाकि दाऊद अली ने 'इन्वोकिंग द पास्ट : द यूज़ेस ऑफ़ हिस्ट्री इन साउथ एशिया' में स्पष्ट किया है, तत्कालीन सामाजिक ऐतिहासिक चेतना सीधे-सीधे पश्चिम का अनुकरण या उसकी सीधी प्रतिक्रिया नहीं थी। इस प्रक्रिया में भारतीय रचनाकारों की उपस्थिति केवल आँख मूँद कर अनुकरण करने वाले निष्क्रिय (उदासीन) ग्रहणकर्ता के रूप में नहीं थी। दूसरी ओर इनकी प्रतिरोध की प्रक्रिया भी सीधी सरल रैखिक रूप में नहीं है, बल्कि उनका विमर्श एक सचेत सक्रिय हस्तक्षेप को दर्शाता है, जिसमें राष्ट्रवाद की चेतना और सामाजिक जिम्मेदारियों को निभाने की कोशिश विद्यमान है। यहाँ यह प्रक्रिया देशी स्वरूपों के निर्माण में सचेत रूप से कुछ तत्त्वों को अपनाने और कुछ त्यागने के भाव में स्पष्ट लक्षित की जा सकती है। चाहे उसका संदर्भ देशीय हो या विदेशी, परंपरा हो या आधुनिकता, साहित्य हो या समाज। यह अपने हित में उपस्थित तत्त्वों के सही प्रयोग की चेष्टा थी। दूसरे शब्दों में, इसे चुनाव की प्रक्रिया या छँटनी का अवसर भी कहा जा सकता है। अवसर के अनुसार चुनाव करना, अपने हित में उसका उपयोग करना अपने लक्ष्य को साधने का ज़रिया बना। इसे जहाँ एक ओर राजभक्ति और देशभक्ति' के सह-अस्तित्व में देखा जा सकता है, वहीं दूसरी ओर विदेशी साहित्यिक विधा, उपन्यास आदि को अपनाकर अपनी बात कहने का माध्यम बनाने में भी। भारत की दुर्दशा के कारणों को चिह्नित करना और उस पर अपनी तीखी प्रतिक्रिया करना स्वतंत्रतापूर्व साहित्य की सामाजिक भूमिका को उजागर करता है।

भारतेंदु युग का साहित्य भारत की विद्यमान दुरवस्था के कई कारणों की खोज करता है, जिनमें विदेशी शासन एक प्रमुख कारण है, जिसके समक्ष भारतीय समाज को अपनी अनेक कमजोरियों के चलते घुटने टेकने पड़े। विदेशी शासन से अभिप्राय अंग्रेजों का शासन मात्र नहीं लिया गया, बल्कि उसमें मुस्लिम शासन-काल को विदेशी आततायियों के रूप में पहचानने की समझ भी स्पष्ट रूप से दिखती है। भारतेंदु के नाटक 'भारत दुर्दशा' में भारत की दुर्दशा का कारण, 'भारत दुर्दैव' आधा अंग्रेजी और आधा मुस्लिम पोशाक पहनकर ही उपस्थित होता है। यह अकारण ही नहीं था कि अंग्रेजी राज्य की भूमिका को मुसलमानों के शासन से मुक्ति दिलाने में देखी जा रही थी। हालाँकि यह चेतना कि अंग्रेजी शासन भी विदेशी है और आर्थिक शोषण करने वाला है, भारतेंदु युग में सर्वत्र विद्यमान है लेकिन मुस्लिम शासन काल से उसकी निरंतर तुलना करना और कई कारणों से उसकी श्रेष्ठता को मानना भी इस चेतना का मुख्य अंग रहा। भारतेंदु के नाटक 'भारत-जननी' में 'लक्ष्मी' यह कहकर विदेश चली जाती है कि 'लक्ष्मी करें इत रहिकै अब जिय तासों यही विचारा / छाँड़ि मूढ़ इन कहूँ अचेत हम जात जलधि के पारा।' भारत जननी अपने पुत्रों को जगाने की कोशिश करती है। वह कहती है-

'बेटा, हमारा धन, आभूषण, वसन इत्यादि सब लुटेरे बलात् हर ले गए। अब हम निराधार हो रही हैं। हाय ! जो अंग्रेजों का राज्य न होता तो अब तक तो मेरे प्राण न बचते।'

यह मुस्लिम शासन काल की ओर इशारा करना ही था। लेकिन औपनिवेशिक सरकार --जिसका मुख्य ध्येय आर्थिक शोषण करना था–भारतेन्दु की आलोचना से नहीं बचती भारत दुर्दशा का महत्त्वपूर्ण कारण अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति भी थी. इसलिए उन्होंने अपने साहित्य में उसकी आलोचना भी की। जैसे -

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी
ताहू पै महंगी काल रोग विस्तारी
दिन दिन इन दुख ईस देत हा हा री ।
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई
हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।'

भारतेन्दु युग में होली या दिवाली जैसे त्योहारों की आड़ लेकर अंग्रेजी शासन की आर्थिक नीति की आलोचना करना भी महत्त्वपूर्ण है। 'अंग्रेजी सुराज्य' की तुलना मुस्लिम शासन काल से करना 'कहाँ जाई, का करी' के असमंजस वाले भाव उत्पन्न करता है। इसमें निहित एक तथ्य की ओर ध्यान देना चाहिए कि इस दृष्टि में गुलामी का काल मात्र अंग्रेजी शासन नहीं, वह मुस्लिम शासनकाल भी माना जा रहा था। प्रतापनारायण मिश्र ने दोनों की आर्थिक नीति की तुलना करते हुए लिखा कि 'जितना दारिद्र मुसलमानों के सात सौ वर्ष के शासन द्वारा फैला था, उससे अधिक इस नीतिमय राज्य में विस्तृत है। मुसलमानों ने सात सौ वर्ष राज्य किया उसमें भी.... अन्न वस्त्र सबको मिला रहता था। पर इस राज्य में सौ ही वर्ष के बीच यह दशा हो गई है कि देश-भर में चौथाई से अधिक जन केवल एक बेर खा पाते हैं, सो भी पेट भर नहीं।'

बिना संगठित हुए किसी भी समाज में परिवर्तन की उम्मीद करना बेकार ही है। इसलिए भारत की दुर्दशा का कारण 'भारत-दुर्दशा' नाटक में किसी न किसी रूप में 'फूट' 'कलह', 'अनैक्य' जैसी सामाजिक कमजोरियों को भी उजागर किया गया है। मसलन -

'इन सों कुछ आस नहिं थे तो सब विधि बुद्धि बलहीन,
बिना एकता बुद्धि कला के भए सबहिं विधि दीन।।'

यहाँ एकता के आह्वान का जो स्वरूप निर्मित होता है, वह ऊपरी तौर पर सबको साथ लेकर चलने वाला दिखाई देता है। लेकिन भारत दुर्दशा के कारण इस्लाम को शामिल करने वाली दृष्टि के बरक्स इसे देखा जाए तो इन समस्त 'चिंताओं का केन्द्र 'हिन्दू समाज' ही बन जाता है। वह बात और है कि अंग्रेजी शासनकाल के खिलाफ एकजुट होने की मजबूरी में कभी-कभी मुस्लिम समाज से भी साथ चलने का आग्रह किया जाता है। तत्कालीन इतिहास-बोध को और स्पष्ट रूप में रखने वाली एक कविता की कुछ पंक्तियाँ इस संदर्भ में द्रष्टव्य हैं। यह कविता पं. बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने १८७७ जनवरी में लिखी थी। 'राजराजेश्वरी जयति नामक कविता में महारानी विक्टोरिया को राजेश्वरी कहा गया है।

'बहुत दिनन सों भूमि यह भारत ही अति दीन ।
निजपति बिपति वियोग सों सदा रहो छवि हीन ।।
जो कछु या कहें नृप मिले अधम कुटिल खल नीच ।
दुष्ट पतिन मिलि और हू, रही शोक निधि नीच ।।

को सदा हति बोई गुन काम ।
याके पुत्रन यूँकि यूँकि भारत नरन कियो अमित इसलाम ।।
दिल्ली, मथुरा, कन्नऊज से अंगन करि करि भंग ।
आरज रुधिर प्रवाह सो कर-करि रंगा-रंग ।।
अति असंख्य अद्भुत सुगृह, देवालय बहु तोरि ।
पूरब कथित अभूषन डारयों यासों छोरि ।।
धन अंबर हरिकै कियो या ललना को नंग ।
गुनि जन पंडित केश सिर नोचिकियो छवि भंग ।।
तोरि देव प्रतिमा अमित पुनि गोमांस मिलाय ।
भरि तोबरन पुजारिनहिं ग्रीवा मह लटकाय ।।
नगर घुमायो तिन प्रथम, पुनि हरि लियो परान ।
सुरभी रक्त पिलाय बहु करि दीना मुसलमान।।
या विधि जब उत्पात बहु कियो यवन नरनाह ।

ISSN: 2583 - 5750

दुख सागर बाढत भयो, भारत परजा मांह ।।
जब करुणानिधि आपु हरि, है के महा अधीर।
नासि यवन राजहिं हर्यो, प्रजा दुसह दुख पीर ।।
ब्रिटिश राज थाप्यों, सुदृढ़ भारत खंड मझार।
न्याय प्रकास्यों रवि सदृश, हरि दुख दुसह विकार ।।
तब पुनि भारथ वाम सो भगवत करुणा ऐन ।
पूरब सम पति तुहि दियो अवरहु सदा सचैन ।।

हवे हवे हवे आनंद मगन देत सबै आसीस।
जिये जिये विक्टोरिया सुख सों लाख बरीस।।'

इस प्रकार भारतीय इतिहास के मध्यकाल की जिस छवि का निर्माण किया जा रहा था, वह इस्लाम को काले रंग में प्रस्तुत करती थी। उस समय अंग्रेजी शासन से जो भी वर्तमान समीकरण बन रहे हों, उनके बरक्स हिन्दू अस्मिता का निर्माण इस समय की महत्त्वपूर्ण घटना रही है। अंग्रेजी सत्ता, मुस्लिम संप्रदाय और 'हिन्दू जाति' तीनों की उपस्थिति एक त्रिकोणीय संघर्ष या वर्चस्व के दावेदारों के रूप में दर्शाती है। हिन्दी ही नहीं, वरन् अन्य भारतीय भाषाओं में भी इस त्रिकोणीय मुकाबले की अभिव्यक्ति कम नहीं है। डॉ॰ असगर वजाहत के शब्दों में, 'एक जाति के रूप में हिन्दू अपने खोए हुए गौरव को प्राप्त कर रहे थे जो किसी मुसलमान शासक के अंतर्गत प्राप्त करना असंभव था और मुसलमान अपनी पुरानी पहचान को बचाने की कोशिश में लगे हुए थे।' इस क्रम में अपनी भाषाओं में साहित्य रचनाओं में अपने भावों को व्यक्त करने का मौलिक प्रयास हुआ, साथ ही काम आ सकने वाली रचनाएँ भी धड़ल्ले से अनूदित की जाने लगीं। प्राचीन साहित्य की श्रेष्ठता और प्राचीन गौरव की महिमा को प्रतिपादित करने के लिए संस्कृत साहित्य की अनेक पुस्तकों का अनुवाद किया गया। साथ ही प्राचीन संस्कृति की श्रेष्ठता दिखलाने के लिए मुस्लिम काल से पहले का समय केन्द्र में रहा, यही कारण है कि ऐतिहासिक नाटकों और उपन्यासों की एक लम्बी शृंखला की उपस्थिति बीसवीं सदी के आरंभ में देखी जा सकती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने स्वयं सन् १९२२ में बांग्ला भाषा से एक उपन्यास का अनुवाद किया। 'शशांक' नामक यह उपन्यास राखालदास बंद्योपाध्याय ने लिखा था। बांग्ला भाषा में उपलब्ध अनेक ऐतिहासिक रचनाओं में से इसी को अनुवाद के लिए चुनना इसलिए महत्त्वपूर्ण था क्योंकि इस उपन्यास से 'अपनी प्रतिभा द्वारा हमारे सामने हिन्दुओं के पूर्व जीवन के माधुर्य का चित्र रखकर आप (राखालदास) ने बड़ा भारी काम किया।' हिन्दुओं के पूर्व जीवन के माधुर्य से तात्पर्य है- हिन्दू जीवन की सहज सुन्दरता, दयालुता आदि अर्थात् हिन्दू जीवन की श्रेष्ठता। इस उपन्यास में हिन्दुओं की शिष्टता, सभ्यता आदि के प्रति शुक्ल जी के भावों को तत्कालीन विमर्श के संदर्भ में देखा जा सकता है, जब वे लिखते हैं–' मुसलमानी या फारसी तमीज के कायल इसमें यह देख सकते हैं कि हमारी भी अलग शिष्टता थी, अलग सभ्यता थी।' यह ध्यातव्य है कि इसी शशांक ने बौद्धों का घनघोर दमन भी किया था और आचार्य रामचंद्र शुक्ल उसके बौद्ध दमन पर इस उपन्यास में कुछ घटना-परिवर्तन भी करते हैं।

कई साहित्यिक रचनाओं में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति की भिन्नता दर्शाने या अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने तक ही बात नहीं रुकती बल्कि उसमें 'अन्य' को कलंकित करने का प्रयास भी सहज रूप में हुआ है। इस रचना-प्रक्रिया में अनेक बार रचनाकारों ने सचेत रूप से इतिहास को दरकिनार कर कल्पना का पल्ला पकड़ लिया। यह मिथक-निर्माण का सचेत प्रयास कहा जा सकता है। किशोरीलाल गोस्वामी ने मुस्लिम शासन काल को केन्द्र में रखकर बहुत से ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की थी। अपने इतिहास और कल्पना संबंधी दृष्टिकोण को उन्होंने इन शब्दों में उजागर किया-

'हमने अपने बनाए उपन्यासों में ऐतिहासिक घटना को गाँठा और अपनी कल्पना को मुख्य रखा है, और कहीं-कहीं तो कल्पना के आगे इतिहास को दूर से ही नमस्कार कर दिया है।'

यहाँ प्रश्न कल्पना के प्रयोग की दिशा का है। कल्पना को गोस्वामी जी महज साहित्यिक रचना के लिए आवश्यक तत्त्व के रूप में इस्तेमाल नहीं करते। बल्कि सचेत रूप से मनचाही घटनाओं को दर्शाने और कुछ निष्कर्षों तक पहुँचने में करते हैं। इस प्रकार उनकी और

अन्य कई साहित्यिकारों की रचनाएँ कुछ मिथकों का निर्माण करती हैं जिनमें मुस्लिम शासन काल एक भयावह चेहरा लिए उपस्थित होता है। गोस्वामी जी के अनेक उपन्यासों में हिन्दुओं को श्रेष्ठ और मुस्लिम शासकों को नीचा दिखाने के प्रयास का संकेत उनके शीर्षक से ही मिल जाता है। जैसे- 'तारा या क्षेत्र कुल कमालनी कनक कुसुम वा मस्तानी', 'सुल्ताना रजिया बेगम वा रंगमहल में हलाहल', 'हीराबाई का बेहयाई का बोरका', लखनऊ की कब्र वा शाही महलसरा, आदि ।

गोस्वामी जी के ऐतिहासिक उपन्यासों की चर्चा करते हुए विश्वम्भर मानव ने ठीक ही लिखा है कि गोस्वामी जी ने 'बादशाहों और नवाबों की लंपटता क्रूरता और कायरता तथा उनकी बेगमों और बाँदियों की विलासिता, चरित्रहीनता और छलकपट का जैसा वर्णन किया है, वह निश्चित रूप से अन्यायपूर्ण और अतिरंजित है। मुस्लिम संस्कृति के किसी शुभ पक्ष की ओर इनकी दृष्टि गयी ही नही। ...उज्ज्वल नैतिकता के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं। इसके विपरीत हिन्दू राज-पुरुषों में वीरता और राजकुमारों में सतीत्व की दृढ़ता का प्रर्दशन हुआ है।'

ऐतिहासिक रचनाओं में जहाँ हिन्दू संस्कृति की श्रेष्ठता को दिखाने का भाव प्रबल रहा, वहीं सम-सामयिक मुद्दों पर लिखी गई अनेक रचनाओं में अंग्रेजी संस्कृति से प्रभावित होने के दुष्प्रभावों की चर्चा मुख्य रही। यह अकारण नहीं है कि अनेक उपन्यासों के शीर्षक 'आदर्श' से आरम्भ होते हैं तथा २०वीं सदी के आरम्भिक दौर तक गृहस्थ, दम्पती, स्त्री, विधवा, हिन्दू, योगी, ब्रह्मचारी आदि के जीवन पर लिखे गए अनेक उपन्यास उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार के उपन्यासों में हिन्दू समाज के प्राचीन आदर्शों की रक्षा तथा नवीन परिस्थितियों में उनके निर्वाह की संभावना पर चितंन दर्शनीय हैं। पश्चिमी शिक्षा और सभ्यता के कुप्रभाव से युवकों और मुख्यतः स्त्रियों को बचाने की चेष्टा यहाँ देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए लज्जाराम शर्मा के दो उपन्यासों 'स्वतन्त्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' तथा 'हिन्दू गृहस्थ (१९०३) को देखा जा सकता है।

'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' में दो बहिनों की चर्चा है। दोनों विरोधी स्वभाव की हैं। रमा पश्चिम रंग-ढंग में घुली है और प्रेम के संबंध में स्वच्छंद रूप से व्यवहार करती है। लक्ष्मी में भारतीय संस्कारों की प्रधानता है। वह गृहलक्ष्मी है। रमा अपने बैरिस्टर पिता की ढील के कारण बिगड़ गई, वहाँ लक्ष्मी अपने बाबा के प्रभाव से सुशीलता के मार्ग पर बढ़ती रही। रमा का अंत दुखद है, लक्ष्मी का सुखद। यहाँ शीर्षक में ही 'स्वतंत्र रमा को भ्रष्ट, परतंत्र लक्ष्मी' को सही दिखाना लेखक की समस्त चिंताओं को दिखाता है। यह 'जिमि स्वतंत्र होंहि बिगरहिं नारी' के भाव की एक नई विधा में हुई प्रतिष्ठा है। इस प्रकार के अनेक उपन्यासों द्वारा स्त्री-जीवन के सामाजिक दायरे को निश्चित करने का उपक्रम भी किया गया।

'हिंदू गृहस्थ' में एक जमींदार के दो पुत्रों नयनसेन और हरसहाय का वर्णन है। नयनसेन विदेश से बैरिस्टर होकर लौटता है और चरित्र-भ्रष्ट हो जाता है। हरसहाय घर पर शिक्षा प्राप्त कर समाज-कल्याण के कार्य में रत रहता है। लेखक की दृष्टि में आधुनिक शिक्षा प्राप्त करना अपने उच्च हिंदू आदर्शों को भूलना और समाज से कट जाना है।

'जो भी हमारा है–वह अच्छा है, श्रेष्ठ है', इस बात को तत्कालीन साहित्यकारों ने 'अन्य' से 'हमारे' की तुलना करके बहुधा देखा है। इस संदर्भ में चाहे कोई भी 'अन्य' का स्थान ले। संस्कृत की उत्तराधिकारिणी के रूप में 'हिंदी' को स्थापित करने का प्रयास भी इसी दृष्टि का परिचायक है। जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी की निम्न पंक्तियों द्रष्टव्य हैं-

'अपनी भाषा है भली, भलो आपुनो देस ।
जो कुछ अपुनो है भलो यही राष्ट्र संदेस
देशन में भारत भलो, हिंदी भाषन माहि
जातिन में हिंदू भली और भली क नाहिं।'

हिंदू जाति के गौरव और प्रतिष्ठा की रक्षा करने वाले जो भी महापुरुष थे या हैं, वे पूज्य हो जाते हैं। चाहे वह शिवाजी हों या तुलसीदास। प्रसंगानुकूल आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखी गई 'गोस्वामी जी और हिंदी जाति नाम कविता की कुछ पंक्तियाँ देखना जरूरी है। ऐसा इसलिए कि इन पंक्तियों में जहाँ हिंदू जाति पर तुलसीदास के

उपकार की चर्चा की गई है, वहीं यह आचार्य शुक्ल के आलोचनात्मक विवेक का निर्माण करने वाली चेतना का भी सार रूप प्रस्तुत करती है-

'बल-वैभव- विक्रम-विहीन यह जाति हुई जब सारी,
जीवन रुचि घट चली, हट चली जग से दृष्टि हमारी,
प्रभु की ओर देखने जब हम लगे हृदय में हारे,
नए पंथ कुछ चले चिढ़ाने वह तो जग से न्यारे ।
उस नैराश्य गिरा से आहत मन गिर गया हमारा।
अंधकारमय लगा जगत यह रहा न कहीं सहारा।
अटपट बाणी ने जीवन की खटखट से खटकाया
लोकधर्म के रुचिर रूप पर चटपट पट फैलाया।

रंजन करना साधुजनों का, दुष्टों को दहलाना,
दोनों रूप लोकरक्षा के हैं, यह भूल न जाना ।
उभय रूप में देते हैं, जिसमें भगवान दिखाई
वह प्राचीन भक्ति तुलसी से फिर से हमने पाई।
यही भक्ति है जगत बीच जीना बतलाने वाली
किसी जाति के जीवन की जो करती है रखवाली।'

उपर्युक्त पद्यांश के संबंध में एक बात पर ध्यान देना जरूरी है कि यहाँ हिंदी जाति के बल-वैभव से हीन होने की दशा का कारण इस्लाम ही आचार्य शुक्ल का आलोच्य नहीं है, वरन् 'नए-नए पंथ - जो चिढ़ाने को चले' वे भी आचार्य की दृष्टि में लोकधर्म को गायब करने वाले होने के कारण दोषी हैं। जाहिर है, यह इशारा भक्ति की निर्गुण धारा के कवियों की ओर है ये नए मत जहाँ भक्ति के परंपरागत सगुण स्वरूप को नकार रहे थे, वहीं जाति-व्यवस्था पर प्रहार करना भी उनकी मूल चेतना बनी थी। स्पष्ट है कि शुक्ल जी की दृष्टि में इससे जाति के जीवन की रखवाली नहीं हो सकती थी। 'भारत-भारती' काव्य की रचना करने वाले प्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण गुप्त जब यह विचार करते हैं कि

'हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी
आओ विचारें मिलकर यह समस्याएँ सभी।' (भारत-भारती)

तब वे समस्याओं पर विचार करते हुए प्राचीन गौरव की याद दिलाकर प्राचीन के प्रति पूज्य भाव की अभिव्यक्ति करते हैं। प्राचीनता का यह मोह जब जन को उठने के लिए ललकारता है, तब उसकी शब्दावली ही नहीं बल्कि कथ्य में भी वर्ण व्यवस्था पर आधारित चिंतन मुखर हो उठता है-

'क्षत्रिय! सुनो अब तो कुयश की कालिमा को मेट दो।
निज देश को जीवन सहित तन, मन तथा धन भेंट दो।
वैश्यो ! सुनो व्यापार सारा मिट चुका है देश का ।
सब धन विदेशी हर रहे हैं पार है क्या क्लेश का?

इस बिंदु पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और मैथिलीशरण गुप्त की समानता देखी जा सकती है। प्राचीन में रमना और वर्तमान समय में भी जाति-व्यवस्था को उचित मानना स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े बहुत से साहित्यकारों और समाज-सेवियों की दृष्टि में सही था। इसका कारण परंपरा पर विश्वास करना और एकता कायम करने की एक व्यवस्था के रूप में इसको देखना था। इस एकता के तर्क में वर्चस्व के बिंदुओं को उठाना नहीं बल्कि एक व्यवस्था के रूप में वर्ण-व्यवस्था को प्रोजेक्ट करना था, जिससे सामाजिक विखंडन की स्थिति स्वयं एक गौरवान्वित करने वाले तत्त्व के रूप में उपस्थित हो सके इसलिए प्राचीन समाज-व्यवस्था वर्णाश्रम के अनुरूप एकता का मॉडल सहज ग्राह्य हो जाता है। यथा-

'ब्राह्मण बढावें बोध को, क्षत्रिय बढ़ावे शक्ति को
सब वैश्य निज वाणिज्य को त्यों शूद्र भी अनुरक्ति को ।
यों एक मन होकर सभी कर्तव्य के पालक बनें-
तो क्या न कीर्ति-वितान चारों और भारत के तनें?'

----o----

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

[1] Dalmia Vasudha, *The Nationalisation of Hindu Tradition*: *Bhartendu Harischandra* ***And Nineteenth-Centurry Banaras,*** **Oxford India,1999** page- 271

[2] Quoted in Moorhouse Geoffrey, *India Britannica, Paladin, London*, 1984, page. 77-78..

[3] See Ali Daud (ed.), *Invoking the Past : The Uses of History in South Asia*, OUP, Delhi**,** 1991, page. 2

४ दास,ब्रजरत्न (सं॰), भारतेन्दु ग्रन्थावली (भाग-१), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं॰ वि॰ २००७, पृष्ठ-५०६

५ वही, पृष्ठ-४७७

६ मल्ल, विजयशंकर(सं॰),प्रताप नारायण मिश्र ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं॰ वि॰ २०१४,पृष्ठ- २७२ तथा ११९

७ भारतेंदु ग्रंथावली-१, पृष्ठ- ४८५

८ 'उद्धृत, सुजाता राय, राष्ट्रीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता का आदिकाल, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली,१९९६, पृष्ठ- २०८

९ वजाहत, असगर, हिंदी उर्दू की प्रगतिशील कविता, मैकमिलन, इंडिया,१९८१ पृष्ठ- ९

१० उद्धृत, सिंहल, शशिभूषण, (प्र. सं॰) रामचंद्र शुक्ल., ऋषभचरण जैन एवं संतति, दिल्ली, १९८६, पृष्ठ-४६

११ वही

१२ उद्धृत, मानव, विश्वंभर, उन्नीसवीं सदी के उपन्यासकार, कृति प्रकाशन, इलाहाबाद,१९७० पृ. ५९

१३ वही, पृ. ५९-६१

१४ पाण्डेय, सुधाकर (सं.), हिंदी काव्य गंगा, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण पृ. ४३१

१५ वही, पृ. ४५२-५३

१६ गुप्त, मैथिलीशरण, भारत-भारती, साहित्य सदन, झाँसी, सन २०००, पृष्ठ- १७७

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
संपर्क – sgautam20@gmail.com

मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी की रचनाओं में व्यंग्य के रंग

डॉ॰ संजय गौतम

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
संपर्क – sgautam20@gmail.com

ठहाकों से क़िलों की दीवारें नहीं टूटतीं। चटनी और अचार लाख चटपटे सही लेकिन उससे भूखे का पेट नहीं भरता। न मृग मारीचिका से यात्री की प्यास बुझती है। हाँ, मरुस्थल का तीखापन कम लगने लगता है। (ज़रगुज़श्त)

- मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी

उर्दू गद्य में व्यंग्य की चर्चा मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी के साहित्य के बिना नहीं की जा सकती। उर्दू में उनकी प्रमुख कृतियाँ - 'आब-ए-गुम'(उपन्यास,हिन्दी अनुवाद-'खोया पानी'), 'चराग़ तले', 'खाकम-ब-दहन', 'ज़र-गुज़श्त' (आत्मकथा, हिन्दी अनुवाद-'धन यात्रा') आदि हैं। 'आब-ए-गुम' को अपनी व्यंग्य प्रधान शैली के कारण श्रीलाल शुक्ल के 'रागदरबारी' की तरह 'व्यंग्यात्मक उपन्यास' का दर्जा भी दिया जा सकता है। उल्लेखनीय बात यह है कि उनकी आत्मकथा 'ज़र-गुज़श्त' में भी व्यंग्यात्मक स्वर इतना मुखर है कि यह कोई स्वतंत्र व्यंग्य-रचना ही जान पड़ती है। व्यंग्य कि प्रधानता होने पर भी उनके उपन्यास, आत्मकथा तथा अन्य रचनाओं में आम-जन के जीवन से गहरा जुड़ाव देखा जा सकता है।

व्यंग्य को आज एक विधा का दर्ज़ा जाता है किन्तु हास्य-व्यंग्य की बात आते ही अक्सर दोनों को एक ही समझा जाता है। दोनों के बीच जो बारीक अन्तर है उसे समझना अत्यंत आवश्यक है। हास्य, मनुष्य का सहज़ मनोभाव है आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भाव एवं मनोविकार कि चर्चा में इस विषय पर भी लिखा है। हँसना मनुष्य के जीवन की एक अनिवार्य तथा स्वाभाविक क्रिया है। हँसी-ठिठोली के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि उसका कोई लक्ष्य अथवा प्रयोजन हो ही। मन प्रसन्न करने को हास्य भी किसी उपादान का सहारा ले सकता है। व्यंग्य को इसी प्रक्रिया का अगला चरण कहा जा सकता है क्यूँकि व्यंग्य के लिए किसी लक्ष्य की आवश्यकता होती है। इसलिए व्यंग्य, हास्य रूप में किसी पर किया गया प्रहार है। व्यंग्य अपनी इस प्रहार करने अथवा तिलमिला देने की क्षमता के कारण भाषिक हथियार का रूप ले लेता है। यूसुफ़ी लिखते हैं, 'मुस्कान से परे वो विपरीतता और व्यंग्य जो सोच-सच्चाई और बुद्धिमत्ता से खाली है, मुंह फाड़ने,

फक्कड़पन और ठठोल से अधिक की सत्ता नहीं रखता।' ज़ाहिर है कि व्यंग्य की मारक क्षमता का ग़लत प्रयोग भी किया जा सकता है या किया जाता है। इसके माध्यम से किसी को नीचा दिखाने या उपहास का पात्र बना पाना आसान है। इसका प्रयोग समाज के कमजोर, लाचार, बेबस या हाशिये के पात्र अथवा समूह का मजाक बनाने के लिए भी किया जा सकता है। इसके अनेकों उदाहरण फब्तिओं, चुटकलों के रूप में समाज में या निम्न कोटि की रचनाओं में भी सर्वत्र देखे जा सकते हैं। अभिप्राय यह है कि उपयोगिता के स्तर पर इसका घटिया रूप भी हमारे सामने आ सकता है या कहें कि अक्सर आता है। हँसने जैसी सामान्य और आवश्यक क्रिया का उद्देश्य और अर्थ, अनेक रंग लिए हो सकता है। इसी बात को यूसुफ़ी अपने लहजे में कहते हैं - 'सभी मुस्कुराहटें और हँसी एक जैसी नहीं हुआ करती। फ़ालस्टाफ़ अट्टहास करता है तो रोम-रोम मुस्कुरा उठता है। कोई बड़ा जब गिरता है तो छोटे ठट्ठे लगाते हैं। समाज जब अल्लाह की धरती पर इतरा-इतरा कर चलने लगते हैं तो धरती मुस्कुराहट से फट जाती है और सभ्यताएँ इसमें समा जाती हैं। दूध पीते बच्चे जब खुश होते हैं तो किलकारियाँ मारके हुमक कर माँ की गोद में चले जाते हैं। उधर मोनालिज़ा है कि सदियों से मुस्कुराए चली जा रही है और एक मुस्कुराहट वो भी है जो निर्वाण के बाद बुद्ध के होंठों को हल्का-सा तिर्यक करके उसकी नज़रें झुका देती हैं।' यूसुफ़ी हास्य की रंग-विविधता को बख़ूबी जानते हैं इसलिए उनकी रचनाओं में उसके ग़ैर-मक़सद होने का आभास नहीं होता। इसका प्रमुख कारण यही है कि वे मानते हैं कि जीवन को समझने देखने की दृष्टि उन्होने अपने पात्रों सरीखे 'आम और सामाजिक रुतबे की दृष्टि बहुत मामूली' लोगों के सानिध्य से हासिल की है। ऐसा नही है कि उनकी रचनाओं में व्यंग्य की बहुलता ही है और विशुद्ध हास्य के प्रसंग न आए हों, बल्कि दोनों का अद्भुत संयोग यहाँ दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि यूसुफ़ी हँसने को, मनुष्य के लिए नही बल्कि समाज के लिए भी अति आवश्यक मानते हैं। 'चराग़ तले' रचना में वे लिखते हैं- 'हँसने कि आज़ादी अपने आप में बोलने कि आज़ादी से कहीं ज़्यादा श्रेष्ठ और पवित्र है। मेरा विश्वास है जो कौम अपने आप

पाकिस्तान के राजनीतिक-सामाजिक हालात शुरुआत से ही ऐसे रहे हैं कि वहाँ लोकतांत्रिक व्यवस्था निरंतर टिकी न रह सकी। लोकतंत्र और फौज कि अगुआई में तानाशाही व्यवस्था एक दूसरे को विस्थापित करती रही। १९४७ से २०१७ के समय में लगभग ३५ वर्ष की अवधि में वहाँ तानाशाही सरकारें रही। यूसुफ़ी इसे राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं की भारी विफलता मानते हैं। वे जानते हैं कि 'डिक्टेटर स्वयं नहीं आता, लाया और बुलाया जाता है और जब आ जाता है तो प्रलय उसके साथ आती है।' दुनिया भर में जहां-जहां तानाशाही व्यवस्था क़ायम होती है। एक व्यक्ति की मर्ज़ी और मूड ही शासन का आधार बन जाते हैं। ऐसे में सुसंगत न्याय कि धारणा और उसके उद्देश्य भी बदल जाते हैं। यूसुफ़ी, डिक्टेटर और उसकी बनाई व्यवस्था के बारे में कहते हैं- 'वो ईश्वर की सृष्टि से इस तरह संबोधित होता है जैसे वो पाषाणकालीन जंगली हो और यह स्वयं उन्हें अंधकार से निकाल कर अपने नेतृत्व में लाने और वनमानुष से मनुष्य बनाने के ईश्वरीय काम पर है। न्याय के अपने बनाए तराजू के ऊंचे-नीचे पलड़ों को, कभी इस पलड़े तो कभी उस पलड़े में अपनी तलवार का पासंग डालकर, बराबर कर देता है।' धीरे-धीरे तानाशाह की सत्ता में कभी डर से और कभी इस सत्ता-तंत्र में कुछ हासिल करने के उद्देश्य से व्यक्ति ही नहीं बल्कि समाज के विभिन्न तबक़े उसकी हाँ मे हाँ मिलाने लगते हैं। ज़ाहिर है कि इससे तानाशाह की शक्ति धीरे-धीरे बढ़ती ही जाती है। यदि कोई व्यक्ति अथवा समूह सामाजिक-न्याय या लोकतन्त्र के नाम पर अपनी आवाज़ बुलंद भी करना चाहे तो तानाशाह जानता है कि उनसे उसे कैसे निपटना है। इस काम में ईनाम और सज़ा देने का उपक्रम रचा जाता है। इस प्रक्रिया में होता यह है कि, 'जैसे-जैसे साम्राज्य पर अहंकार और हवस बढ़ती जाती है, डिक्टेटर अपने निजी विरोधियों को ईश्वर का विरोधी और अपने चाकर-टोले को बुरा बताने वालों को देशद्रोही बताता है। लेखकों, कवियों को शाही बिरयानी खिलाकर ये बताता है कि लिखने वाले के क्या कर्तव्य हैं और नमकहरामी किसे कहते हैं।...बल्कि स्तुति-काव्य छंद, बुद्धि से परे हो तो भी कोई बात नहीं।' ऐसी स्तिथि में देशकाल में भय का वातावरण सहज रूप से व्याप्त हो जाता है। उर्दू साहित्य के नामवर व्यंग्य लेखक इब्ने इंशा ने निज देशकाल में व्याप्त भय और धीरे-धीरे आदत बनती जा रही समाज कि चुप्पी को अपनी

कविता में कुछ इस तरह से बयान किया है -

हक़ अच्छा पर उसके लिए कोई और मरे तो और अच्छा
तुम भी कोई मंसूर हो जो सूली पर चढ़ो, खामोश रहो
उनका ये कहना सूरज ही धरती के फेरे करता है
सर आँखों पर, सूरज को ही घूमने दो, खामोश रहो
गर्म आँसू और ठंडी आहें, मन में क्या-क्या मौसम हैं
इस बगिया के भेद न खोलो, सैर करो, खामोश रहो

मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी के रचना संसार के केंद्र में समाज का निम्न तबक़ा है। उनके उपन्यास 'खोया पानी' में मूल पात्र बिशारत की कथा भले ही कही गई है किन्तु कथानक इस प्रकार रचा गया है जिसमें अन्य पात्रों के जीवन का लेखा-जोखा अधिक उजागर होता है। समाज के आम-जन के सपने, समाज का कठोर यथार्थ और आर्थिक धरातल पर व्याप्त विसंगतियाँ उनके उपन्यास में बखूबी उभर कर सामने आई हैं। बिशारत को अपने यहाँ काम करने वाले मौलाना के पिता का देहांत (दो दिन पहले ही) हो जाने की सूचना जब मिली तो वो अफसोस प्रकट करने पहली बार उनकी बस्ती में जाते हैं। तेज़ बारिश हो कर थमी है। बिशारत देखते हैं- 'अजीब बेबसी थी। कहीं चटाई, टाट और अख़बार की रद्दी से बनी हुई छतों के पियाले पानी के बोझ से लटके पड़ रहे थे और कहीं घर के मर्द फटी हुई चटाइयों में दूसरी फटी हुई चटाइयों के जोड़ लगा रहे थे। एक व्यक्ति टाट पर पिघला हुआ तारकोल फैलाकर छत के उस हिस्से के लिए तिरपाल बना रहा था, जिसके नीचे उसकी बीमार माँ की चारपाई थी।' यूसुफ़ी आर्थिक तंगी से मजबूर लोगों की बस्ती का एक मार्मिक दृश्य उपस्थित करते हैं। बस्ती के जीवन कि अपनी समस्याएँ वैसे ही कम न थी मगर अब बारिश के हालात ने उसे और दुष्कर कर दिया। 'एक झुग्गी के सामने मियां-बीबी लिहाफ़ को रस्सी की तरह बल दे कर निचोड़ रहे थे। बीबी का भीगा घूँघट हाथी की सूंड की तरह लटक रहा था। बीस हज़ार की इस बस्ती में दो दिन से बारिश के कारण चूल्हे नहीं जले थे।' मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपनी खीज और गुस्सा उसके असल कारक पर नहीं निकाल सकता तो अपने से कमजोर और असहाय पर निकालता है, जो पहले से ही और दुखी होता है। यूसुफ़ी इस स्थिति को अपनी व्यंग्य भरी शैली में इस तरह दर्शाते हैं - 'दूसरे की झुग्गी बिलकुल ढेर हो गई थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि मरम्मत कहाँ से शुरू करे, इस लिए वो एक बच्चे की पिटाई करने लगा।... बिशारत आगे बढ़े तो देखा कि कोई झुग्गी ऐसी नहीं थी जहाँ से बच्चों के रोने की आवाजें न आ रही हों। पहली बार उन पर खुला कि बच्चे रोने का आरंभ ही अंतरे से करते हैं। झुग्गियों के आधे बच्चे तो इसलिए पिट रहे थे कि रो रहे थे और शेष आधे इसलिए रो रहे कि पिट रहे थे।' यूसुफ़ी की लेखन शैली कि एक विशेषता यह है कि वो पाठकों को केवल हँसाने के उद्देश्य से, निरंतर जबर्दस्ती हास्य पैदा करने कि कोई कोशिश नहीं करते। बल्कि ऐसा लगता है कि वे अपनी आकर्षक भाषा शैली के माध्यम से पाठक को जकड़े हुए हैं और प्रसंगानुसार गांभीर्य के जल में उसकी गर्दन डूबो देते हैं। फिर कुछ ही देर बाद थोड़ी सी ढील देते हुए, सिर बाहर निकाल कर हँसने कि इजाज़त दे देते हैं। यूसुफ़ी लफ्जों के इस्तेमाल के मामले बेहद सतर्क हैं इसलिए कई बार उनके एक ही वाक्य में लगता है जैसे कोई भरपूर किस्सा ही कह दिया गया है। उदाहरण के लिए झुग्गी-बस्ती में रहने वाले मौलाना के पिता के इंतकाल पर किसी ने कहा -'चलो अच्छा हुआ, अल्लाह ने बेचारे की सुन ली। बरसों का कष्ट समाप्त हुआ। मिट्टी सिमट गई। बल्कि यूँ कहिए कीचड़ से उठा के सूखी मिट्टी में दबा आए।' मिट्टी का मिट्टी से मिलन जीवन के क्षणभंगुर होने की सत्यता कि ओर इशारा करता है। 'लोक' में इसलिए इंसान को ख़ाकी भी कहा जाता है। मगर यहाँ यूसुफ़ी 'कीचड़' में सने ख़ाकी के 'मिट्टी' में मिलने की बात करते हैं। 'कीचड़' उसके जीवन की स्थितियों, गरीबी, अभाव और कष्टों का पर्याय बन जाता है। जिससे मौत ही निजात दिला सकती है। मानो झुग्गी-बस्ती के जीवन के इस अभावग्रस्त, तंगहाल, मुश्किल हालात ने उसे ख़ाकी भी न रहने दिया हो। इस बस्ती से बाहर निकलते हुए बिशारत ने 'एक फुरेरी ली और और उनके होठों के दायें कोने पर एक कड़वी-सी, तिरछी मुस्कुराहट का भँवर पड़ गया। जो रोने कि ताकत नहीं रखते वे इसी तरह मुस्कुरा देते हैं।' और यूसुफ़ी के पाठक की मानसिक स्थिति भी यहाँ बिशारत जैसी हो जाती है।

यूसुफ़ी की रचनाओं में विभिन्न पात्रों और वातावरण के चित्र इस प्रकार उकेरे गए हैं कि उनके किस्सों में व्यंग्य

एक ओर उनकी सादगी और सीधेपन को और स्पष्ट करता चलता है वहीं दूसरे, उनकी कष्टमय परिस्थितियों को बेहद सरल और स्पष्ट लफ़्ज़ों में उजागर करता है। बँटवारे के बाद एक अरसे बाद, पाकिस्तान से भारत में अपने पुराने शहर आने वाले बिशारत की यात्रा के समय का वर्णन है- 'रिक्शेवाला टी.बी. का मरीज़ लग रहा था। बनियान में से पंसलियाँ नज़र आ रही थी। मुँह से बनारसी पान के भभके निकल रहे थे। नंगे पैर, सूखी कलाई पर कलाई से अधिक चौड़ी घड़ी, हैंडिल पर परवीन बॉबी का एक सैक्सी फोटो। पैडिल मारने में दोहरा हो जाता और पसीने में तर माथा बार-बार बॉबी पर सिजदे करने लगता।...टिप दिया तो पहले तो उसे यक़ीन नहीं आया फिर बांछें खिल गईं। कद्दू के बीज जैसे पान में लिथड़े दाँत निकले के निकले रह गए।...पूछने लगा, 'बाऊजी आप कहाँ से आए हैं?' मैंने कहा-'पाकिस्तान से। मगर ३५ बरस पहले यहीं हीरामन के पुरवे में रहता था।' उसने पाँच का नोट अंटी से निकाल कर लौटाते हुए कहा, 'बाबूजी मैं आपसे पैसे कैसे ले सकता हूँ? आपसे तो मुहल्लेदारी निकली। मेरी खोली भी वहीं है।' देश भले ही बँट गए, मगर एक साधारण रिक्शेवाले की नज़र में 'मुहल्लेदारी' अभी भी बरक़रार है। यही उसकी अपनी नज़र में दोनों का जुड़ाव है। यह समाज के अभावग्रस्त रिक्शेवाले का वतन छोड़ चुके इंसान से एक सहज़-सरल और आत्मीय रिश्ता है।

यूसुफ़ी उपन्यास और उनकी आत्मकथा में भी कई चरित्र ऐसे हैं जो देश के बँटवारे के बाद पाकिस्तान गए। उनकी रचनाओं में इन पात्रों के जीवन का दर्द जीवंत रूप में हमारे सामने आता है। ये पात्र अपने यथार्थ वर्तमान और अतीत में डूबे मन की दोहरी ज़िंदगी एक साथ जीते हुए लगते हैं। वर्तमान का नयापन मगर अपनत्व का अभाव और अतीत से निकटता मगर वास्तविक दूरी इनकी नियति बन गई है। ज्ञान चतुर्वेदी इन्हीं पात्रों की चर्चा करते हुए लिखा है, 'इस उपन्यास में नौस्टेल्जिया का अद्भुत संसार है। पार्टिशन द्वारा हिंदुस्तान के दो फांक हो जाने के बाद का दर्द भी और यथार्थ भी, यादें भी और बदलती दुनिया की बातें भी, फिर पात्र भी सारे ऐसे कि जिन्हें घनघोर यथार्थ से उठाकर उन पर फंटेसी का रंग-रोग़न कर दिया गया हो।' विभाजन के बाद पलायन किए लोगों की स्मृति में अपने घर, गली, मुहल्ले, गाँव, कस्बे, शहर आदि नक़्शा बना रहता है। उसके साथ बिताया उनका 'मैं' भी वहीं छूट जाता है। नई जगह और हालातों में जीवन-यापन करने की राह भी उतनी सरल नहीं होती, मगर मानसिक तौर पर पीछे छूट गए वतन और लोगों की स्मृतियाँ इस प्रक्रिया को और दुष्कर बना देती हैं। बँटवारे के समय दोनों ओर से पलायन किए लोगों की पीड़ा यही थी। बिशारत हिंदुस्तान आने पर एक सरदार जी से मिलता है जो पाकिस्तान के रेगिस्तानी इलाक़े से उस समय यहाँ आए थे। अब, वो वहाँ की बातें पूछते हैं और अपनी यादों में डूबे हैं। बाहर आ कर बिशारत अपने मित्र से कहता है, 'ये कैसा हिन्दू है जो गंगा-किनारे खड़ा रेगिस्तान के सपने देखता है।

कहीं दिल और कहीं नगरी है दिल की
ये सारी उम्र का वनवास देखो'

मगर सच्चाई तो बिशारत भी जानता है। वह स्वयं भी तो ३५ साल बाद, अपना वतन देखने ही यहाँ आया है। इतने अरसे में पहले छूटा वतन भी तो वही नहीं रहता। उस गाँव- मोहल्ले में न तो लोग वे हैं, ना वक़्त ने उनकी बनावट का जस का तस रहने दिया। जिनकी यादें हैं पोटली में बांध कर लाए थे, वह तो हक़ीक़त में कब का उड़ चुका। यूसुफ़ी इस पीड़ा को जानते-पहचानते हैं। बिशारत जब पहले के समय के अपने शहर को तलाशते हैं तो खीज कर

एक पात्र उनसे कहता है 'ख़ुदा के लिए हिन्दुस्तानी मुसलमानों पर रहम कीजिए।...पाकिस्तान से जो भी आता है।...यही रोना रोता हुआ आता है। जिसे देखो, आँखों में आँसू भरे शहर का मर्सिया पढ़ता चला आ रहा है। हम आधी सदी से पहले का कानपुर कहाँ से लाकर दें। बस, जो कोई भीं आता है...हर मौजूदा चीज़ की तुलना पचास बरस के पहले के हिंदुस्तान से करता है।' यूसुफ़ी की लेखन-शैली के संदर्भ में यह बात ध्यान देने योग्य है कि उनका कविता से नाता बना रहता है। किसी भी प्रकार के प्रसंग में वे झट से कोई शेर या कवितांश कह देते हैं। इससे कही जा रही बात का प्रभाव तथा रंग और अधिक गहरा हो जाता है, जैसा कि ऊपर सरदार जी किस्से के संदर्भ में देखा जा सकता है।

समाज में क़ानून के पालन-उल्लंघन और न्याय-तंत्र की स्थापना की प्रक्रिया में, पुलिस ऐसा विभाग है जिससे जनता सबसे पहले दो-चार होती है, न्यायालय आदि बाद में। किन्तु यहाँ व्याप्त भ्रष्टाचार और रिश्वतख़ोरी के कारण कोई सीधा-सरल और गरीब इंसान अपनी ज़रूरत होने पर

भी यहाँ जाने से बचता है। उसे लगता है कि यदि वह किसी कारण इसके चंगुल में आ गया तो वह नहीं जानता कि उसके साथ क्या सुलूक़ किया जाएगा। खोया पानी उपन्यास में बिशारत जब अपनी रिपोर्ट लिखवाने थाने पहुँचते हैं, रिपोर्ट लिखना तो दूर उनकी ही ग़लतियों को सामने रख दिया जाता है। ये गलतियाँ या कमियाँ ज़ाहिर तौर पर क़ानूनन ही बताई गईं। 'संक्षेप में यह कि दंड-संहिता और फ़ौजदारी अधिनियम की कोई दफ़ा ऐसी नहीं बची जिसे तोड़ कर वो उस समय रंगेहाथों न पकड़े गए हों। उनका प्रत्येक कर्म किसी-न-किसी दफ़ा की लपेट में आ रहा था और उन्हे ऐसा महसूस हुआ जैसे उनका समस्त जीवन क़ानून से छेड़खानी में गुज़रा है।' सच-झूठ, न्याय-अन्याय, काले-सफ़ेद के फर्क यहाँ मिटते नज़र आने लगते हैं। थाने आते ही व्यक्ति को अपनी असल सामाजिक और आर्थिक हैसियत का एहसास करा दिया जाता है। कौन मुज़रिम है कौन नहीं यह सब थानेवालों कि मर्ज़ी से तय होता है। थाने आ कर बिशारत के ज्ञान में वृद्धि होती है, उसे 'पता चला कि जूते खाकर न किए गए जुर्म को स्वीकार करने वालों को सुल्तानी गवाह कहते हैं। वो व्यक्ति बड़ी देर से जोर-जोर से चीखे जा रहा था। जिससे मालूम होता था कि अभी तक जूते खाने को झूठ बोलने से अधिक महत्व दे रहा है। जूते के इस [illegible] इस्तेमाल को पंजाबी में छतरोल कहते हैं।' साधारण आदमी के लिए इस व्यवस्था में न्याय की उम्मीद बेमानी लगने लगती है। यूसुफ़ी इन परिस्थितियों के लिए किसी एक व्यक्ति, विभाग अथवा संस्था को ही इसका दोषी नहीं मानते। बल्कि उनके उपन्यास में प्रस्तुत स्थितियाँ सम्पूर्ण व्यवस्था के दोषी होने की ओर इशारा करती प्रतीत होती हैं। हास्य-व्यंग्य की अपनी विशिष्ट शैली में वे व्यवस्था कि खामियों को कभी प्रत्यक्ष तो कभी परोक्ष रूप से उजागर करते हैं। व्यवस्था से निराश आम आदमी और 'आत्महत्या' के प्रसंग में वे कहते हैं- 'उस काल में आम आदमी को आत्महत्या के लिए तरह-तरह की मुसीबतें और खखेड़ उठानी पड़ती थी।...एक-एक कमरे में दस-दस आदमी इस तरह ठुँसे होते थे कि एक दूसरे की आंतों की आवाज़ तक सुन सकते थे। ऐसे में इतना एकांत कहाँ नसीब कि आदमी फाँसी का फंदा कड़े में बांध कर अकेला शांति से लटक सके। रहे पिस्तौल और बंदूक, तो उनके लिए लाइसेंस की शर्त थी जो केवल अमीरों, वडेरों और अफसरों को मिलते थे। सो आत्महत्या करने वाले रेल की पटरी पर दिन-दिन भर लेटे रहते, क्योंकि ट्रेन बीस-बीस घंटे लेट होती थी। आखिर ग़रीब मौत से निराश होकर कपड़े झाड़कर उठ खड़े होते।'

ज्ञान चतुर्वेदी 'खोया पानी' उपन्यास की भूमिका इस ओर इशारा किया है कि उर्दू व्यंग्य में हास्य और व्यंग्य में भेद करने कि बजाय हास्य को उसके भीतर ही शामिल कर लिया गया है। इसके कारण रचनाओं में पठनीयता और सरलता बनी रहती है। यसूफ़ी के साहित्य में भी यह बात स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उदाहरण के लिए मुशायरा प्रसंग देखा जा सकता है। गाँव में हुए मुशायरे के दौरान बाहर से आए शायरों को अलग-अलग किसानों के यहाँ ठहराया गया। 'ज़ाहिर है हर किसान ने अलग तरह का खाना खिलाया। इसलिए जितनी तरह के खाने थे उतनी ही तरह की पेट बीमारियों में शायरों ने स्वयं को उलझा पाया।' आयोजकों के सामने शायरों ने अलग-अलग तरह की शिकायतों पेश किया। एक शायर ने 'कहा कि बंदा आबरू हथेली पे रखे एक बजे मुशायरे से लौटा। तीन बजे तक चारपाई के ऊपर खटमल और नीचे चूहे कुलेलें करते रहे। तीन बजते ही घर में 'सुब्ह हो गयी-सुब्ह हो गयी' का शोर मच गया। और ये शिकायत तो सबने की कि सुब्ह चार बजे हमें झिंझोड़-झिंझोड़ कर उठाया गया और एक-एक लोटा हाथ में पकड़ा के झड़बेरी की झाड़ियों के पीछे भेज दिया गया।... एक साहब कहने लगे कि उनकी खाट के पाये से बंधी हुई एक बकरी सारी रात मींगनी करती रही। मुंह अंधेरे उसी का दूध दुह के उन्हें पेश कर दिया गया। 'मजज़ूब' मथरावी को शिकायत थी कि उन्हें कच्चे आँगन में जामुन के पेड़ तले मच्छरों की छांव में सुलाया गया।... उनकी चारपाई के पास खूँटे से बंधी हुई भैंस रात-भर डकराती रही। तड़के एक बच्चा दिया जो सीधा उनकी छाती पे आ गिरता, अगर वो कमाल की फुर्ती से बीच में ही कैच न कर लेते। 'अख़गार' कानपुरी के शागिर्द बोले कि उनका किसान मेजबान हर आध घंटे बाद उठ-उठकर उनसे पूछता रहा कि 'जनाबे-आली कोई तकलीफ़ तो नहीं, नींद तो ठीक आ रही है ना?' ग़रज कि जितने मुँह उतनी शिकायतें।' असल में एक तरह का जीवन जीना और बात और उसके बारे में केवल चाह भरी बड़ाई करना दूसरी। यूसुफ़ी की भाषा शैली ऐसी है कि वो

तंज़ करने के किसी भी मौके को अपने हाथ से जाने नहीं देना चाहते। साहित्यकारों के कथनी-करनी के भेद करने पर व्यंग्य करते हुए वे आगे कहते हैं, 'हालाँकि हुआ-हवाया कुछ नहीं। हुआ केवल ये कि उन शहरी शायरों ने देहात के जीवन को पहली बार...और वो भी चंद घंटों के लिए...थोड़ा पास से देख लिया और बिलबिला उठे। उन पर पहली बार खुला कि शहर से केवल चंद मील की ओट में इंसान कैसे जीते हैं और अब उनकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि यही कुछ है तो किसलिए जीते हैं।' देखा जा सकता है कि ऐसे मौकों पर यूसुफ़ी के व्यंग्य की मार और अधिक धारदार हो जाती है। यूसुफ़ी का बात कहने का अंदाज सहज़ और सरल है। वहाँ ज़ोर- जबर्दस्ती ज्ञान उड़ेलने का उपक्रम नहीं किया गया है। यही कारण है कि उनके बहुत सारे वाक्य जुमलेबाज़ी का श्रेष्ठ नमूने पेश करते हैं। अंत में एक संकलन से उनके कुछ प्रसिद्ध वाक्य देखे जा सकते हैं।

१-'वर्तमान परिस्थितियों पर टिप्पणी करते वक़्त जो शख़्स अपने ब्लड प्रेशर और गाली पर क़ाबू रख सके वो या तो संत है, या वो ख़ुद ही वर्तमान परिस्थितियों का जिम्मेदार है।'

२-'सच तो ये है कि हुकूमतों के अलावा कोई भी अपनी मौजूदा तरक़्क़ी से मुत्मइन नहीं होता।'

३-'बीसवीं सदी में जीत उन्हीं की है जिनके एक हाथ में धर्म है और दूसरे में दुनिया और दाएँ हाथ को ख़बर नहीं कि बाएँ में क्या है।'

४- 'जब शेर और बकरी एक ही घाट पानी पीने लगें तो समझ लो कि शेर की नीयत और बकरी की अक़्ल मे खोट है।'

५- 'मुहावरे ज़बान के बढ़े हुए नाख़ुन होते हैं।'

६- 'उम्र भी अंतरात्मा और जूते की तरह है, जिनकी मौजूदगी का एहसास उस वक़्त तक नहीं होता जब तक वो तकलीफ़ न देने लगें।'

संदर्भ-सूचीः

१. मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी १९२३ में टोंक, राजस्थान में जन्मे। अलीगढ़ से उच्च शिक्षा हासिल की। देश के बँटवारे के पश्चात पाकिस्तान चले गए। वहाँ वे अलग अलग बैंकों में उच्च पदों पर रहे।

२. शुक्ल, रामचन्द्र, चिंतामणि (भाग-१), पृष्ठ- ३-४

३. यूसुफ़ी, मुश्ताक़ अहमद, धन यात्रा, राजपाल एंड संज, नयी दिल्ली, २०२०, पृष्ठ-११

४. वही पृष्ठ-१०

५. अहमद, मज़हर (सं.), शीशा-घर मे तोड़-फोड़, रेख्ता बुक्स, नोएडा, २०२१, पृष्ठ-१०

६ यूसुफ़ी, मुश्ताक़ अहमद, खोया पानी, राजपाल एंड संज, नयी दिल्ली, २०१९, पृष्ठ-१५

७. वही, पृष्ठ-१६

८ वही

९. इंशा,इब्ने, उर्दू की आख़िरी किताब, पृष्ठ-

१० यूसुफ़ी, मुश्ताक़ अहमद, धन यात्रा, राजपाल एंड संज, नयी दिल्ली, २०२०, पृष्ठ-१५५

११. वही, पृष्ठ-१५६

१२. वही, पृष्ठ-१५४

१३. वही, पृष्ठ-१५६

१४. वही, पृष्ठ-१६२

१५. वही, पृष्ठ-७

१६. वही, पृष्ठ-१८०

१७. वही, पृष्ठ-१६४

१८ वही, पृष्ठ-२४६

१९. वही, पृष्ठ-२४७

२० वही, पृष्ठ-२२७

२१. वही, पृष्ठ-७३-७४

२२. वही, पृष्ठ-७४

२३. प्रो. मज़हर अहमद ने, देवनागरी में 'शीशा-घर में तोड़-फोड़' नाम से यूसुफ़ी के लोकप्रिय वाक्यों का संग्रह संपादित किया है। जो रेख़्ता बुक्स, नोएडा से प्रकाशित है।

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
संपर्क – sgautam20@gmail.com

पुनर्नवाः लोक एवं शास्त्र का द्वंद्व

संजीव कुमार मिश्र

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, श्री मुरली मनोहर टाउन पी०जी० कॉलेज
बलिया (उ०प्र०) पिन कोड-२७७००१
मो० नं०: ९४७३७२८३१४

हिन्दी साहित्य में समग्र भारतीय परम्परा का आधोपांत सूत्र लेकर अपने समस्त साहित्यिक सृजन को उपबंधित करने वाले एकमात्र रचनाकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी हैं। इन्होंने भारतीय परम्परा की सतत प्रवहमान, वैविध्यपूर्ण एवं समावेशी परम्परा की संज्ञा दी है। सतत प्रवाहशीलता ही इसका बीज है, जो अज्ञात वैदिककाल से लेकर तत्समय तक इसकी प्रेरणाशक्ति रही है। यही प्रेरणाशक्ति निरंतर इस परम्परा का संस्कार करती आयी है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कुल चार उपन्यासों की रचना की है - यथा-बाणभट्ट की आत्मकथा, चारुचंद्रलेख, पुनर्नवा, और अनामदास का पोथा। संख्या की दृष्टि से कम होने के बावजूद अपनी विशिष्ट कथा-शैली के कारण चारों उपन्यास अति प्रशंसित एवं चर्चित हैं। 'पुनर्नवा' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का तीसरा उपन्यास है जिसका प्रकाशन १९७३ में होता है। पुनर्नवा शब्द 'पुनः ?नवा' से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'फिर से नया करना' या जो 'हर बार नया हो जाय' या 'पुनि-पुनि नवीन हो' सो है 'पुनर्नवा', अर्थात् द्विवेदी जी के शब्दों में कहें तो बासी को ताजा करना ही इस शीर्षक के माध्यम से उपन्यास का प्रमुख प्रतिपाद्य है। डॉ० नामवर सिंह लिखते हैं-''बाणभट्ट की आत्मकथा' के बाद वस्तुतः कालिदास को केन्द्र में रखकर एक उपन्यास लिखने की योजना थी 'पुनर्नवा' उसी योजना का फल है।''(१)

अपने समय की जाँच करने के लिए उसके मूल में जो कारण थे, उनको पकड़ना द्विवेदी जी को आवश्यक लगा होगा, इसलिए आधार रूप में उन्होंने कुछ घटनाएँ इतिहास से लीं। इन घटनाओं ने और मुखर होकर व्यवस्था में चली आ रही कमियों को परम्परागत सामाजिक नियमों एवं रूढ़ियों में समय के साथ परिवर्तन करने की आवश्यकता को दिखाया है। द्विवेदी जी की दृष्टि में परम्परा जड़ कभी नहीं होती, वह हमेशा क्रियाशील रहती है। 'परम्परा और आधुनिकता' शीर्षक निबंध में द्विवेदी जी परंपरा को परिभाषित करते हुए कहते हैं ''परंपरा का शब्दार्थ है, एक का दूसरे को, दूसरे का तीसरे को दिया जाने वाला क्रम। वह अतीत का समानार्थक नहीं है। 'परम्परा' जीवंत प्रक्रिया है जो अपने परिवेश के संग्रह-त्याग की आवश्यकताओं के अनुरूप निरंतर क्रियाशील रहती है।'' (२) 'हजारीप्रसाद द्विवेदी' लोक-जीवन के महत्व को स्वीकार करने वाले रचनाकार रहे हैं। धर्मनिष्ठ आचार्यपाद के मुख से 'पुनर्नवा' का आधार-वाक्य कहवाकर उपन्यास का उद्देश्य स्पष्ट कर देते हैं ''अगर निरंतर व्यवस्थाओं का संस्कार और परिमार्जन नहीं होता रहेगा तो एकदिन व्यवस्थाएँ तो टूटेंगी ही अपने साथ धर्म को तोड़ देंगी।'' (३) 'पुनर्नवा' हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत ऐतिहासिक उपन्यास है। जिसमें वर्तमान की सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याओं को भारतीय इतिहास के सक्रांति-काल में रखकर देखने का प्रयास किया गया है। ध्यातव्य है कि इस उपन्यास की कथा का केन्द्र स्थल बलिया जिले में स्थित हल्दी गाँव है, जो वर्षाऋतु में द्वीप के समान हो जाता है। उपन्यास में जिस युग को द्विवेदी जी ने आधार बनाया है वह युग 'गुप्त युग' है। गुप्त युग को उसकी सांस्कृतिक उपलब्धियों के कारण भारत का स्वर्ण युग कहा जाता है। द्विवेदी जी कुछ ऐसे सामाजिक प्रश्नों को उठाना चाहते हैं जिनके माध्यम से उस काल की संस्कृति, सभ्यता, मानवीयता को आज के सन्दर्भों में उद्घाटित किया जा सके। भारतीय संस्कृति में जड़ हो चुके सामाजिक विश्वासों एवं रस्म-रिवाजों के कारण जो गतिहीनता आ गई थी, उसे गतिशीलता प्रदान करने के लिए उन्होंने जनमानस में बिखरे पात्रों को देशकाल की सीमाओं का ध्यान किये बिना समुद्रगुप्त

नामक ऐतिहासिक पात्र के साथ ला जोड़ा है। इस उपन्यास के सभी प्रमुख पात्र जीवन के लोकपक्ष की तरफ प्रबलता से खड़े हैं। शास्त्रज्ञ पंडित हो या राजनीतिज्ञ लोक के महत्व को स्वीकार कर उसके आगे झुकते हैं भले ही शास्त्र उसकी इजाजत न दे, जब आचार्य देवरात मृणालमंजरी की शादी गोपाल आर्यक से करने के पक्ष में हैं, वे इस प्रस्ताव को लेकर वृद्धगोप के पास लेकर जाते हैं तो वृद्धगोप एकदम चौंक पड़ते हैं और कहते हैं ''ऐसा कैसे हो सकता है आर्य ? मृणालमंजरी बहुत अच्छी लड़की है। मैं उसे बहुत प्यार करता हूँ, परन्तु है तो गणिका-पुत्री ही। मैं अगर मान भी लूं तो मेरे परिवार के लोग कैसे मानेंगे ?'' (४) लोकचार के भय से वृद्धगोप मृणालमंजरी को अपनाने में घबराते हैं। आचार्य देवरात जब इस बात को सुनते हैं तो वे भी नकार नहीं पाते हैं कि वृद्धगोप का कहना कैसे गलत है। द्विवेदी जी दिखाते हैं कि हमारे यहाँ लोकाचार इतना हावी है कि एक लड़की जिसका इन सब घटनाओं से कोई लेना-देना नहीं है फिर भी इन सब के बीच पिसती हैं। द्विवेदी जी इन तमाम जकड़नों को तोड़ने का प्रयास करते हैं और इसमें सफल भी होते हैं। गोपाल आर्यक और मृणालमंजरी का सफल मिलन द्विवेदी जी इस उपन्यास में कराते हैं। प्रो० चौथीराम यादव लिखते हैं ''उपन्यासकार हजारी प्रसाद द्विवेदी कोरे इतिहासकार नहीं, बल्कि ऐसे इतिहास निर्माता और महान सर्जक हैं जिन्होने लोक और शास्त्र की द्वंदात्मक परम्परा से अपने इतिहास-बोध और रचनात्मक मूल्यों को स्वयं अर्जित किया है। ग्रहण और त्याग का संतुलित विवेक ही उनके इतिहास-बोध का प्रतिमान है।''(५)

द्विवेदी जी शास्त्रों के अध्येता थे और उनका सम्मान भी करते थे। उनको यह प्रतीत होता था कि इन पोथियों में मानव-समाज का जीवंत इतिहास सुरक्षित है। जब कभी लोक परम्परा का किसी पोथी से मतभेद हो जाता तब द्विवेदी जी को वहाँ कुछ नया विचार पाने की आशा बलवती हो जाती है। 'पुनर्नवा' में द्विवेदी जी लोक को राजनीति से बड़ा बना देते हैं। द्विवेदी जी यह सबके लिए आवश्यक मानते हैं कि वे लोक की रीति को समझे, लोक के मन को समझ उनका यथोचित सम्मान करें और मानवीय दृष्टिकोण के अनुसार अपने नियमों में परिवर्तन करें। द्विवेदी जी ऐसे रचनाकार रहे जो बिना किसी का निरादर किए बिना समाज को रूढ़ियों से निकाल कर स्वस्थ मूल्यों और सहज जीवन के तरफ अग्रसर करना चाहते है। इसलिए पुनर्नवा में द्विवेदी जी निर्धारित नैतिक मूल्यों में परिवर्तन की मांग पूरी दमखम के साथ करते हैं। ऐसे भी नियम होते हैं जो कुछ परिस्थितियों में ठीक नहीं बैठते, उनके लिए कुछ विशेष प्रतिभाएँ को खोया नहीं जा सकता। पंड़ित जी, 'पुनर्नवा' में उज्जयिनी के पास ग्रामांचल के प्रसंग में दिखाते हैं कि किस तरह भील जाति के अनपढ़ बालक उज्जयिनी से भागते हुए चंद्रमौलि और माढ़व्य की सेवा करते है, तो माढ़व्य सोचता है, ''अशिक्षा के कारण कोई सुसंस्कृत होने से वंचित नही रह जाता।'' (६) लोक में व्याप्त सदाचार और मनुष्य के लिए आवश्यक जीवन मूल्यों को उद्‌घाटित करने से द्विवेदी जी कहीं पीछे नहीं हटते। 'पुनर्नवा' उपन्यास में द्विवेदी जी लोक एवं शास्त्र का गहरा द्वंद कराते हैं, शास्त्र पक्ष के वाहक यहाँ पर आचार्य देवरात हैं तो लोक पक्ष वाहक सुमेरू काका हैं। द्विवेदी जी शास्त्र ज्ञान का जो अव्यवहारिक पक्ष हैं, उसकी निंदा करा देते हैं भले ही देवरात शास्त्रार्थ में सुमेरू काका को पराजित कर देते हैं, परन्तु बुद्धि और व्यवहार में, सामाजिक न्याय वृद्धि में, मानव जीवन की समझ में, सुमेरू काका आचार्य देवरात पर भारी पड़ते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी इस शास्त्रार्थ और जय-पराजय की अभिमानपूर्ण प्रक्रिया में कहीं पर टीका-टिप्पणी करने से पीछे नहीं हटते है। जब शार्विलक भटकते-भटकते मंदिर में पहुँचता है, तो वहाँ पर एक वृद्धा और वृद्ध मिलते हैं। वृद्धा अपने जीवन की करूण घटना सुनाते हुए कहती है कि ''जानते हो बेटा, शास्त्रार्थ सभा में विजयी होना मेरी दृष्टि में पाण्डित्य की कसौटी नहीं है। जिसे सचमुच शास्त्र-ज्ञान हो जाएगा वह भला जीत-हार के लिए क्यों भटकता फिरेगा।'' (७) वहीं वृद्धा फिर कहती है कि ''कोई बात नहीं बेटा! परमात्मा ने तुम्हारे भीतर जो शक्ति दी है उसी का विकास करो, उसी को दीन-दुखियों के कष्ट दूर करने में उपयोग करो, उसी को अखिलात्मा पुरूष की सेवा में लगा दो।'' (८) इन सब बातों को सुनने के बाद अपने जन्मकुल के विपरीत मल्लु विद्‌या सीखने के लिए घर से भागे शार्विलक के मन का अपराध-बोध खत्म हो जाता है।

द्विवेदी जी ने कहा है, शास्त्र का मूल अर्थ होता है - संगति लाना। जहाँ शास्त्र में दो विरोधाभास होता है, उस असंगति को भूलकर आचार्य लोक संगति लाते हैं। शास्त्र में जब असंगतियाँ दिखाई पड़े तो उन असंगतियों को नए तर्कों से जोड़कर संगति लगाते हुए यह दिखाने की कोशिश करना कि जो कहा गया है, ठीक ही कहा गया है। शास्त्रज्ञ आचार्य पुरगोभिल भी लोक की चित्तशक्ति की उपेक्षा नहीं कर पाते। आभीर स्त्रियों के गीत सुनकर वे निर्धारित व्यवस्था का परीक्षण करने की तरफ मुड़ते हैं और सम्राट के आमात्य को

भी सत्य से परिचित कराते हुए कहते हैं कि ''सुन लिया धर्मावतार हर गांव में हर हाट में, हर गली में ये गाने सुनाई देंगे। आज आप इसे केवल भाव-लोक का विद्रोह कहकर टाल सकते हैं। पर लोकमानस में शुष्क धर्माचार और रूढ़ मान्यताओं के प्रति यह भाव लोक का विद्रोह किसी दिन वास्तव जगत के विद्रोह का रूप ले सकता है। जानते हैं धर्मावतार आदि मनु ने धर्म के लिए हृदय पक्ष को ध्यान में रखने पर भी बल दिया था - हृदयेनाभ्यनुज्ञातः कहा था। पुराण ऋषि जानते थे कि शुष्क आचार मात्र धर्म नहीं है।''(९) इस पर आमात्य चिंता में पड़ गए। उन्हें आचार्य का कथन सत्य प्रतीत हो रहा है, पर वे धर्म के साथ इसकी संगति कैसे बैठाएँ। उनकी इस चिंता को भॉपकर आचार्य पुनः कहते हैं कि ''धर्म के साथ इसकी संगति बैठ सकती है लोकहित के समष्टि रूप के अन्तर्यामी जिस सत्य को ग्रहण करते हैं वह अपना भाव अवश्य विस्तार करता है।''(१०) आशा नहीं थी पर इस बात से उनकी शिराएँ स्पंदित हो उठी है। आचार्य अपनी बात को तर्कसम्मत ढंग से समझाते हुए बार-बार बल देते हैं कि ''लोक मानस में प्रद्दन्न भाव से जो बात सत्य रूप में प्रतिष्ठित हो रही है। बार-बार देखने की आवश्यकता है। (११) द्विवेदी जी की दृष्टि ने यह भांप लिया था कि प्रेम ही वह सत्य है जो सबको समेट सकता है। निष्कर्षतः 'पुनर्नवा' उपन्यास में प्रेम के माध्यम से लोक की मान्यता को द्विवेदी जी स्थापित करते हैं। द्विवेदी जी की दृष्टि में 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है' और पुनर्नवा में भी द्विवेदी जी ने मानवीय मूल्यों को सवीपरि मानते हैं। द्विवेदी जी यह माते हैं कि आज वैश्वीकरण की प्रक्रिया और सभ्यताओं पर घिर आयें संकट में लोक-जीवन ही विकल्प दे सकता है। आचार्य द्विवेदी ने 'पुनर्नवा'' में सारे जड़ीभूत एवं जातीय बंधनों को तोड़ लोक जीवन के महत्व को स्वीकार किया है और उसे सामाजिक मान्यता को भी निरस्त कर दिया है कि एक पति या प्रेमी के साथ दो पत्नी अथवा प्रेमिकायें स्नेह एवं सौहाद्रपूर्वक नहीं रह सकती। वे रहती हैं और अपने ऐसे औदात्य का परिचय भी देती है कि जिसमें आदर्श, समर्पण, स्नेह, त्याग का प्रतिमान बनता है। द्विवेदी जी की दृष्टि में दलित-द्राक्षा की भांति निचोड़कर दे देना भारतीय संस्कृति का मेरूदंड है। उन्होंने शास्त्रों की गहरी जकड़न को तोड़कर लोक-जीवन की संवेदन को उकेरा है। 'पुनर्नवा' की समूची चेतना उस भारतीय संस्कृति की वाहिका है, जो सामाजिक जीवन को व्यवस्थित एंव सुन्दर ढंग से जीवनयापन करने का मार्ग प्रशस्त करती है। प्रो० चौथीराम यादव ने उचित लिखा है ''समाज व्यवस्था, धर्म-व्यवस्था और न्याय-व्यवस्था में बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार निरंतर संस्कार करते रहने की आवश्यकता को जोर देकर रेखांकित करना निश्चय ही 'पुनर्नवा' का रचनात्मक संकल्प है।'' (१२)

संदर्भ ग्रंथ सूची -

१. हजारीप्रसाद द्विवेदी की जययात्रा, सम्पादक-ज्ञानेन्द्र कुमार संतोष, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण-२०१७, पृ०१२९

२. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण-२०१७, भाग-९, पृ० ३५८

३. पुनर्नवा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-२०१५, पृ० १६८

४. वही, पृ० ३३

५. हजारीप्रसाद द्विवेदी समग्र पुनरावलोकन, चौथीराम यादव, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-२०१२ पृ० ७२

६. पुनर्नवा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-२०१५, पृ० ९७

७. वही, पृ० १५६

८. वही, पृ० १५९

९. वही, पृ० १६७

१०. वही, पृ० १६७-१६८

११. वही, पृ० २१८

१२. हजारीप्रसाद द्विवेदी समग्र पुनरावलोकन, चौथीराम यादव, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण - २०१२ पृ.० ८५

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, श्री मुरली मनोहर टाउन पी०जी० कॉलेज
बलिया (उ०प्र०) पिन कोड-२७७००१
मो० नं०: ९४७३७२८३१४

विज्ञापनों की दुनिया एवं हिन्दी की भूमिका

डॉ० गरिमा सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
विद्यावती मुकन्द लाल महिला महाविद्यालय,
गाजियाबाद
मो. ९७११७००५२६

हम आज तक कई युगों की यात्रा करते आये हैं। पहले आखेट युग, फिर चारागाह एवं कृषि-युग, औद्योगिक, वैज्ञानिक युगों से गुजरते हुए हम आज अंतरिक्ष युग में हैं तथा संचार-युग भी इसे कह सकते हैं। यहाँ तक आने में अहम् भूमिका विज्ञापनों की है। इसीलिए अब हम इसे विज्ञापन-युग कहें तो कोई अनुचित नहीं होगा। मसलन समाज और शासन को आवश्यक सूचनाओं और विज्ञापनों की आवश्यकता सदा से रही है, किन्तु पूँजीवाद के आगमन तथा स्पर्द्धामूलक बाजार के कायम होने से अचानक जीवन विज्ञापनों से आच्छादित होने लगा है। प्राचीनकाल में न तो बड़े पैमाने पर उत्पादन होते थे, न बाजारों का इतना विकास हुआ था, न संचार के माध्यमों की ही इतनी सुविधा थी। अतः उस काल के विज्ञापनों का स्वरूप भी भिन्न तथा सीमित था। चूँकि विज्ञापन हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी को न केवल प्रभावित कर रहा है बल्कि उसे शासित और नियंत्रित भी कर रहा है। इसलिए विज्ञापन के क्षेत्र में नित नूतन प्रयोग उभरकर हमारे सामने आ रहे हैं। निश्चय ही विज्ञापन के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली 'हिन्दी' भाषा विज्ञान में खरी उतरे या नहीं लेकिन प्रयोग में तो इसके स्वरूप, भाषागत वैचित्र्य को तो रोज देखा जा रहा है। हिन्दी आज भीतरी तथा बाहरी आवश्यकताओं के अनुरूप एक नवल रूप में ही प्रयुक्त हो रही है।

दरअसल विज्ञापन एक प्रकार से सामाजिक जीवनधारा का दर्पण होते हैं। जीवन के प्रति लोगों की सामान्य दृष्टि को विज्ञापनों में प्रतिबिंबित देखा जा सकता है। विज्ञापित वस्तुओं का सम्बन्ध समाज के वर्ग-विशेष से होता है। अतः ऐसे विज्ञापनों से उस वर्ग की मानसिकता का पता चलता है। विज्ञापन गरीबों के लिए शायद ही होते हैं। विज्ञापनों का अधिकांश उपभोक्ता-वर्ग लिए होता है और मध्यम तथा उच्च-वर्ग के लोग ही विशेषकर उपभोक्ता होते हैं। अलबत्ता, परिवार-नियोजन, साक्षरता आदि से सम्बन्धित विरल विज्ञापन ही अभावग्रस्त लोगों को अपना लक्ष्य बनाते हैं। विज्ञापनों की प्रवृत्ति होती है कि वे पूँजीवादी प्रवृत्ति के अनुरूप मुनाफे को अपना अन्तनिर्हित उद्देश्य मानकर उसके लिए अपेक्षित भाषा प्रयोग करें। इस सन्दर्भ में विलासिता की वस्तु को लाभदायक बताना, भोगवादी जीवन-दर्शन को स्थापित करना विज्ञापनों के लिए बायें हाथ के खेल हैं। झूठ और छद्म का विज्ञापन के क्षेत्र में खुला खेल होता है, अतः विज्ञापन की भाषा का अध्ययन अपने-आप में बड़ा ही दिलचस्प विषय है जिसके भाषा विज्ञान, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति, साहित्य, कला, संस्कृति आदि से सम्बन्धित तत्वों के

दिखाई देते हैं। आज जनजीवन पर उपभोक्ता संस्कृति के प्रभाव से विज्ञापनों का निरन्तर आक्रमण हो रहा है। परिणामस्वरूप अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन, शहरों की दीवारों, विज्ञापन-पटों, बसों आदि हर जगह विज्ञापन ही विज्ञापन देखने को मिल रहे हैं। इस युग में विज्ञापनों की बाढ़ आयी हुई है। पढ़ने-सुनने की सामग्री कम और विज्ञापन अधिक दिखायी दे रहे हैं।इसी बात को रेखांकित करते हुए हरिशंकर परसाई ने 'अपनी-अपनी हैसियत' नाम से बड़ा ही खूबसूरत व्यंग्य लिखा है।

विज्ञापन संस्कृत का शब्द है। इसकी व्युत्पत्ति है- वि उपसर्ग ± ज्ञा (जानना) धातु ± णिच् ± ल्युट् प्रत्यय से 'विज्ञापन' शब्द बना है। इसका अर्थ है शिष्ट उक्ति, संवाद, प्रार्थना, अनुरोध, सूचना, वर्णन एवं मिश्रण आदि। 'विज्ञापन' अंग्रेजी शब्द 'एडवरटाइजमेंट' का हिन्दी अनुवाद है। 'एडवरटाइजमेंट' लैटिन भाषा के 'एडवरटाइज' से बना है, जिसका अर्थ है 'जनता को सूचित करना'। किसी भी सूचना को आम जनता तक पहुँचाने में विज्ञापन ही सहायक होते हैं। विज्ञापन शब्द का संधि-विच्छेद करने पर इसके अर्थ का बोध होता है। यहाँ 'वि' से अभिप्राय 'विशिष्ट' और 'ज्ञापन' का अभिप्राय 'सूचना' से है। अतः विज्ञापन का अर्थ विशिष्ट सूचना से माना जाता है। विज्ञापन का मुख्य लक्ष्य जनमत को अपने अनुकूल तैयार करना है। किसी वस्तु के विषय में विशेष रूप से जानकारी प्रस्तुत करना, उस वस्तु के बारे में ज्ञान बढ़ाना, उस वस्तु की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करना ही विज्ञापन का शाब्दिक अर्थ कहा जा सकता है। आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति के कारण विज्ञापन का अर्थ वस्तुतः किसी तैयार माल अथवा तैयार होने वाले माल को खरीदने के लिए खरीदारों को तैयार करना तथा इसके लिए उन्हें उत्तेजित-उत्प्रेरित करना है। प्रो० हरिमोहन के अनुसार ''विज्ञापन ऐसा साधन है, जो लिखित या मौखिक शब्दों, चिन्हों, छवियों, ध्वनियों, रंगों में बँधे विचार और सन्देश को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने की कला से परिपूर्ण रहता है, जिसकी सफलता इस बात में निहित है कि वह अधिक से अधिक लोगों को प्रभावित कर सके, अपने पक्ष में उनकी इच्छाओं को मोड़ सके, इच्छित उत्पाद को देखने एवं खरीदने के लिए प्रेरित कर सके।''१

उल्लेखनीय है कि आज के जमाने में जन-संचार के सैकड़ों माध्यम मिलते हैं और विज्ञापन के तो हजारों रास्ते निकाल लिए गये हैं। अखबार, पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तके, फिल्में, गीत-संगीत के रिकार्ड तथा टेप, वीडियो, दूरदर्शन (टेलीविजन) आदि विजुअल कैसेट्स, आकाशवाणी (रेडियो), जहाज और हवाईजहाज, स्टीमर, ट्रेन, ट्रक, बसों, कारों आदि के द्वारा ही नहीं बल्कि चारदीवारी, मकान की दीवारों और पैंट-कमीज तक पर विज्ञापनों का बोलबाला पाते हैं। इस आधार पर विज्ञापनों के कई भेद किये जा सकते हैं, यथा-श्रव्य, दृश्य और दृश्य-श्रव्य। श्रव्य के अन्तर्गत-रेडियो, रेकार्ड, टेप आदि से प्रसारित विज्ञापन तथा मेलों तथा शहरों के नुक्कड़ों पर लाउड स्पीकर के प्रयोग द्वारा ध्वनि का उपयोग करने वाले विज्ञापन मिलते हैं। दृश्य के अन्तर्गत लेखन एवं चित्र शामिल किये जाते हैं। दीवारों, बोर्डों आदि पर लिखे हुए विज्ञापनों से लेकर अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों आदि के विज्ञापनों को जिन्हें देखा और पढ़ा जाता है, इस कोटि के अन्तर्गत रखा जा सकता है। नोटिस, पम्पलैट, इश्तहार,, वस्त्रों, गाड़ियों आदि पर लिखे गये विज्ञापन ऐसे ही हैं। दृश्य श्रव्य के अन्तर्गत वीडियो, फिल्म, टेलीविजन आदि से प्रसारित विज्ञापन आते हैं।

ध्यातव्य है कि विज्ञापन के जो बात सबसे अधिक और सबसे पहले नजर में आती है, वह है उसकी सूचनात्मकता अर्थात् इसके माध्यम से लक्ष्य-व्यक्ति अथवा व्यक्तियों तक कोई सन्देश पहुँचाया जाता है। इसके द्वारा कभी-कभी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अनुरोध/अपील भी किया जाता है। इस सम्बन्ध में परिभाषा तिवारी लिखती हैं कि- ''चाहत का नाम अपील है। अपील भी विज्ञापन के माध्यम से की जाती है। महत्वाकांक्षाएँ, कर्तव्यपरायणता, दया, सुरक्षा राग, अनुराग, खेलकूद, मनोरंजन, संवेदनशीलता आदि कार्य भावात्मक अपीलों के अन्तर्गत आता है। जबकि तर्कयुक्त अपील में स्वच्छता, टिकाऊपन, गुणवत्ता, विश्वसनीयता, आदि आता है। अपीले उपभोक्ताओं की व्यवहारिक जरूरतों की सन्तुष्टि के लिए प्रयोग में लाई जाती हैं। .... भावात्मक अपीलों का प्रयोग उपभोक्ताओं के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक व प्रतीकात्मक चाहतों की पूर्ति के लिए किया जाता है। .... विज्ञापन के जरिये उपभोक्ता वस्तु नहीं आशा खरीदता है।''२ दूसरी बात यह है कि विज्ञापन में गहरी मनौवैज्ञानिकता अन्तर्निहित होती है। मनुष्य की

विभिन्न प्रकार की वृत्तियों को विज्ञापन के माध्यम से किसी निश्चित दिशा में उद्बुद्ध उत्तेजित और उत्प्रेरित किया जाता है। मनुष्य की जिज्ञासा तथा उत्सुकता को जाग्रत तथा शमित करने की दिशा में विज्ञापन के कथ्य को सक्रिय किया जाता है। विज्ञापन का सम्बन्ध विशेष रूप से मनुष्य के चक्षुरिन्द्रिय एवं कर्णेन्द्रिय से होता है। शब्दों (लिखित एवं ध्वनित) तथा छवियों (चित्रों-श्वेत श्याम तथा रंगीन) की विज्ञापन में सर्वप्रमुख भूमिका होती है। अतः यहाँ भाषा का सर्वोपरि कारगर एवं रचनात्मक उपयोग किया जाता है।

चूँकि विज्ञापन के लिए ऐसी भाषा का संधान किया जाता है, जोकि जन सामान्य के द्वारा आसानी से बोली और समझी जाती है। भाषा मनुष्य के द्वारा और मनुष्य के लिए है। अतः उसके प्रकार्य मनुष्यों के आचरण को बेहतर प्रभावित करते हैं। इस प्रकार भाषा का सामाजिक व्यवहारों में जो यथार्थ रूप मिलता है, विज्ञापनों की भाषा उसके निकटतम जाने की कोशिश करती है। बहरहाल विज्ञापनों में हिन्दी का जैसा रूप मिलता है वह अन्यत्र कम ही मिलता है। विज्ञापन-जगत में भाषा का व्याकरण नहीं, 'अर्थ' तथा 'दृश्य' का व्याकरण देखा जाता है। इस रूप में हिन्दी में अंग्रेजी की प्रधानता बढ़ जाती है और हिन्दी अपने विचित्र रूप 'हिंग्लिश' के रूप में सामने आती है। इस सन्दर्भ में कुछ विज्ञापनों की भाषा देखिए-

१. "जो अन्दर fit वह बाहर भी hit!'

२. "ये दिल माँगे more"

३. " हद रूखापन हद चिपचिपाहट"

माना जाता है कि भाषा के अतिबौद्धिक, वैज्ञानिक, तकनीकी तथा कृत्रिम रूप विज्ञापन के लिए उपयोगी नहीं होते। क्योंकि विज्ञापन बहुसंख्यक जनता के लिए होते हैं, जिनमें शिक्षित-अशिक्षित, साक्षर-निरक्षर सभी प्रकार के लोग आते हैं। इसलिए विज्ञापन की भाषा सबकी समझ में आने वाली सरल-सुबोध, स्पष्ट तथा आम बोल-चाल की भाषा हुआ करती है। आज के जीवन में व्यक्ति को सुबह सोकर उठने से लेकर रात्रि में सोने जाने तक हजारों विज्ञापनों का सामना करना पड़ता है। अतः समान विषय से सम्बन्धित विज्ञापनों को एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा भी करनी पड़ती है। एक-दूसरे से अधिक प्रभावकारी बनने की होड़ में विज्ञापन शब्दों एवं अभिव्यक्तियों का रोचक, सक्षम तथा बेधक प्रयोग करते हैं। इस क्रम में उन्हें विज्ञापित वस्तुओं के विषय में अधिक से अधिक (और अतिशयोक्तिपूर्ण) सूचनाएँ देनी पड़ती है तथा भाषा के द्वारा लक्ष्य श्रोता या पाठक या दर्शक को सम्मोहित करना पड़ता है। विभिन्न संचार-माध्यमों में भाषा के प्रयोग भी भिन्नता के साथ उपस्थित होते हैं। चन्द्र कुमार लिखते हैं कि- "विभिन्न विज्ञापनों की हिन्दी प्रतिष्ठित हिन्दी एवं साहित्यिक हिन्दी से भिन्न हो जाती है। अधिक आकर्षण एवं बोधगम्यता लाने के लिए एक आकर्षक एवं प्रचलित हिन्दी का रूप इन विज्ञापनों में होता है। विभिन्न आवृत्तियों से अप्रचलित हिन्दी को भी सुप्रचलित कर दिया जाता है। इनकी शैलियाँ, प्रकार, बदलते रहते हैं ताकि लोग उबे नहीं।"३

महत्वपूर्ण है कि हमारे जीवन में प्रतिदिन विज्ञापनों की घुसपैठ बढ़ती जा रही है। पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो, दूरदर्शन आदि में सर्वत्र विज्ञापन की पैठ हो गयी है। आज विज्ञापन के बिना व्यवसाय असम्भव सी बात है। माँग को बनाये रखने के लिए विज्ञापन को जरूरी माना जाता है। अहम् की पूर्ति से पाठक, दर्शक, श्रोता संन्तुष्ट होता है। कई चीजें, इसके कारण सस्ती भी हो जाती हैं। इतना अवश्य है कि इससे अपसंस्कृति का भी विस्तार होता है। सुवास कुमार एक स्थल पर लिखते हैं कि- "विज्ञापन एक कला और विज्ञान है। अतः विज्ञापन की भाषा को कलात्मक और वैज्ञानिक रूप मिलना चाहिए। मनुष्य, समाज तथा भाषा के स्वभाव से जो व्यक्ति अच्छी तरह परिचित है वही अच्छा विज्ञापन प्रस्तुत कर सकता है।'४ विज्ञापन-जगत पूँजीवादी और उपभोक्तावादी दृष्टिकोण से अधिकांश संचालित होता है। इस अर्थ में प्रायः स्त्रियों के शरीर का 'वस्तु' के रूप में अधिकतर दुरूपयोग किया जाता है। यहाँ तक कि बच्चों के भोलेपन को भी व्यापारिक वस्तु के रूप में निरन्तर ढ़ाला जा रहा है। फलस्वरूप स्त्रियों और बच्चों की मानसिकता से जुड़ी भाषा का प्रयोग विज्ञापनों में अत्यधिक हो रहा है जो मानवीय मूल्यों के समापन की ओर तो संकेतित करता ही है साथ ही आज के सूचना के विस्फोट के युग में उचित-अनुचित के चुनने के संकट को भी प्रदर्शित करता है। इस सम्बन्ध में प्रो० हरिमोहन लिखते हैं कि- "तीखे शब्दों में कहें तो हम यह भी कह सकते हैं कि विज्ञापन मानसिक दोहन का हथियार है। इसका इस्तेमाल चतुराई से करना होता है। इस शोषण के शिकार प्रायः

बच्चे और स्त्रियाँ अधिक होते हैं।एक सफल विज्ञापन लेखक प्रायः इन्हीं बातों का ध्यान रखता है। वह विज्ञापन के पाठ में संक्षिप्त, सरल, आवश्यकतानुसार मनोरंजनपूर्ण, रोचक, चमत्कारिक, विश्वसनीय एवं तर्कपूर्ण, आकर्षक, कर्णप्रिय और गत्यात्मक सामग्री का समावेश करता है।५'' हिन्दी की अपनी अगाध शक्ति है। सभी क्षेत्रों के अतिरिक्त जब विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा मिला तो पूर्व प्रयुक्त शब्दों में नया अर्थ भरते हुए हिन्दी ने अपने को आधुनिक बनाया। निश्चय ही विज्ञापन के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली हिन्दी भाषा विज्ञान की अपनी भीतरी और बाहरी आवश्यकताओं के अनुसार एक नया रूप ग्रहण कर रही है। हिन्दी एक जीवंत भाषा बन गयी है। इसके नित नये उभरते रूप में इसकी विकासमान प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। हिन्दी के शैली-वैज्ञानिक अध्ययन के अन्तर्गत विचलन, समान्तरता, प्रस्तुत विधान, तुक, पद्यात्मकता, मुहावरे, लोकोक्ति, अतिशयोक्ति, सूत्रात्मकता, भाषासंकरता आदि प्रमुख हैं।

हिन्दी के अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं आदि से विज्ञापनों के ऐतिहासिक विकास को समझा जा सकता है। हिन्दी के अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं में आरम्भ में विज्ञापन के जो रूप मिलते हैं वे विज्ञापन के स्तर के साथ ही हिन्दी भाषा के स्तर पर भी एक ही साथ टिप्पणी प्रतीत होते हैं। भारतेन्दु युग (उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध) में विज्ञापन मात्र किसी वस्तु की सूचना हुआ करते थे और इस सूचना की भाषा अनगढ़ और व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध भी होती थी। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि उन दिनों खड़ी बोली का कोई व्याकरण नहीं था और भाषा अनस्थिर थी। लेकिन धीरे-धीरे हिन्दी विज्ञापनों की भाषा में स्थिरीकरण, शुद्धता और निखार आता गया। शीर्षक, उपशीर्षक, मुख्य कथन, संकेतक आदि चुस्त और आकर्षक बनने लगे। अलंकारों, मुहावरों, कहावतों, तुकों आदि का पर्याप्त उपयोग होने लगा। फलस्वरूप उपभोक्ता को आकर्षित करने की क्षमता ऐसे विज्ञापनों की भाषा में आ गयी। भाषा में संवादात्मकता, नाटकीयता, आदि का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होने लगा। इस रूप में हिन्दी भाषा विज्ञापन के और करीब आ गई।

भारत में फिलवक्त जो भाषायी स्थिति तथा सरकारी नीति है उसका स्पष्ट प्रभाव विज्ञापन के भाषागत स्वरूप पर दिखायी पड़ता है। सरकारी विज्ञापन प्रायः द्विभाषा और त्रिभाषा फार्मूले का निर्वाह करते हैं अर्थात् अंग्रेजी, हिन्दी, तथा (यथा अवसर) सम्बन्धित राज्य की संविधान-स्वीकृत भाषा का प्रयोग वहाँ दिखायी पड़ता है। आज संचार-माध्यम पूरे देश में व्यापक रूप से फैले हैं। अतः देशव्यापी पहुँच के लिए जहाँ तक सम्भव हो अधिक से अधिक भाषाओं के द्वारा बहुसंख्यक जनता तक पहुँजा जाये, स्वभाविक रूप से विज्ञापनदाताओं की ऐसी कोशिश होती है। फलस्वरूप विज्ञापनों का निर्माण करने वाली कम्पनियाँ किसी एक ही भाषा में विज्ञापन तैयार करके उनके विभिन्न भाषाओं में, अनुवाद प्रस्तुत कर देती हैं। प्रायः यह मूल भाषा अंग्रेजी होती है, क्योंकि प्रशासन, शिक्षा, वाणिज्य सब में आज भी अंग्रेजी का ही बोलबाला है। परिणामस्वरूप विज्ञापनों के हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद अक्सर अनाकर्षक, भूलों-भरे दिखाई पड़ते हैं। प्रायः अनुवादक हिन्दी में अंग्रेजी का प्रतिवर्ती शब्द, शब्दकोष में से ढूँढ़ता है लेकिन उसका चयन औचित्यपूर्ण नहीं होता। अक्सर इस तरह के अनुवाद से विज्ञापन की हिन्दी बुरी तरह प्रभावित और क्षतिग्रस्त होती है। जबकि जहाँ पर विज्ञापन मूल हिन्दी में होते हैं वहाँ हिन्दी का रूप अनुवाद की हिन्दी से बेहतर मिलता है।

आज के दौर में विज्ञापन एक विशिष्ट व्यापार है। इसमें व्यक्ति विशेष के कई समूह कार्यरत हैं और इस माध्यम से अपनी जीविका चला रहे हैं। इसलिए विज्ञापन जगत का इस दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्व बढ़ जाता है क्योंकि यह मात्र सूचना प्रदाता का ही कार्य नहीं करता बल्कि इससे जुड़े अनेक लोगों को रोजी-रोटी भी प्रदान करता है। गीता डोगरा के अनुसार- ''विज्ञापन की भूमिका के बिना किसी भी समाचार पत्र या पत्रिकाओं को चलाना बहुत ही कठिन है। विज्ञापन के माध्यम से एक आम उपभोक्ता समझदार उपभोक्ता बन सकता है। एक प्रभावी विज्ञापन समाज को सकारात्मक योगदान के रूप में मिलता है। विज्ञापन के माध्यम से उत्पादक, निर्माता तथा उपभोक्ता सभी को लाभ पहुँचता है।''६ इसी प्रकार विज्ञापन की महत्ता को रेखांकित करते हुए भारत के पूर्व उपराष्ट्रपति एम० हिदायतुल्ला कहते हैं कि-''तुम्हें अपने उत्पादन की तारीफ करनी ही है, खरीददार को यकीन दिलाना है कि तुम्हारा साबुन दूसरों के साबुन से ज्यादा सफेदी निखारता है और तुम्हारे ब्लेड से एक बार दाढ़ी बनाने का मतलब

शतकों की विजय प्राप्त करना है।''७

निष्कर्षतः विज्ञापन का पक्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विज्ञापन और बड़ी ग्राहक संख्या- ये दो बड़े लालच जब सामने हों तो इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि भाषा का क्या हो बल्कि इसके समानान्तर उनके सामने बड़ी समस्या अपने व्यवसाय की होती है। बहरहाल, हिन्दी-अंग्रेजी का मिश्रित रूप हिंग्लिश का यह प्रयोग बहुत दिनों तक नहीं चल सकता। अपने आप हिन्दी अपने निखरे हुए रूप में सामने आने लगेगी। आज की स्थिति भिन्न है। अभी यह संक्रमण की प्रक्रिया से होकर गुजर रही है। सही अर्थ में तो भाषा वही होती है जिस रूप में वह लिखी जाती है और लिखी जाने वाली भाषा के साथ हम बहुत दिनों तक, बहुत दूरी तक लापरवाही नहीं बरत सकते। न ऐसे प्रयोग जारी रख सकते हैं। भले ही युवा-वर्ग इस संक्रमण की प्रक्रिया से ज्यादा प्रभावित है और इसी सम्बन्ध में यह तथ्य दिया जा रहा हो कि आज केवल एक भाषा का युग नहीं है, जबकि गाँव के लोग तक अब ऐसे-ऐसे शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं जिन्हें सुनकर आश्चर्य होता है। वे इसके स्पेलिंग या लिखने में असमर्थ हैं। लेकिन प्रयोग सहजता से करते हैं। विज्ञापन की हिन्दी सभी भाषाओं को अपने में समाहित करते हुए विश्व-भाषा के स्तर पर निरन्तर आगे बढ़ रही है।

सन्दर्भ सूची

१. प्रो० हरिमोहनः सूचना-क्रान्ति और विश्व-भाषा हिन्दी, पृष्ठ-८९, तक्षशिला प्रकाशन, सं०-२००४

२. परिभाषा तिवारीः भारतीय मीडिया और जनसंचार, पृष्ठ २७५-७६, मिश्रा पब्लिशर एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर, सं०-२०१०

३. चन्द्र कुमारः जनसंचार माध्यमों में हिन्दी, पृष्ठ ९२-९३, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी

४. सुवास कुमारः हिन्दी विविध व्यवहारों की भाषा, पृष्ठ ७५-७६, वाणी प्रकाशन, सं०-प्रथम १९९४

५. प्रो० हरिमोहनः सूचना-क्रान्ति और विश्व-भाषा हिन्दी, पृष्ठ-९१, तक्षशिला प्रकाशन, सं०-२००४

६. गीता डोगराः हिन्दी पत्रकारिता आज के सन्दर्भ में, पृष्ठ १३०, दीपक पब्लिशर्स, सं०- प्रथम २००५

७. सविता चड्ढ़ाः नई पत्रकारिता और समाचार लेखन, पृष्ठ १७६, तक्षशिला प्रकाशन, सं० २००६

डॉ० गरिमा सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
विद्यावती मुकन्द लाल महिला महाविद्यालय, गाजियाबाद
मो. ९७११७००५२६

उर्दू में रामकथा में लीन मुस्लिम राम भक्त

डॉ० अजय मालवीय

१२७८/१ मालवीय नगर,
इलाहाबाद
मो०-९४५१७६२८९०

रामायण में कर्म, भक्ति, त्याग और ज्ञान की विवेचना की गई है। ज्ञान और भक्ति के साथ-साथ वाल्मीकि ने इस महाग्रन्थ में अधिक बल आदर अथवा सम्मान, व्यवहार, नीति, गृहस्थ जीवन, आदर्श पति, पतिवृत धर्म, आदर्श मातृभाव तथा सामाजिक न्यायप्रियता पर दिया है। सच्ची मानवता की जिस छवि को महर्षि वाल्मीकि जी ने प्रस्तुत किया है, वह अनुपम एवं अद्वितीय है। जिसमें भक्तिवाद, अवतारवाद, ज्ञानवाद, वैष्णववाद, अध्यात्मवाद एवं अस्तित्ववाद का अनूठा संग्रह है।

रामायण संसार के महाकाव्यात्मक साहित्य में एक विशेष अर्थवत्ता, मूल्यवत्ता और सारभौमिक महत्व का परिचायक है। प्रभु श्री राम धर्म एवं कर्म भूमि के श्लाका पुरूष हैं। उन्होंने समस्त मानवीय तथा आध्यात्मिक मूल्यों का भरपूर प्रतिनिधित्व किया है, और बुनियादी तौर पर धर्म तथा कर्मभूमि के मुख्य पात्र थे और उनका विरोधी रावण अहंकारी रंगभूमि का प्रतिनिधि थाे

मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामचन्द्र जी का आदर्श जीवन चरित्र सहस्त्राब्दियों से भारत के विविध-भाषी कवियों एवं लेखकों के चितचकोर को अपनी ओर आकृष्ट करता आया है। भारतवर्ष की लगभग सभी छोटी-बड़ी प्रत्येक भाषाओं में रामकथा पर अनेकानेक साहित्यिक रचनाएँ हुई हैं। भारत में किसी मुस्लिम के द्वारा फ़ारसी भाशा में सर्वप्रथम अनुवाद अकबर बादषाह के आदेष पर अब्दुल क़ादिर बदायुनी ने १५८९ ई० में गद्य में किया। इसके बाद षहंषाह जहाँगीर के षासन काल में रामायण के दो प्रमुख अनुवाद हुए। एक अनुवाद सादुल्ला मसीह कीरानवी ने किया, जिसमें छंदों की कुल संख्या ५,४०७ है और दूसरा अनुवाद गिरधर दास ने किया, जिसमें छंदों की कुल संख्या ५,९०० है। अब तक फ़ारसी भाशा में लगभग ५० रामकथा हिन्दू एवं मुस्लिम राम भक्तों ने लिखी है।

जहाँ तक उर्दू भाषा का प्रश्न है, यह भाषा अत्यन्त ही मधुर एवं सरस है। इस भाषा ने सिर्फ़ इस्लाम ही नहीं अपितु समस्त धर्मों के प्रचार एवं प्रसार में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह उर्दू भाषा के लिए अत्यन्त ही गर्व की बात है कि उर्दू भाषा में लगभग डेढ़ सौ से अधिक कवियों ने रामकथा का वर्णन काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है जो अपने आप में एक अनूठी एवं अद्भुत ज्वलन्त उदाहरण है।

उर्दू भाषा में पहली रामकथा गंगा बिषन ने १७६६ ई० में लिखी। यह पाण्डुलिपि अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की मौलाना आज़ाद पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। इस रामकथा को राजा बनारस ने १८५२ ई० में प्रकाषित कराया। रामायण महाकाव्य का हिन्दू एवं मुस्लिम कवियों एवं कवयित्रियों ने बहुत बड़ी संख्या में अनुवाद उर्दू भाशा में किया है। इन मुस्लिम कवियों में विषेश तौर पर मेंहदी नज़मी, तालिब इलाहाबादी, नफ़ीस ख़लीली, रिन्द रहमानी, इम्तियाज़ उद्दीन खाँ, अज़मत खाँ, नज़ीर बनारसी, हनीफ़ कैफ़ी, सफदर आह, मौलवी अब्दुल सत्तार, नुरूल हसन नक़वी, ज़ोहरा निगाह, अब्दुल समद यार खाँ सागर निज़ामी, ताहिरा बानों सईद, ज़फर अली खाँ, ज़ामिन अली खाँ, नामी अन्सारी, शेख मोहम्मद इकबाल, अनवर खाँ ग्वालियरी, अख्तर हुसैन, सहेबा अख्तर, कैफ़ी आज़मी और असद रज़ा इत्यादि का नाम प्रमख है। अब्दुल समद यार खाँ सागर निज़ामी ने प्रभु श्री राम की भक्ति पर

आस्था के फूल अर्पित किये हैं। उन्होंने लिखा हैः-

ज़िन्दगी की रूह था रूहानियत की षान था।
वह मोजस्सम रूप में इंसान का इरफान था।।
हिन्दियों के दिल में बाक़ी है मोहब्बत राम की।
मिट नहीं सकती क़यामत तक हुकूमत राम की।।

इसी प्रकार मोहम्मद इम्तियाज़ उद्दीन खाँ ने भी अपनी पुस्तक रामायण में प्रभु श्रीराम जी के प्रति आस्था एवं भक्ति को प्रस्तुत किया है। वह कहते हैंः-

खुदा के नाम से हर सांस में विर्द जुबान कर लूं।
इसी के इष्क से रौषन ज़मीन व आसमां कर लूं।।
दिखाऊं मसनवी में राम के किरदार के जौहर।
उसी की सीरते पाक़ीज़ा ज़ेब-ए-दास्तां कर लूं।।

नामी अंसारी ने अपनी कविता 'रामचन्द्र जी' में मर्यादा पुरूशोत्तम प्रभु श्रीराम चन्द्र जी का वर्णन अद्भुत एवं अनूठे तरीके से प्रस्तुत किया है। नामी अंसारी ने मर्यादा पुरूशोत्तम प्रभु श्रीराम के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को अपनी कविता के माध्यम से प्रस्तुत किया। वह लिखते हैं-

उस का अफसाना लबों पर जो गुले नग़मा है।
उसके शब्दों से मेरा हर्फे॰ दुआ रौशन है।।
कोई रावण कभी सर उसका झुकाता कैसे।
उसके माथे पे तो दषरथ की दुआ रौशन है।।
कभी सीता कभी लक्ष्मण कभी सुग्रीव बनकर।
ज़र्रे-ज़र्रे में वही शोख अदा रौशन है।।
उसकी तारीफ़ से गुलज़ारे सोख़न की खुशबू।
उसकी तौसीफ़ से नग़मों की क़बा रौशन है।।
राम नवमी है कि जलते हैं मोहब्बत के चिराग़।
रौषनी ऐसी कि दुनिया की फिज़ा रौशन है।।

रानी कैकेयी की यह इच्छा थी कि उसका पुत्र भरत अयोध्या की राजगद्दी पर आसीन हो और राम को चौदह वर्षों का बनवास हो। मेंहदी नजमी ने रानी कैकेयी का चरित्र चित्रण बहुत ही खूबसूरती के साथ प्रस्तुत किया है। निम्नलिखित पंक्तियों में मेंहदी नज़मी ने रानी कैकेयी का राजा दशरथ से वरदान मांगना, राम के आज्ञा पालन और राजा दशरथ के बेसुध होकर गिरने की तस्वीर को चित्रित किया गया है-

इक रोज हंस के कैकेयी बोली कि ऐ हुजूर।
हर शख्स याद रखता है अपना वचन जरूर ?
था आप का यह क़ौल कि ऐ शाह-ए नेक खूँ।
पूरी करेंगे आप मेरी इक आरज़ू ?
दशरथ यह बोले अपना सोख़न याद है मुझे।
जो तुमको दे चुका वह वचन याद है मुझे।।
चरणों को छू के कैकेयी बोली ब ऐहतराम।
मैं चाहती हूँ आपसे ऐ शाह-ए नेक नाम ?
जंगल में घर से राम को बे आस भेज दें।
चौदह बरस के वास्ते बनवास भेज दें ?
यह आरज़ू है मेरी कि ऐ शाह-ए खासो आम ।
मेरा पिसर भरत करे शाही बजाये राम ?
जाते हैं वन को राम ज़माना है सोगवार ।
है बूढ़ा बाप दर्दे जुदाई से बेक़रार ?
कहती है रो के सारी रिआया न जाइये।
चौदह बरस को जानिबे सहरा न जाइये।।

श्रीराम, सीता और लक्ष्मण श्रृंगी ऋशि के आश्रम श्रृंग्वेरपुर (प्रयाग) की पावन धरती पर पर्दापण करते हैं। श्रृंगी ऋशि का आर्षीवाद प्राप्त कर वह आगे की तरफ प्रस्थान करते हैं। गंगा नदी के किनारे उनकी भेंट केवट से होती है, केवट से वह नदी पार करने के लिए कहते हैं। केवट उन लोगों को पहचान लेता है, उन लोगों के पाँव धोकर उनको अपनी नाव पर बैठाता है। भगवान श्रीराम और केवट के संवाद के दृष्य का वर्णन राम भक्त तालिब इलाहाबादी ने बहुत ही आत्म-विभोर होकर हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है-

राम ने उसको पुकारा नाव लाने के लिये।
सब के सब बेचैन थे उस पार जाने के लिए।।
आ के केवट ने छुए उनके चरण कहने लगा।
आपकी हे नाथ सब मालूम है मुझको कथा।।
जब कदम रखते ही पत्थर बन गया था स्त्री।
या तो डूबा, हो गई औरत अगर कश्ती मेरी।।
या तो, ऐ भगवान अपने पाँव धोने दीजिए।
या यहीं पर और कुछ धूप होने दीजिए।।
मुस्कुराकर राम ने सीता को देखा प्यार से।
देखकर चितवन हंसे केवट से यूँ कहने लगे।।
हो रही है देर अब फुर्ती से हमको पार कर।
आ के धोने पाँव मेरे चाहता है तू अगर।।
अब तो केवट ने कठौता लेकर गंगा जल भरा।
पाँव धोकर बाल-बच्चों को वह पानी दे दिया।।

पार उतारा सबको गंगा के अनोखे भाव से।
दी अंगूठी अपनी सीता ने उतरकर नाव से।।
राम के क़दमों पे लेकिन गिर पड़ा केवट वहीं।
और कहा अब तो किसी शै की कमी मुझको नहीं।।
लूँगा बेशक लौटती बार आप जो देंगे मुझे।
कह के यह केवट इधर लौटा उधर वह सब चले।।

लंका विजय के पष्चात् जब प्रभू श्रीराम अयोध्या आते हैं तो उनका राज्याभिशेक होता है। प्रभू श्रीराम जी अयोध्या की राजगद्दी पर विराजमान होते हैं। फिर कुछ समय पष्चात् सती सीता अयोध्या बुलवाई जाती है। तत्पश्चात् सीता जी को अपनी पवित्रता का साक्ष्य प्रस्तुत करने को कहा जाता है। सीता जी अग्नि परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के बाद नारी लज्जा एवं सम्मान की रक्षा हेतु धरती में समा जाती है। सीता की अग्नि परीक्षा का वर्णन पाकिस्तानी कवयित्री ज़ोहरा निगाह ने बड़ी ही खूबसूरती के साथ किया है। वह लिखती हैः-

सीता को देखे सारा गाँव आग पे कैसे धरेगी पांव।
बच जाए तो देवी माँ है जल जाए तो पापिन।।
सब जो चाहे सोचे समझे लेकिन जो भगवान।
वह तो खोट कपट के बैरी वह कैसे नादान।।
अग्नि पार उतर कर सीता जीत गयी विश्वास।
देखा दोनों हाथ बढ़ाये राम खड़े हैं पास।।

उर्दू के प्रख्यात कवि नफ़ीस ख़लीली ने 'स्वंयवर' के नाम से एक कविता कही है जिसमें राजा जनक के दरबार में सीता जी का स्वयंवर रचाया जाता है। जिसमें प्रभु श्रीराम शंकर जी का धनुष तोड़ते हैं, धनुष तोड़ने का अलौकिक वर्णन नफ़ीस ख़लीली ने किया हैः-

अंगड़ाईयाँ लेते हुए।
उठे अजब अन्दाज़ से।।
इक गुल हुआ शेर आ गया।
इक ख़ौफ सब पर छा गया।।
घूरा उसे देखा उसे।
थर्रा गया ताका जिसे।।
शेरों में ये ताकत कहाँ।
इस ज़ोर से मोड़ी कमाँ।।
दस-बीस टुकड़े हो गये।
कुछ उड़ गये कुछ खो गये।।
दिन में सिया उतरा गई।
इतरा गई शर्मा गई।।
दिल में खुशी सबके हुई।
सब बोल उठे जय राम की।।

उन्नीसवीं सदी के कवि अनवर ग्वालियरी ने प्रभु श्रीराम जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रभावित होकर कुण्डलिया की रचना की है। मर्यादा पुरूशोत्तम प्रभु श्रीराम जी के प्रति उनकी आस्था, भक्ति एवं श्रद्धा का आकलन निम्न पंक्तियों से लगाया जा सकता हैः-

राम राम से है रमा, राम करे सब काम।
अपने को हर दम जपे, मोहि दिया विश्राम।।
मोहि दिया विश्राम, राम हर घट में छाया।
वही राम हर दौर, तुझे सब ठौर दिखाया।।
रोम रोम में रम रहा, नूर तेरे राम।
राम राम सब में रमा, राम करे सब काम।।

कवयित्री ताहिरा बानों सईद ने अपनी कविता 'सीता' में प्रभु श्रीराम की पत्नी देवी सीता की महिमा का वर्णन बहुत ही खूबसूरती के साथ किया है। वह कहती हैः-

सीता ज़मीं पे आई थी सदमे उठाने को।
वर्ना फ़लक पे क्या थी कभी मुस्कराने को।।
देवी थी ग़म ज़माने के चुपचाप सह गई।
महलों को छोड़छाड़ के जंगल में रह गई।।
ऐ ताहिरा यह हिन्द यह सीता की सरज़मीं।
सीता सती के देष पे सद बार आफ़रीं।।
वह मुल्क सरफ़राज़ है सीता जहां पे हो।
वह बज़्म बज़्मे नाज़ है सीता जहां पे हो।।

पाकिस्तानी कवयित्री सहेबा अख्तर ने प्रभु श्री राम जी का वर्णन बहुत ही कुशलतापूर्वक किया है। सहेबा अख्तर कहती हैः-

अर्न्तयामी के दर्शन को अर्न्तज्ञानी जाये।
सहेबा जी वनवास से कोई राम नही बन पाये।।

नज़ीर बनारसी ने अपनी कविता 'गंगो ज़मन' में प्रभु श्रीराम जी को अपनी कविता के माध्यम से आस्था एवं श्रद्धा के फूल अर्पित किये। लंका विजय के पश्चात् प्रभु श्रीराम अपनी पत्नी सीता और अनुज भ्राता लक्ष्मण के साथ दीपावली के दिन अयोध्या पधारे थे। प्रभु श्रीराम जी की आस्था एवं भक्ति से ओत-प्रोत नज़ीर बनारसी की यह

पंक्तियां आपके सम्मुख प्रस्तुत हैंः-

जन्मदिन लक्ष्मी का है भला उस दिन का क्या कहना।
यही ये दिन है जिसने राम को राजा बनाया था।।
कई इतिहास को इक साथ दुहराती है दीवाली।
मोहब्बत पर विजय के फूल बरसाती है दीवाली।।

वर्तमान परिस्थितियों में आज का मुस्लिम कवि प्रभु श्रीराम से कितनी आस्था एवं भक्ति रखता है और आज की विषय परिस्थिति में वह क्या महसूस कर रहा है इसका एक ज्वलंत उदाहरण कैफी आज़मी की कविता 'दूसरा वनवास' में देखी जा सकती है। ६ दिसम्बर १९९२ में बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद कैफ़ी आज़मी ने इस कविता को बड़े ही भावनात्मक एवं अनूठे तरीके से प्रस्तुत किया है। वह लिखते हैं-

पाँव सरयू में अभी राम ने धोये भी न थे।
कि नज़र आये वहाँ खून के गहरे धब्बे।।
पाँव धोये बिना सरयू के किनारे से उठे।
राम ये कहते हुए अपने दुआरे से उठे।।
राजधानी की फ़िज़ा आई नहीं रास मुझे।
छह दिसम्बर को मिला दूसरा बनवास मुझे।।

रामायण में जीवन के समस्त मूल्यों को ष्वेत एवं श्याम रंग, रूप व लय में प्रस्तुत किया गया है। मर्यादा पुरूशोत्तम प्रभु श्रीराम मौलिक रूप से सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के उद्घोषक हैं। दूसरे शब्दों में सच्चिदानन्द के आदि व अनादि प्रतीक पुरूश हैं। रावण उनके विरूद्ध असत्य का द्योतक है। वह जीवन के समस्त निशेधात्मक मूल्यों का उद्घोशक है। प्रभु श्री राम और रावण का महायुद्ध वास्तव में मानवीय और आध्यात्मिक, धन एवं सम्पदा तथा पैशाचिक एवं सांसारिक महायुद्ध का प्रतिनिधित्व करता है। अंततः मानवीय एवं आध्यात्मिक सम्पदा की विजय होती हैं। जो वस्तुतः सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की विजय है और सच्चिदानन्द की परमविजय है। अंत में उर्दू के महानतम कवि व दार्षनिक अल्लामा इक़बाल के इन अर्थगर्भित तथा सारगर्भित पंक्तियों पर अपनी वाणी को विराम देता हूँः-

है राम के वजूद पे हिन्दोस्तां को नाज़।
अहले नज़र समझते हैं उसको इमामे हिन्द।।
तलवार का धनी था शुजाअत में फ़र्द था।
पाक़ीज़गी में जोश मोहब्बत में फ़र्द था।।

- - - - -

संदर्भित ग्रन्थः

१. मोहम्मद इम्तियाज़ उद्दीनः रामायण, इसरार करीमी प्रेस, इलाहाबाद, १९८४

२. मेहंदी नज़मीः रामायण, हिन्दुस्तान पब्लिकेषन, गाज़ियाबाद, १९७४

३. तालिब इलाहाबादीः सीताराम, गीलानी इलेक्ट्रिक प्रेस, लाहौर, १९३६

४. ज़ामिन अली खाँः रामायण भाखा, अकब सराय आग़ा मीर, लखनऊ, १९८८

५. डॉ० धर्मेन्द्र नाथः हमारे राम और रामायण, राधा पब्लिकेषन दरियागंज, देहली, २०१५

६. नफीस खलीलीः रामायण विषेशांक, नैरंगे ख्याल पत्रिका, लाहौर, १९३८

७. डॉ० अजय मालवीयः उर्दू में हिन्दू धर्म, सरोज पब्लिकेषन, प्रयागराज, २०००

८. डॉ० अजय मालवीयः है राम के वजूद पे हिन्दोस्तां को नाज़, सरोज पब्लिकेषन, प्रयागराज, २०११

९. डॉ० अजय मालवीयः उर्दू में रामकथा, हिन्दुस्तानी अकादमी, प्रयागराज, २०२०

१०. डॉ० अजय मालवीयः ग़ुबारे फ़िक्र, जय भारती प्रकाषन, प्रयागराज, २०२१

- - - - -

१२७८/१ मालवीय नगर,
इलाहाबाद
मो०-९४५१७६२८९०

दलित उत्थान में बाबा साहेब की भूमिका

हरीश राम

अस्सिटेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग
हर्ष विद्या मन्दिर (पी०जी०) कॉलेज,
रायसी, हरिद्वार, उत्तराखण्ड
मो०- ९८११९४७६८६
ई मेल - harishhitaishi1@gmail.com

'मुझे संस्कृत भाषा पर अत्यन्त अभिमान है और मै चाहता हूँ कि संस्कृत भाषा का अच्छा विद्वान बनूं, परन्तु संस्कृत के ब्राह्मण अध्यापक ने कहा कि मैं अछूत लड़के को संस्कृत नहीं सिखाउंगा। ब्राह्मण अध्यापक के संकुचित दृष्टिकोण से मुझे संस्कृत भाषा से वंचित रह जाना पडा। इस पीडा को सहन करते हुए मैने अपने जीवन का लक्ष्य बनाया कि अछूतपन का खात्मा, दलितों का उत्थान मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।'
- डॉ० भीमराव अम्बेडकर

डॉ. भीमराव अंबेडकर दलितों के मसीहा, भारतीय संविधान के निर्माता, प्रथम विधि एवं न्याय मंत्री, भारतीय बहुज्ञ, विधिवेता, अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ और समाज सुधारक थे। उन्होंने असहाय किसानों और महिलाओं के अधिकारों का समर्थन किया। अंबेडकर ने कहा था कि छुआछूत गुलामी से भी बदतर है। उन्होंने अछूतों की शिक्षा को बढ़ावा देने, उन्हें ऊपर उठाने का सतत प्रयास किया। उनका पहला संगठित प्रयास केंद्रीय संस्थान बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना था, जिसका उद्देश्य शिक्षा और सामाजिक सुधार को बढ़ावा देने के साथ-साथ अवसादग्रस्त वर्गों के रूप में संदर्भित बहिष्कार का कल्याण करना था। दलितों के अधिकारों की रक्षा के लिए उन्होंने मूकनायक, बहिष्कृत भारत, समता, प्रबुद्ध भारत और जनता जैसी पांच पत्रिकाएं निकालकर दलितों का मनोबल बढ़ाया। डॉ. अंबेडकर ने छुआछूत के विरुद्ध सक्रिय आंदोलन का निर्णय लिया। उन्होंने सार्वजनिक आंदोलन सत्याग्रह जलूसों के द्वारा पेयजल के सार्वजनिक संसाधन समाज के सभी वर्गों के लिए खुलवाने के साथ ही उन्हें अछूतों को भी हिंदू मंदिरों में प्रवेश करने का अधिकार देने के लिए संघर्ष किया। उन्होंने महाड शहर में अछूत समुदाय को भी जलाशय से पानी लेने का अधिकार दिलाने के लिए सत्याग्रह आंदोलन छेड़ा। डॉ. अंबेडकर ने दलितों को संदेश दिया कि हमें अपना रास्ता स्वयं बनाना होगा। उनका उद्धार समाज में उनका उचित स्थान पाने में निहित है जोकि उन्हें ऊंचाई तक पहुंचा सकती है।

अंबेडकर ने दलित वर्ग के उत्थान के लिए समाज में उनका सम्मान दिलाने के लिए संवैधानिक गारंटी की। जिसमें छुआछूत को जड़ से खत्म करना, उन्हें धर्म की आजादी दिलाना, उनके सामाजिक अधिकारों के लिए तर्क दिया और अनुसूचित जाति, जनजातीय, अन्य पिछड़ा वर्ग के सदस्यों के लिए नागरिक सेवाओं, स्कूलों कॉलेजों में

आरक्षण की व्यवस्था की, जिससे समाज में उनका उत्थान हो सके। मैं गौतम बुद्ध के धर्म को सबसे अच्छा मानता हूँ और इससे किसी धर्म की तुलना नहीं की जा सकती। यदि एक आधुनिक व्यक्ति जो विज्ञान को मानता है, उसका धर्म कोई होना चाहिए तो वह धर्म केवल बौद्ध धर्म ही हो सकता है। बाबासाहेब आंबेडकर ने समाज में दबे, कुचले, गरीब लोगों के हित के लिए कार्य किया। दलितों के उद्धार एवं उत्थान के लिए उन्होंने तीन मंत्र दिए - शिक्षित बनो, संघर्ष करो, संगठित रहो।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर अपने माता पिता के चौदहवें रत्न थे। स्वतंत्र भारत के संविधान के निर्माता बाबा साहेब भीमराव अम्बेडर बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे। डॉ० भीमराव एक उत्कृष्ट बुद्धिजीवी, प्रकाण्ड विद्वान, सफल राजनीतिज्ञ, कानूनविद, अर्थशास्त्री और दलितों के मसीहा थे। वे दलितों, शोषितों, महिलाओं और गरीबों के मुक्तिदाता थे। डॉ. भीमराव दलितों के उत्थान के रुप में संघर्ष के प्रतीक है। बाबा साहेब ने दलितों के सर्वागीण विकास के लिए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में लोकतंत्र की वकालत की। बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर ने दलित समाज को सन्देश दिया कि जिस दलित समाज में हमारा जन्म हुआ है, उस समाज का उद्धार करना हमारा मुख्य कर्तव्य है। डॉ० अम्बेडकर ने बडौदा-बंबई में असह्य अपमान को झेलते हुए कुछ पक्तियाँ लिखी -

'मैं दिन भर निवास के लिए स्थान प्राप्त करने की कोशिश करता रहा, परन्तु मुझे कहीं भी जगह नहीं मिली। मैं कई मित्रों से मिला। उन्होंने कई बहाने बनाकर मुझे टरका दिया और मैं नहीं सोच पा रहा था कि अब मुझे क्या करना चाहिए? आखिर मैं एक जगह नीचे बैठ गया। मेरा मन उद्विग्न हुआ और मेरी आँखो से आँसू बहने लगे।'

उसी दिन मैंने अपने जीवन का लक्ष्य तय कर लिया था कि मुझे दलितों के उत्थान के लिए ही कार्य करना है। उन दिनों स्कूलों में अश्पृश्यता का पालन किया जाता था। बाबा साहेब को स्कूल में भी सवर्ण हिन्दू विद्यार्थियों में पृथक बैठना पडता था। सवर्ण हिन्दू विद्यार्थियो के बेंच या डेस्क पर बैठना बाबा साहेब के लिए वर्जित था। भीमराव व उनके भाई आंनदराव को जमीन पर बैठकर पढना पड़ता था और बैठने के लिए टाट का आसन भी घर ले जाना पडता था। भीमराव अम्बेडकर को खेलने का शौक था परन्तु अध्यापक के मना करने से भीमराव खेलकूद में भाग भी नहीं ले सकते थे।

दलितो के उत्थान के लिए प्रेरणा देते बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर ने कहा - सभी मुनष्य एक ही मिट्टी के बने है और उन्हें यह अधिकार है कि वे अपने साथ अच्छे व्यवहार की माँग करें। मैने संविधान में दलितों को अधिकार देकर अपने जीवन की महत्वपूर्ण लडाई जीती है। अवतारवाद, स्वर्ग, नर्क, भाग्य, भगवान, पुर्नजन्म जब काल्पनिक है तो हमें उन्हे नहीं मानना चाहिए। मैंने आपके लिए मकान का निर्माण कर दिया है अब यह आपकी जिम्मेदारी है कि आप इसे अच्छी दशा में बनाएं रखें। अश्पृश्यता गुलामी से भी बदतर स्थिति है, जातिवाद ने दलितों की खुशियों को छीना है। मेरे दलित भाईयों आप संर्घष तब तक जारी रखो, जब तक आपको मानवीय अधिकार नहीं मिल जाते।

दलित युवाओं को मेरा पैगाम है कि एक तो वे शिक्षा में किसी से कम न रहे, दूसरे ऐशो-आराम में न पडकर समाज का नेतृत्व करें। तीसरे समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी संभाले, दलित समाज को जागृत कर और संगठित कर उसकी सेवा करें। मेरे दलित भाइयो आप ऐसे भगवान को न माने जो शूद्र या दलित की उपाधि से कलंकित करे। ऐसे साहित्य एवं पुराणों को भी ना माने जो भगवान की पुष्टि करता हो। अपने विवेक द्वारा ऐसे महापुरुषो को माने जो प्रगति एवं लक्ष्य का मार्ग बताने वाले हों। देश के हर दलित नागरिक को सम्मान से जीने का अधिकार है। अतः हम सम्मान से जीने के लिए संर्घष कर रहे हैं, इसे प्राप्त करने के लिए जो भी त्याग करना पडे, करेंगे।

दलित समाज के उत्थान के लिए बाबा साहेब सदैव तत्पर रहे। उन्होंने सन्देश दिया कि यदि तुम्हे जीना है तो शेर की तरह जीयो। दूसरे लोगो की तरह तुम्हे भी रोटी, कपड़ा, मकान प्राप्त करने का जन्मसिद्ध अधिकार है। तुम ऐसा प्रयत्न करो जिससे आने वाली पीढ़ी अच्छा जीवन व्यतीत कर सके। समाज में मान सम्मान से जीने के लिए हमें अपने पैरो पर खड़ा होना पडेगा और भेदभाव करने वालो से स्वयं संर्घष करना पडेगा। बलि बकरे की दी जाती है, शेर की नहीं, अतः आप शेर बनें। ज्ञान ही आदमी के जीवन की आधारशिला है। हमारा संर्घष मात्र राजनैतिक व आर्थिक आजादी के लिए नहीं है, बल्कि आत्म सम्मान

के लिए भी है।

सम्मानजनक जीवन जीना दलितो का जन्मसिद्ध अधिकार है। दलितो का उत्थान, आसमान से नहीं टपकता, उसके लिए शिक्षा और उद्यम आवश्यक है। शिक्षा के बिना आपकी गुलामी और दरिद्रता दूर नहीं हो सकती। न्याय और अधिकार माँगने से नही मिलते, उन्हें लड़कर लिया जाता है। आपको महत्वाकांक्षी बनना चाहिए महत्वाकांक्षा ही उन्नति की सीढ़ी है। जिस दलित समाज में हमारा जन्म हुआ है, उस समाज का उद्धार करना हमारा मुख्य कर्तव्य है। जीवन के रहते प्रत्येक मनुष्य को अपना जीवन आदर्श और सम्मानीय बनाये रखने का यत्न करना चाहिए। सम्मान के साथ जीवित रहना सीखो। संसार में कुछ करने की भावना अपने में जागृत करो। केवल वही लोग आगे बढ़ते है, जो प्रयत्न और परिश्रम करते है।

मेरा दलित समाज को एक ही सन्देश है कि 'मैंने तुम्हारे लिए जो कुछ भी किया है, वह बेहद मुसीबतों, अत्यन्त दुखो और बेशुमार विरोधियों का मुकाबला करके किया है। यह कारवाँ आज जिस जगहर पर है, इस जगह पर मैं इसे बड़ी मुसीबतों के साथ लाया हूँ। तुम्हारा कर्तव्य है कि यह कारवाँ सदा आगे ही बढता रहे, बेशक कितनी रुकावट क्यों ने आयें। यदि मेरे अनुयायी इसे आगे न बढा सके, तो इसे यहीं छोड दें, पर किसी भी हालत मे इसे पीछे न जाने दें। यही मेरा सन्देश है।'

अपने पिता के एक मित्र को लिखे पत्र में डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने लिखा है - 'हमारी प्रगति में तीव्र गति से वृद्धि हो सकती है, यदि हम लडकों के साथ-साथ लडकियों को भी शिक्षा दें। अमेरिका में ही उनमें स्वाभिमान, अपनी सहायता स्वंय करने और असह्दयता के विरुद्ध विद्रोह का बीजारोपण हुआ। उन्हे अपने दायित्वो का ध्यान था। उन्होंने अपने आपको विद्याध्ययन में सम्पूर्ण रुप से झोंक दिया था। वे शहर की चमक-दमक और चहल-पहल से दूर रहे। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने दलितो के उत्थान के लिए सर्वप्रथम मातृशक्ति को शिक्षित करने का सन्देश दिया।

यदि हमारी मातृशक्ति शिक्षित, जागरुक होगी तो आने वाली पीढ़ी शिक्षित और जागरुक होगी। बाबा साहेब न करोड़ो दलितो की शिक्षा, विज्ञान, इंजीनियरिंग, टेक्नोलॉजी, शोध के क्षेत्र में प्रशिक्षण, दक्षता और प्राथमिकता, पंचायत से विधानसभा और संसद से सत्ता की भागीदारी, रोजगार प्राप्त करने के समान अवसर, प्रतियोगी परीक्षाओं में प्रशिक्षण, संविधान में आरक्षण आदि ऐसे महत्वपूर्ण विषयों से दलितो के उत्थान के दायित्व की जिम्मेदारी निभाई। बाबा साहेब ने दलितों के उत्थान के लिए प्राचीन सम्यता, संस्कृति, शिक्षा के उदार तत्वों के विषय में भी गंभीर चिंतन मनन किया। बाबा साहेब के प्रयास से ही दलितो में नवजागरण की लहर आ सकी।

आज देश में जगह-जगह डॉ० भीमराव अम्बेडकर के नाम से कॉलेज और विश्वविद्यालयों की बाढ़ सी आ गई है, लेकिन उच्च शिक्षा के इन विद्या केन्द्रों पर पूरा अधिपत्य उच्च वर्ग का ही है। यह विडम्बना ही है कि इनकी सत्ता एक-दो स्थान छोड़कर उच्च वर्ग के लोगो के हाथ में है। डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने दलित समाज को स्थान दिलाने के लिए, जन-जन की शिक्षा की लिए पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना की। इस सोसाइटी का मुख्य उद्देश्य महाराष्ट्र में दलितो में शिक्षा और साहित्य का प्रचार एवं प्रकाशन करना था। इससे महाराष्ट्र में दलितो के जीवन में क्रान्ति आई। दलित समाज के लोग शिक्षा के क्षेत्र में जागरुक बनें। पंजाब के रामदसिया और मजहबी सिख समाज में शिक्षा के प्रति अनुराग बढ़ा। इसी प्रकार डॉ. भीमराव अम्बेडकर से प्रेरणा पाकर उत्तर भारत में संयुक्त प्रान्त - आगरा एवं अवध (उत्तर प्रदेश) के दलित समुदाय में भी शिक्षा के प्रति प्रेम बढ़ा। डॉ. अम्बेडकर ने महाराष्ट्र में सिद्धार्थ कॉलेज की स्थापना की, जिससे दलित शिक्षा को नए आयाम प्राप्त हुए।

अम्बेडकर अपने जीवन काल में जो कुछ कर गए, उसका प्रतिफल आज दिखाई दे रहा है। 'शिक्षा का अधिकार' गरीब-दीन-हीन, उपेक्षित-वंचित बालको के लिए एक वरदान सिद्ध हो रहा है। सामाजिक आर्थिक चुनौतियों का सामना कर रहे दलित-शोषित समाज जो झुग्गी-झोपड़ियों में निवास करते है, जहाँ सुविधाओं का पूर्णतः अभाव है। डॉ० भीमराव ने जिस शिक्षा समता सिद्धान्त का सपना देखा था, वह सपना आज सच-सा लगता है।

अम्बेडकरी साहित्य दलित चेतना का साहित्य है। जो दलितो के उत्थान, नवजागरण, जन-जन जागरुकता, महिला जागरुकता का सम्मिश्रण है। भारत सरकार के सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय के अन्तर्गत

स्वायत्तशासी निकाय के रुप में डॉ. अम्बेडकर शताब्दी वर्ष सन् १९९१ से कार्यरत डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान अम्बेडकर समग्र वांग्मय हिन्दी और भारतीय भाषाओं में प्रकाशित करने की योजना में तन्मयता से लगा है। इसमें डॉ. अम्बेडकर ने दलित नवजागरण की दिशा में किए गए सभी कार्यो से पूरा देश दलित समाज के लोग परिचित हो गए। अन्तिम दिनों में बाबा साहेब ने धर्म की शिक्षा दी। उन्होंने स्वंय बौध धर्म अपनाकर धर्म क्रान्ति की और बौध धर्म को जीवंत बनाया।

६ दिसम्बर १९५६ को भीमराव अम्बेडकर का महाप्रयाण हुआ। भारत के पुनः निर्माण में सामाजिक जागरण में सांस्कृतिक नवोत्थान और दलितोत्थान समग्र शिक्षा के क्षेत्र में उनकी सेवाओं को दलित समाज याद करेगा।

शिक्षा, संगठन और संघर्ष के संगम, डॉ० भीमराव अम्बेडकर ध्येयनिष्ठ, विराट व्यक्तित्व थे। सामाजिक क्रांतियों के इतिहास में बाबा साहेब का महाड़ सत्याग्रह एक मील के पत्थर की तरह है। महाड़ के चावदार तालाब में पशु तक पानी पी सकते थे किन्तु दलितो को पानी पीने का अधिकार नहीं था, इसके विरोध में २० मार्च १९२७ को अपने दलित सहयोगियों के साथ चावदार तालाब, महाड़ में पानी पीकर एक क्रान्ति को जन्म दिया।

बाबा साहेब भारतीय संस्कृति के आलोक पुरुष व पोषक थे। उन्होंने दलितो, शोषितो, पीड़ितो की दर्द भरी मूक भाषा को अमर स्वर प्रदान कर महान कार्य किया। देश में राष्ट्रीय एकता व साम्प्रदायिकता सद्भाव के लिए उन्होंने जन-जन में अलख ज्योति, समाजवाद के कट्टर समर्थक, अहिंसा की प्रतिमूर्ति, बन्धुत्व के प्रतिमान, संविधान के निर्माता महामानव बाबा साहेब ने धरती पर जन्म लेने वाले दलितो के लिए हमेशा के लिए सूरज जला दिया।

बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर का जीवन संघर्ष का प्रतीक है। जिन्होंने अपना सारा जीवन दलितों की कल्याण कामना में समर्पित कर दिया। भारत में ८५ फीसदी दलित जो सामाजिक और आर्थिक तौर पर अभिशप्त थे, उन्हें अभिशाप से मुक्ति के मार्ग लाना अम्बेडकर का जीवन संकल्प था। अम्बेडकर का एक महान लक्ष्य था - सामाजिक असमानता दूर करके दलितों को मानवाधिकार दिलाना जिसे दलित समाज विकास की राह पर अग्रसर हो सके।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर दलितों के मसीहा के रूप में लगातार कार्य करते रहे। दलितों का उत्थान करना बाबा साहेब का परम कर्तव्य रहा। बाबा साहेब ने दलितोद्धार के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन न्यौछावर कर दिया और धन्य है वे, जो सुख और दुःख, मान और अपमान, कष्ट और कठिनाइयों, आंधी और तूफान इनकी परवाह किए बिना तब तक सतत संर्घष करते रहे, जब तक कि अछूतो को मानव के जन्मसिद्ध अधिकार पूर्णतया प्राप्त न हो जाय। दलितों के महान नेता डॉ. भीमराव अम्बेडकर का जीवन दलितो के घरेलू संघर्ष का इतिहास है। बाबा साहेब भारतीय समाज में दलित व्यक्तियों की दिशा और दशा से बहुत अधिक प्रभावित थे। उन्होंने दलितों को शोषण, अन्याय से मुक्ति दिलाने के लिए सक्रिय भूमिका निभाई। उन्होंने दलितों को सन्देश दिया कि दलित व्यक्तियों को शोषण, अन्याय से मुक्ति दिलाने के लिए आवश्यक है कि संगठित होकर अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संर्घष करें वही उनकी मुक्ति का पथ है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने 'दी बुद्ध एण्ड दी फ्यूचर ऑफ हिज रिलीजन' में लिखा है कि दलित जातियों को उत्थान के लिए आवश्यक है कि वह बौद्ध धर्म को स्वीकार करें क्योंकि बौद्ध धर्म में जातिवाद के लिए कोई स्थान नहीं है वरन् समानता, विश्व बन्धुत्व की भावना होती है। बौद्ध धर्म का अनुसरण करने पर दलित जाति के व्यक्तियों को समाज में अपना दर्जा बढाने में मदद मिलेगी। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने दलितोत्थान में आशावादी विचार व्यक्त किये है।

बाबा साहेब ने अपने ग्रन्थ 'शूद्रो की खोज' में दलितों का विस्तार से वर्णन किया। इस ग्रन्थ में उन्होंने दलितो की समस्याओ, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति का वर्णन किया है। शूद्रो की खोज पुस्तक ग्रन्थ लिखने का मुख्य उद्देश्य दलितों के पतन का कारण जानना था। बाबा साहेब का चिन्तन एक दलितों का चिन्तन था। यदि इस चिन्तन को स्त्री चिंतन की संज्ञा दी जाये तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। यदि हम अम्बेडकर के सम्पूर्ण जीवन दर्शन पर बात करें तो यह कथन सामने आता है कि स्त्री और दलित स्त्री उनके व्यक्तित्व व उनके व्यक्तित्व व उनके दर्शन का अमिट हिस्सा है। यह स्त्री चेतना उनके

परिवार, उनके आसपास व विदेश में किए गए उनके अध्ययन व तरह-तरह के आंदोलनों में जुडने से आई है। अम्बेडकर के दलित स्त्री चिंतन का मूल आधार उनके परिवार से ही आया। बाबा साहेब ने विदेशों में अध्ययन के दौरान वहाँ के स्वतंत्र जीवन में स्त्रियों का चहुमुखी विकास देखा तो उन्हें समझ में आया कि बिना स्त्री शिक्षा व स्त्री जागृति के दलितो की प्रगति अधूरी है। अम्बेडकर ने दलितोत्थान में शिक्षा के क्षेत्र में बालक शिक्षा के साथ-साथ स्त्री बालिका शिक्षा को भी आवश्यक बताया क्योंकि अम्बेडकर ने अपने दर्शन व चिन्तन में महिलाओं को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। अम्बेडकर द्वारा जातीय अत्याचारों को समाप्त करने के लिए साम्राज्यवादी शासकों के प्रति सहानुभूति का वर्णन किया है। बाबा साहेब ने सन्देश दिया कि किसी भी प्रकार के विरोध से विचलित न हों, बहकावे में न आवें। समाज में सामाजिक आर्थिक नियमों में ऐसे बदलाव लायें जो न्याय और औचित्य के लिहाज में अनिवार्य है।

बाबा साहेब डॉ० भीमराव अम्बेडकर बीसवीं शताब्दी के एक महान राष्ट्रीय नेता थे। वे बुद्धिजीवी तथा राजनीतिज्ञ थे। दलितो एवं देश निमार्ण में उनका बहुमूल्य योगदान रहा है। उन्होने दलितो व शोषितो को अन्य लोगो के समान ही कानूनी तथा लाखो दलितो को मानवाधिकार दिलाए। डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने विश्वविद्यालय संस्थाओं में डॉ० भीमराव अम्बेडकर पीठ योजना की शुरुआत १९९३ में की। इस योजना को लागू करने का उद्देश्य दलितो का सामाजिक, उच्च अध्ययन, शोध, सामाजिक परिवर्तन एवं विकास, सामाजिक नीति एवं सामाजिक कार्य, समाज कार्य, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मानव विज्ञान, दलित आन्दोलन एवं इतिहास, सामाजिक न्याय इत्यादि से रूबरू करना था।

बाबा साहेब ने १९२० के दशक में बंबई के एक सम्मेलन में भाषण देते हुए कहा था कि जहाँ मेरे व्यक्तिगत हित और देश हित में टकराव होगा, वहाँ मैं देश के हित को प्राथमिकता दूँगा, किन्तु जहाँ दलित जातियों के हित और देश के हित में टकराव होगा, वहाँ मैं दलितो को प्राथमिकता दूँगा। बाबा साहेब ने १९२७ ई० में पेयजल के सार्वजनिक संसाधनो को सम्मान के सभी जातियो के लिए खुलवाने और दलितो को हिन्दू मन्दिरों में प्रवेश करने का अधिकार दिलाने के लिए आन्दोलन शुरू किया। २५ दिसम्बर १९२७ को महाड के चावदार तालाब का पानी पीने के लिए सत्याग्रह किया। राज्य द्वारा बनाये गये कानूनों का प्रयोग कर ही दलितों के अधिकारो की लडाई लड़ी जाए।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर नेहरू रिपोर्ट की सिफारिशो से भी सन्तुष्ट नहीं थे क्योंकि उसमें दलितो, पिछड़ी जातियो (शूद्रो) के व्यक्तियों को जगह नहीं दी गई थी। सन् १९२९ में 'समता समाज संघ' की स्थापना की और अगले वर्ष १९३० में नासिक के कालाराम मन्दिर में अछूतो के प्रवेश की पाबंदी को हटाने के लिए जबरदस्त सत्याग्रह किया। बाबा साहेब का लक्ष्य था, सामाजिक असमानता दूर करके दलितों के मानवाधिकार की प्रतिष्ठा करना। उन्हे भावी राष्ट्र-राज्य में दलित की नागरिकता की चिन्ता थी। उन्होने कांग्रेस से कहा कि स्वराज के संर्घष में भाग लेने के लिए मैं तैयार हूँ, पर उन्होंने एक शर्त सामने रखी - ''मुझे बताइए उस स्वराज्य में मेरी भागीदारी कितनी होगी।''

डॉ. भीमराव अम्बेडकर चाहते थे कि दलितोद्धार आन्दोलन का संचालन दलित व्यक्ति ही व्यक्ति ही करें। वे दलितों में स्वावलंबन की भावना पैदा करना चाहते थे। स्वावलंबन के बिना आत्मसम्मान की भावना पैदा नही होती और आत्मसम्मान के बगैर दलितो का उत्थान नही हो सकता, इस बात को अम्बेडकर स्वानुभव से भली भाँति जानते थे इसलिए वे अपने भाषणों में अछूतो को संगठित होने का अपने पाँव पर खड़ा होने का सन्देश देते थे। मेरे दलित बन्धुवों अपना उद्धार खुद करो - यह उनके आदेश - उपदेश - संदेश का मूलमंत्र होता था। उनके दर्शन के लिए एकत्रित होने वाले दलितो के गरीबी के कारण मैले - कुचैले, फटे पुराने कपड़े और अभाव की छाया लिये मुर्झाए चेहरे को देखकर डॉ० अम्बेडकर को बड़ा दुख होता था और उनका हृदय क्षुब्ध हो उठता था और ऐसी अवस्था में वह उन अभागे दलितो को फटकारते - 'तुम्हें जीना है, तो जिन्दादिल बनकर जिओ। दलित लोग अपने बीच बाबा साहेब को पाकर आम्मगौरव की भावना से अभिभूत हो जाते।

दलितो के उत्थान के लिए बाबा साहेब ने सन्देश दिया - पढ़ो, संगठित बनो, प्रचारक बनो, आत्म विश्वासी बनो और आशावादी बनो। बाबा साहेब द्वारा १९३६ में महार जाति परिषद बंबई में आयोजित की थी। उसमें

उन्होंने जो भाषण दिया उसके अन्त में कहा था कि भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा था -

'तुम दीपक के समान स्वंय प्रकाशित बनो, पृथ्वी की तरह पर-प्रकाशित नहीं। अपने आप पर विश्वास रखो और किसी दूसरे के अधीन न बनो। सत्य पर चलो। सत्य का ही आश्रय लो। किसी दूसरे की शरण में न जाओ।'

- मेरे समस्त दलित भाई-बन्धुओं इसी में आपका हित है।

करोड़ो दलितो के उद्धारक वर्गभेद का कट्टर विरोधक, सामाजिक समता के प्रबल समर्थक और हिन्दू बिल कोड के प्रस्तावक, दलितो के हितैषी आधुनिक समय के सर्वश्रेष्ठ का क्रांतिकारी व समाज सुधारक थे। उनका दलितो को समाज में स्थान दिलाने के लिए यह सन्देश था - 'झगड़ो और झगड़ो। त्याग करो, और त्याग करो। त्याग और कष्ट की परवाह किये बिना सत्त संर्घष करते रहो। यही मुक्ति का मार्ग है।' दलितोद्धार में बाबा साहेब ने अपना सारा जीवन लगा दिया। उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि यदि मैं दलितो के लिए कुछ न सका तो मैं अपने को स्वयं गोली मारकर अपना जीवन समाप्त कर दूंगा।

डॉ. अम्बेडकर तेजस्वी वक्ता और लेखक थे। वह महान विचारक, दलितो के उद्धारक, हिन्दू समाज के सुधारक, भारत के सेवक, उच्च कोटि के गिने चुने महापुरुषों में से एक थे। भारत के इतिहास में उनका नाम और काम दोनों अमर बने रहेगें। डॉ. भीमराव अम्बेडकर का क्रांतिकारी जीवन-चरित्र हिन्दू समाज और दलित समाज दोनों को समान रूप से सामाजिक समता की प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।

सन्दर्भ : -

१. वंश-जाति-परिवार परिचय (द्वितीय परिच्छेद) डॉ. भीमराव अम्बेडकर : जीवन-दर्शन पृ०- २३।

२. प्रेम और घृणा के अनुभव (तृतीय परिच्छेद) डॉ. भीमराव अम्बेडकर : जीवन-दर्शन पृ०- २८।

३. महाराष्ट्र के अछूतोद्धार आंदोलन का इतिहास (सप्तम परिच्छेद) डॉ. भीमराव अम्बेडकर : जीवन-दर्शन पृ०- ४३।

४. वह कर्म-क्षेत्र में कूद पड़े (नवम् परिच्छेद) डॉ. भीमराव अम्बेडकर : जीवन-दर्शन पृ०- ५४।

५. महाड सत्याग्रह (दशम परिच्छेद) डॉ० भीमराव अम्बेडकर : जीवन-दर्शन पृ०- २३।

६. वंश-जाति-परिवार परिचय (अष्टादश परिच्छेद) डॉ. भीमराव अम्बेडकर : जीवन-दर्शन पृ०-१०१।

७. जीवन का मूल्याकंन (चतुर्विंशतिः परिच्छेद) डॉ. भीमराव अम्बेडकर : जीवन-दर्शन पृ०- १२४।

हरीश राम

अस्सिटेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग
हर्ष विद्या मन्दिर (पी०जी०) कॉलेज,
रायसी, हरिद्वार, उत्तराखण्ड
मो०- ९८११९४७६८६
ई मेल - harishhitaishi1@gmail.com

नई कहानी : कुछ विचार, कुछ बिन्दु

वांग मेइचेन (Wang Meicen)

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
दिल्लीविश्वविद्यालय, दिल्ली-११००७७
मो : ८१३०२१७७३३

हिन्दी साहित्य में 'नई कहानी' एक महत्वपूर्ण साहित्यिक आंदोलन है, जिसे आलोचक और शिक्षाविद बहुत महत्व देते हैं। नई कहानी की कई पहलुओं में हिंदी साहित्य के परिवर्तन की प्रक्रिया की नई प्रवृत्तियों को दर्शाते हैं। नई कहानी में उभर रहे विभिन्न प्रसिद्ध लेखकों के कार्यों पर कई अध्ययन और टिप्पणियां हुई हैं और इस लेख के मुख्य उद्देश्यनई कहानी की कहानियों की सामान्य विशेषताओं पर ध्यान केंद्रित करेगा।

१९५७ के एक साहित्यिक सम्मेलन में मोहन राकेश और आदि लेखकों ने अपने रचनात्मक अनुभव के सारांश के आधार पर 'नई कहानी' की अवधारणा को सामने रखा। उनका मानना है कि नए युग में आई हुई नई समस्याओं को नए दृष्टिकोणों और नए तरीकों से लिखा जाना चाहिए। उनके इस प्रस्ताव का लेखकों ने तुरंत ही तीखा असर डाला और हिंदी साहित्य जगत में एक जोरदार 'नई कहानी' आंदोलन शुरू किया गया। राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी और अन्य प्रसिद्ध लेखक इस रचनात्मक प्रवृत्ति में शामिल हो गए हैं। स्वतंत्रता के बाद हिंदी साहित्य के क्षेत्र में 'नई कहानी' की शैली मुख्य शक्ति बन गई। ये लेखक अपनी रचना में 'नई कहानी' के विचार का अभ्यास करते हैं। उनकी कहानीयां इसी विचार के मार्गदर्शन में रचित है। निम्नलिखित लेख 'नई कहानी' आंदोलन के साथ इन कहानियों की रचनात्मक विशेषताओं का चर्चा करेगा।

'नई कहानी' की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता है कि कहानी में घटना अब काम का मूल नहीं है, जो पारंपरिक कहानी में सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु है। 'नई कहानी' की कहानियों में घटनाओं का वर्णन काम का फोकस नहीं है। भले ही कभी-कभी कहानी में घटना की रूपरेखा उभर आती है, उपन्यास कभी भी घटना प्रक्रिया के वर्णन पर केंद्रित नहीं होता है, लेकिन घटना का वर्णन मुख्य रूप से नहीं किया जाता। पात्रों की गतिविधियों (मनोवैज्ञानिक गतिविधियों सहित) और वातावरण का विवरण अब कार्यों में केंद्रित हैं।

उदाहरण के लिए देखें, मोहन राकेश की कहानी 'सोया हुआ शहर' में पाठक तो कोई पूरी घटना नहीं पढ़ सकें। यह कार्य आधी रात में शहर की एक तस्वीर की तरह है -- गली में घूमता हुआ कुत्ता, बस स्टेशन के पास सोते हुए आदमी, रिश्तेदारों की तलाश में दरवाजा पीटे हुए महिला, छत पर चिमनी के पास खड़े हुए कई कबूतर, बदमाशों का पीछा करती पुलिस, बात करते हुए अज्ञात व्यक्ति......। पाठकों के लिए इन बिखरी हुई तस्वीरों से इनके बीच के संबंध का पता लगाना मुश्किल है। लेखक पाठकों को यह बताना नहीं चाहता कि रात में शहर में क्या हुआ, बल्कि पाठकों के लिए खुद को महसूस करने के लिए एक माहौल बनाते हैं। जब हम पहली बार इस तरह के काम को पढ़ते हैं, तो हमें ऐसा लगेगा कि हम कोहरे के समुद्र में गिर जाए और कथानक की निरंतरता को पकड़ने में असमर्थ हैं। हालांकि, इसका मतलब यह नहीं है कि पाठक कहानी के अर्थ को नहीं समझ सकते। दरअसल, कुत्ता भौंकता रहा, गली में सो रहा आदमी लगातार जाग रहा, और जो महिला अपने रिश्तेदार की तलाश कर रही थी, वह आधी रात में भटक रही......चित्रों की यह श्रृंखला पाठक के मूड को हमेशा चिंता की स्थिति में बना देती है, न जाने आगे क्या होगा। जाहिर है, शहर में रात शांतिपूर्ण नहीं है। सोया हुआ शहर एक असुरक्षित शहर है। यही लेखक पाठकों को बताना चाहता है।

पारंपरिक कहानियों में कथा के दो तत्व होते हैं। एक

यह है कि कहानी की प्रत्येक घटना का करणीय संबंध होता हैः कोई घटना घटित होने से दूसरी घटना सामने आएगा या तो कोई संघर्ष होता है, और फिर स्थिति बदल जाती है। दूसरा तत्व है कि कहानी में घटनाओं का घटित होना समय में रैखिक है। नई कहानी के लेखक जानबूझकर कहानियों की इन दो आवश्यक तत्वों की उपेक्षा करते हैं, अर्थात् घटनाओं का कालक्रम और करणीय संबंध की निरंतरता को तोड़ते हैं, और ऊपर वर्णित'सोया हुआ शहर' एक विशिष्ट उदाहरण है। इसलिए जब हम नई कहानी के कार्यों को पढ़ते हैं, तो आरंभ में हमें लगता है कि लेखक हमें केवल कुछ खंडित दृश्यों और पात्रों की गतिविधियों के साथ प्रस्तुत करते हैं। लेकिन जब हम कार्यों को पढ़ना समाप्त करते हैं, तो हमें पता चलता है कि रूप से टूटे हुए टुकड़े दृश्य वास्तव में संबंधित हैं। एक बार वे एक साथ मिलकर, हम उस संदेश को पकड़ सकते हैं जो लेखक हमें बताना चाहते हैं।

रूपक और प्रतीक 'नई कहानी' की दूसरी प्रमुख विशेषता है। 'नई कहानी' के लेखक जानबूझकर अपनी व्यक्तिपरक इच्छा को पाठकों पर थोपने से बचने के लिए प्रतीकों और रूपकों का उपयोग करते हैं। मोहन राकेश की कहानी 'सेफ़्टी पिन' में उच्च-मध्यम वर्गीय पारिवारिक संबंधों का वर्णन किया जाता है। कहानी में वर्णित मध्यम वर्ग के पुरुष और महिलाएं सतही तौर पर गुणी हैं, लेकिन उनकी हड्डियों में भ्रष्ट हैं। भोज में, लगभग सभी का अकथ्य संबंध होता है, और पारिवारिक संबंध केवल नाम के होते हैं। कहानी में कथावाचक को इस पारिवारिक सभा में आमंत्रित किया जाता है, और रास्ते में उस के पैंट की ज़िप टूट गई, इसलिए वह पैंट को एक पिन से ठीक करता है। भोज के दौरान, पैंट की वजह से कथावाचक शर्मिंदा है, और इस दोष को प्रकट करने से बचने के लिए वह हमेशा सावधान है, लेकिन अंत में पिन गिर जाता है। यहां 'पिन' का एक मजबूत प्रतीकात्मक अर्थ है -- मध्यम वर्ग के नाजुक पारिवारिक संबंधों की प्रतीक। यह 'पिन' पाठकों को पढ़ते समय कठवाचक जैसे असहज महसूस कराता है, और लोगों को यह महसूस कराता है कि सुखद वातावरण में विभिन्न संकट छिपे हुए हैं।

यहाँ और एक उदाहरण है निर्मल वर्मा की कहनी 'धागे'। इस कहानी में नायिका रुनी, उसकी बहन और बहन के पति के बीच की कहानी है। लंबे समय से पहले रुनी को अपने बहन के पति से बहुत प्यार हो गया और उन तीनों के बीच का रिश्ता धागे की तरह है। जटिल लेकिन अत्यंत कमज़ोर है। यहाँ धागे प्रतीक है प्रेम और दाम्पत्य के टूटते-बिखरते रिश्तों को नाजुकता से जोड़े रखने का।

यह नई कहानी के लेखकों की प्रतिभा भी है, क्योंकि नई कहानी के लिए कथा साहित्य अब वास्तविक जीवन में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए, उन्हें केवल अपने और साहित्य से ही सरोकार रखना चाहिए। 'नई कहानी' के लेखक शानदार फोटोग्राफर की तरह होते हैं, जो समस्या के विश्लेषण को पाठक पर छोड़ते हुए केवल कई शॉट्स, कई पक्षों और जीवन की कई परतों को शूट करते हैं, इसलिए लेखक अक्सर रूपकों और प्रतीकों का उपयोग करते हैं ताकि पाठकों पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डाल दें।

एंगेल्स ने हार्कनेस को लिखे पत्र में कहा था -- 'लेखक के दृष्टिकोण को जितना छुपाया जाए, कला के काम के लिए उतना ही बेहतर।' 'नई कहानी' के लेखक अपनी रचना के साथ एंगेल्स के इस प्रसिद्ध कथन को सवीत्तम रूप से समझाते हैं। 'नई कहानी' की कहानियों में पाठक अब लेखकों की रचनाओं के निष्क्रिय प्राप्तकर्ता नहीं, बल्कि सक्रिय प्रतिभागी और सहयोगी हैं। सौंदर्य की दृष्टि से, नई कहानी के लेखक अपने विचारों को छिपाकर उन्हें जीवन की एक ठोस और समग्र तस्वीर के साथ दिखाने के लिए अपने कार्यों में बहुत सारे रूपकों और प्रतीकों का उपयोग करते हैं, और इस प्रकार एक ऐसा वातावरण बनाते हैं जो जीवन के नमूने से लगभग अप्रभेद्य है। यही पाठकों को भाषा की सीमा को पार करके सौंदर्य की अनुभूति में शीघ्रता से प्रवेश करने देता है और पाठकों को स्वयं जीवन की घटना पर लौटने में सक्षम बनाता है। इस प्रक्रिया में, पाठक स्वतंत्र रूप से विचार कर सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप एक अविस्मरणीय सौंदर्य अनुभव होता है।

परिप्रेक्ष्य के बारे में नई कहानी में कहानी की विशेषता यह है कि प्रथम-व्यक्ति का व्यापक उपयोग। परिप्रेक्ष्य के चयन का कहानी की अभिव्यक्ति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। आमतौर पर तृतीय-व्यक्ति सर्वज्ञ परिप्रेक्ष्य कहानी (विशेषकर पारंपरिक यथार्थवादी कहानी में) में सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाने वाला परिप्रेक्ष्य है। इस परिप्रेक्ष्य के कई फायदे हैं। यह कथावाचक को ईश्वर के समान सर्वज्ञ और सभी पात्रों को पार करने में सक्षम बनाता है। इस तरह, वर्णन की प्रक्रिया में लेखक को सामग्री के स्रोत की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है, और लेखक वर्णन की दृष्टिकोण को अपनी इच्छानुसार स्थानांतरित कर सकता है -- वह न केवल अतीत और भविष्य, पात्रों की मनोस्थितियों और व्यवहारों को पूरी तरह से प्रकट कर सकता है, बल्कि घटनाओं और

पात्रों के बीच के जटिल संबंधों को समझा सकता है। लेकिन, इस परिप्रेक्ष्य में कमियां भी है कि पाठकों को कभी-कभी काम के उन हिस्सों के बारे में संदेह होता है जो कथावाचक को पता नहीं होना चाहिए। यह कार्य की प्रामाणिकता को प्रभावित करता है। इसके अलावा, यह अक्सर पाठकों में कम रुचि पैदा करता है और मानसिक व भावनात्मक जड़ता विकसित करता है।

नई कहानी में तो दूसरी बात है। लेखक के व्यक्तिपरक तर्कों या निणन्यों से जितना हो सके बचा जाना चाहिए, और पाठकों को कल्पना और निणन्य करने देना चाहिए। इसलिए, नई कहानी में, हम देखते हैं कि लेखक आमतौर पर सर्वज्ञ परिप्रेक्ष्य के उपयोग से बचते हैं। नई कहानी के लेखक अक्सर अपने कहानियों में प्रथम-व्यक्ति परिप्रेक्ष्य का उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए, नई कहानी के प्रतिनिधि निर्मल वर्मा अपने आधे से अधिक कहानियों में इस तरह के परिप्रेक्ष्य का उपयोग करते हैं।

आम तौर पर, प्रथम-व्यक्ति परिप्रेक्ष्य का कथा क्षितिज सीमित होता है, और यह परिप्रेक्ष्य जटिल कहानी, विस्तृत दृश्यों और पात्रों को व्यक्त करने के लिए असमर्थ है। हालाँकि, नई कहानी की कहानियों में प्रथम-व्यक्ति परिप्रेक्ष्य का उपयोग तो बहुत उपयुक्त है। नई कहानी स्वाभाविक रूप से मनोविज्ञान को चित्रित करने, और वातावरण प्रदान करने में ध्यान देती हैं जबकि भूखंडों को समझाने में कम महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा, कहानी की विधा स्वयं विस्तृत दृश्यों और बहुत सारे पात्रों की व्यवस्था नहीं करती। इस मामले में प्रथम-व्यक्ति परिप्रेक्ष्य का उपयोग करने का लाभ स्पष्ट है कि लेखक आसानी से पाठक के पढ़ने के अनुभव को बिना किसी निशान के प्रभावित और मार्गदर्शन कर सकता है। पाठक पात्रों की ये बातों को सुन सकते हैं, जो पात्र स्वयं देखी जाती, सुनी जाती और अनुभव की जाती है, इसलिए कहानी अधिक विशद और मार्मिक बन जाती है।

ऊपर नई कहानी की कुछ विशेषताओं का चर्चा किया जाता है। यह कहा जा सकता है कि नई कहानी के लेखकों ने कहानी के निर्माण के रूप और सामग्री में पारंपरिक हिंदी साहित्य पर साहसिक नवाचार किए हैं और यह प्रयास सफल रहा है। आधुनिक समाज में, भौतिक संपदा अतीत की तुलना में अत्यंत समृद्ध है, और समाज में लोग जिन विभिन्न दबावों को झेलते हैं, वे अक्सर उनकी मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं में प्रकट होते हैं। इसलिए, इन समस्याओं को प्रस्तुत करते समय नई कहानी इसकी ताकत को अधिकतम करती है। वहीं, नई कहानी के लेखक परंपरा को नहीं छोड़ते। लेखक की सामाजिक जिम्मेदारी और आलोचनात्मक भावना के संदर्भ में नई कहानीकार प्रेमचंद जैसे उत्कृष्ट पूर्ववतिन्यों के समान हैं। यह सिर्फ इतना है कि वे अलग-अलग युग में रहते हैं, इसलिए कार्यों के विषय और भाव अलग-अलग होते हैं।

नई कहानी साहित्य की लोकप्रियता के युग में आधुनिकतावाद, उत्तर-आधुनिकतावाद और अन्य साहित्यिक और कलात्मक प्रवृत्तियों का बोलबाला था। ऐसी साहित्यिक प्रवृत्ति के तहत समकालीन भारतीय लेखकों के लिए इन विचारों से प्रभावित नहीं होना असंभव है। पश्चिमी लेखकों के सफल अनुभव और भारत की सामाजिक वास्तविकता को जोड़कर नई कहानी के लेखक बड़ी संख्या में उत्कृष्ट कार्यों का निर्माण करते रहते थे। यहां हम देख सकते हैं कि फ्रांस में 'न्यू नॉवेल' आंदोलन १९५० के दशक के मध्य से शुरू हुआ, जबकि भारत में 'नई कहानी' के लिए पहला आह्वान १९५७ में किया गया था, जो दर्शाता है कि समकालीन हिंदी साहित्य का विकास है लगभग यह विश्व साहित्य की प्रवृत्ति के अनुरूप है। इसके अलावा, हिंदी साहित्यकार अपने कार्यों में व्यक्त किए गए विचार और समस्याएं भारत तक ही सीमित नहीं हैं। मानव स्वभाव और पारंपरिक सामाजिक संबंधों का पतन आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति में सभी मानव समाजों द्वारा सामना की जाने वाली सामान्य समस्याएं हैं। यह कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी साहित्य विश्व साहित्य की प्रवृत्ति में पूरी तरह से एकीकृत हो गया है और एक सक्रिय हिस्सा है।

संदर्भः

१.मोहन राकेश, फ़ौलाद का आकाश, राजपाल एण्ड संस, १९६६

२.निर्मल वर्मा, पिछली गमिन्यों में, राजकमल प्रकाशन, १९६८

३.नामवर सिंह, कहानीः नई कहानी, लोक भारती प्रकाशन,१९७३

४.विजयेन्द्र स्नातक, हिन्दी साहित्य का इतिहास, साहित्य एकेडमी, २०१५

५.Genette Gérard. Narrative Discourse, [M].Ithaca: Cor-nell University Press, 1980.

6.E.M.Forster,Aspects of Novel, Mariner Books, 1956

प्रेमचंद की कथा-परंपरा में अमरकांत

गैन लूटिंग (Gan Luting)

दक्षिण एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया भाषा और संस्कृति विभाग
यूनान मिंजु विश्वविद्यालय, खुन मिंग, चीन -६५०५००
मो : ्८६ १५२८८४९०७८४ (चीन)
ईमेल : ganluting_glt22@163.com

शोध-सार :

प्रेमचंद न सिर्फ़ भारत के समकालीन लेखकों में श्रेष्ठ कथाकार को मानना जाता है, बल्कि उनकी प्रगति चेतना विश्व स्तर पर रखी हैं। विभिन्न विद्वानों ने प्रेमचंद की परंपरा के बारे में बहुत चर्चा की। लेकिन प्रेमचंद की परंपरा क्या है? इसमें कोई निश्चित उत्तर नहीं है, परंपरा की व्याख्या करना भी कठिन होता है। और सारे विवादों के बावजूद भी आज हम कहा जा सकते हैं कि प्रेमचंद की परंपरा एक भारतीय समाज का यथार्थवादी चित्रण है, इसमें परंपरा की सबसे बड़ी विशेषता है आलोचनात्मक यथार्थवाद। प्रेमचंद के आगे और उनके बाद अधिक शक्ति कथाकार हैं, पर प्रेमचंदोत्तर युग के विकास में एक यथार्थवादी लेखक हमारे सामने आए, जो प्रेमचंद की परंपरा आलोचनात्मक यथार्थवाद अपने कथा साहित्य में दिखवाया, उनका नाम है अमरकांत। अमरकांत सशक्त नई कहानी के प्रतिनिधि कथाकारों में से एक हैं। कई विद्वानों ने अमरकांत प्रेमचंद की तुलना करने की चर्चा की, प्रेमचंद और अमरकांत की वैचारिकता के बीच समानता के अनेक सूत्र दिखते हैं। दोनों के यहाँ अपने समय के समज का यथार्थवाद दर्शाया। यद्यपि हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रेमचंद का योगदा अद्वित्य है। अमरकांत की परंपरा भी निराला है। इस शोध-पत्र में प्रेमचंद और अमरकांत की तुलना के माध्यम से इसी तत्व के अध्ययन-विश्लेषण का प्रयास किया गया है।

बीज-शब्द : प्रेमचंद, अमरकांत, आलोचनात्मक यथार्थवाद, हिंदी साहित्य, नई कहानी, मध्य-निम्न मध्यवर्ग ।

मूल आलेख :

हिंदी साहित्य जगत में प्रेमचंद को 'कथा सम्राट' कहा जाता है। उन्होंने २०वीं सदी के प्रारंभ के भारतीय जीवन का महाकथा लिखा है। अपने कथा-साहित्य में समाज और व्यक्ति की सत्य समस्याओं के चित्रण को दिखाई देता है। प्रेमचंद के लिए रचना का उद्देश्य मात्र मनोरंजन करना नहीं था, पर जीवन-सत्यों के वास्तविक मर्मों का उद्घाटन करना था। मानव-जीवन एवं समाज की सच्चाइयाँ और संवेदनाएँ व्यक्त करना ही साहित्य है। प्रेमचंद के शब्दों में 'साहित्य ही रचना' है। प्रेमचंद की रचनाएँ यथार्थवाद हैं। उन्होंने अपने समय के अंतर्विरोधों और पाखण्ड को देखकर अपने समाज को दिशा दिया। प्रेमचंद ने साहित्य को अपने ढंग से परिभाषित करने की कोशिश की है। इसलिए उनकी परंपरा की परिभाषा में कठिन है। लेकिन उनकी परंपरा आखरि् है क्या। देखा जाये तो प्रेमचंद की कथा-परंपरा एक 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' की है। सत्यकाम आलोचनात्मक यथार्थवाद के संबंध में कहते हैं- 'आलोचनात्मेक यथार्थवाद की प्रमुख और अनिवार्य विशेषता है और आलोचनात्मक यथार्थवाद यथार्थ को व्यक्त करने की एक दृष्टि। इसमें यथार्थ को हू-ब-हू नहीं रख दिया जाता, बल्कि उसके कारणों की परत-दर-परत छानबीन की जाती है। इसमें समस्या का

समाधान नहीं प्रस्तुत किया जाता, क्योंकि उपन्यास या कहानी कोई 'केस-स्टडी' या 'नुस्खा' नहीं होता। प्रेमचंद के उपन्यास और कहानी उस समय भारतीय जीवन के महाकाव्य हैं। प्रेमचन्दन स्वयं जीवन-यथार्थ को आलोचनात्मक दृष्टि से देखते हैं। उनकी दृष्टि वैज्ञानिक, तर्कसंगत और आधुनिक है। वे निरन्तहर पराधीनता, भारतीय नारी, नीच-ऊँच, छुआछूत, आर्थिक असमानता और धर्म-सम्प्रदाय संबंधी यथार्थ पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करते हैं। उन्होंने अपने साहित्य में यथार्थवाद संबंधी अवधारणाओं और खासकर आलोचनात्मक यथार्थवाद पर विस्तार से विचार किया है, और उनके द्वारा विभिन्न समकालीन समस्याओं को उठाने पर विचार किया गया है।'

आज अगर किसी लेखक की शिनाख्त बनती है तो कहा जाता है कि वे प्रेमचंद की परंपरा के लेखक हैं। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय समाज, राजनीति, सांस्कृतिक मूल्य आदि परिवर्तन हुआ है। कथाकारों के लेखन की परिधि यथार्थ के धरातल पर आकर खड़ी हो गई थी। प्रेमचंद के बाद की कहानियों का लक्षण है कि आधुनिकता। सामाजिक आधुनिकता के परिवर्तन के साथ साथ कथाकार ने इसे अनुभव की। डॉ. सुरेश सिंहा ने भारत के सामाजिक बदलावों को ध्यान देकर कहा है कि, 'ज्वालामुखी फट चुका था और उसके विस्फोट को तथाकथित 'सामाजिक सुधारक' रोक सकने में असमर्थ थे। समाज में मध्यवर्ग नवीन चेतना से संचालित हो रहा था और उसे अपना भी महत्व समझ में आने लगा था। वह यह समझने लगा था कि उसकी पीड़ाएँ, उसका दुःख-दर्द, उसकी भावनाएँ, प्रेम-विवाह सम्बंधी निराश और कुंठाएँ इन सबके अपने-अपने अर्थ हैं।' सन १९५० के बाद कहानियों में अनेक स्तर पर परिवर्तन आए हैं। 'नई कहानी' का नाम भी जानने लगा। नई कहानी की 'नई' का मतलब यह नहीं कि पहले की कहानी से भिन्न है, पर उसने अतीत से कुछ भी लिया है। उसने प्रेमचंद की यथार्थपरक कहानियों का स्वयं में सम्मिश्रण किया है। 'वस्तुतः नई कहानी प्रेमचंद की परंपरा का फैलाव है। कहानी यानी कि वह कहानी जो जैनेंद्र, अज्ञेय, यशपाल, अश्क के बाद लिखी गई अधिकतर प्रेमचंद की परंपरा का फैलाव है।' कमलेश्वर के शब्दों में, 'नई कहानी ने स्वतंत्रता के पश्चात समाज में व्याप्त अंधड़ को पहचाना था। इसलिए इसने जीवन के विभिन्न स्तरों को जीने वाले पात्रों की तलाश की थी, उस यथार्थ की तलाश की थी, जिसकी साक्षी किए हैं ये कथाकार-विष्णु प्रभाकर, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, मंनु भण्डारी, निर्मल वर्मा, अमरकांत आदि।'

प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाने का अर्थ है कि प्रेमचंद के बाद के भारत के यथार्थ का चित्रण। अमरकांत 'नई कहानी' में से एक यथार्थवादी लेखक हैं, उन के बारे मे यशपाल जी ने कहा था, 'अमरकांत जी हिंदी कथा साहित्य में प्रेमचंद के बाद यथार्थवादी धारा के प्रमुख कहानीकार थे। वे अमरकांत जी को गोर्की कहा करते थे।' उनकी कहानियाँ उस समय और समाज को उसकी वास्तविकताओं के ताने-बाने में प्रस्तुत करती हैं जब आजाद भारत अपने क़दमों पर खडा हो रहा था। अमरकान्त आम आदमी के कथाकार हैं। उन्होंने भारत स्वतंत्र होने के बाद आम आदमी के जीवन संघर्ष को प्रकट करने की सफल कोशिश की है। ये अनवरत जीवन-संघर्ष की यथार्थपरक कहानियाँ हैं। जैसे मज़दूर, निम्न मध्यवर्गीय किसान, खेतिहर मज़दूर, कम वेतन पाने वाला शिक्षक, चपरासी और अन्य शोषित पीड़ित लोगों का संसार आदि। अतः प्रेमचंद के जैसे भारत के सामाजिक जीवन का वर्णन करते थे, अमरकांत ने उस समय की समस्याओं को भी व्यक्त करने की कोशिश की। अमरकांत ही इस युग के यथार्थवादी हैं। इसलिए प्रेमचंद की परंपरा के परिप्रेक्ष्य से अमरकान्त के लेखन का अध्ययन करने मूल्यवान है।

भारतीय साहित्य लेखकों में प्रेमचंद की रचनाओं के काफ़ी निकट हैं अमरकांत। अमरकांत हिंदी कथा साहित्य में प्रेमचंद के बाद यथार्थवादी धारा के प्रमुख कहानीकार थे। डॉ. निर्मल सिंघल के अनुसार 'अमरकांत प्रेमचंद की परम्परा के कहानीकार हैं। प्रेमचंद की कहानियों की विषयवस्तु और स्तर विवधतापूर्ण हैं। ष्ठअंतिम दिनों में उन्होंने 'पूस की रात' और 'कफ़न' जैसी कहानियाँ लिखीं - जो यथार्थ बोध की निर्ममता से निर्मित हैं। ... अमरकांत ने अपनी कहानियों का सूत्र प्रेमचंद की इन्हीं परवर्ती कहानियों से पकड़ा है।' अतः कथाकार प्रेमचंद और अमरकांत की तुलना में उनकी विशेषताएँ क्या हैं, हम निम्न चार पक्षों से चर्चा करते हैं।

पहला, दोनों लेखक के देश का वातावरण और रचनात्मक काल अलग है। प्रेमचंद (१८८०-१९३६) और अमरकांत (१९२५-२०१४) का जन्म समय अलग है, लेकिन उन दोनों का जन्म उत्तर प्रदेश का एक सामान्य परिवार में पैदा हुआ था। बचपन में ही उन दोनों की माता जी मृत्य हो गई। उन दोनों के पारिवारिक परिवेश लगभग का समान था। बचपन की संघर्षों ने उन दोनों लेखकों पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। इसके अलावा, प्रगति विचारों ने प्रेमचंद और अमरकांत को प्रभावित किया। सन १९२१ में भारतीय असहयोग आंदोलन के दौरान महात्मा गाँधी के सरकारी नौकरी छोड़ने के आह्वान पर प्रेमचंद ने स्कूल इंस्पेक्टर पद से त्यागपत्र दे दिया। उस स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के माध्यम से स्वतंत्रताकामी चेतना को पकड़ने की कोशिश की, उसमें अहम योगदान दिया। अमरकांत हाईस्कूल पढ़ते समय तब देश और समाज का परिवेश जटिल था। देश में गांधी जी और नेहरु जी के ब्रिटिश शासन के विरोध जुलूस हो रहा था। उन दिनों बलिया और उसके आसपास में किसान आंदोलन भी चल रहा था। सन १९४२ में अमरकांत ने स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने के कारण इनकी इंटरमीडिएट की पढ़ाई अधूरी रह गई। हाईस्कूल की परीक्षा के बाद अमरकांत कांग्रस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य बन गए। इसलिए, इन सब गतिविधियों ने उन दोनों के हृदय में प्रगति की आग प्रज्वलित कर दी।

प्रेमचंद की रचनाएँ लगभग १९०६ से १९३६ के बीच में लिखे हुए हैं। उनकी कृतियों ने इन तीस वर्षों के भारतीय जीवन का दस्तावेज किया है। क्योंकि प्रेमचंद का युग तो ब्रिटिश शासन में था। प्रेमचंद ने आम आदमी, किसान, नारी, अछूत आदि की दुःख-परिस्थिति की सहानुभूति करके रचनाएँ की। अमरकांत तो आज़ादी के बाद 'नई कहानी' दौर के कहानीकारों में से एक थे। स्वतंत्र होने के बाद भारतीय शहर, गाँव के जीवन बहुत बदल गए हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण किया है। अतः प्रेमचंद और अमरकांत प्रगतिवाद एवं यथार्थवाद के लेखक हैं, हालाँकि उन दोनों लेखक के देश का वातावरण और रचनात्मक काल अलग है। भारतीय समाज में जो बहुत सारी समस्याएँ थीं उनपर खूब लिखा, साथ ही उस दौर के सामाजिक हालातों की जटिलताओं को पकड़ा। उन दोनों की रचनाओं ने उस समय हिन्दी साहित्य का नया आयाम सामने रखा।

दूसरा, उन दोनों के कथा साहित्य की विषयवस्तु अलग है। प्रेमचंद और अमरकांत की अधिकतर कहानियों ने भारतीय निम्न-मध्यम वर्ग का चित्रण किया है। आम आदमी की सामाजिक व आर्थिक स्थिति प्रेमचंद के कथा साहित्य के बहुत दिलचस्प विषय रहे थे। उनके उपन्यासों और कहानियों में किसानों की चहल-पहल एवं ग्राम्य स्थिति हमेशा नज़र आती थी। प्रेमचंद ने भारत में ब्रिटिश के शासन दौर के समाजसुधार आंदोलनों, स्वाधीनता संग्राम तथा प्रगतिवादी आंदोलनों के सामाजिक प्रभावों का स्पष्ट दर्शाया है। उदाहरण के लिए, 'गोदन', 'कफ़न', 'कर्मभूमि', 'पूस की रात', 'आत्माराम', शतरंज के खिलाड़ी', 'दो बैलों की कथा', 'ईदगाह', 'ठाकुर का कुआँ' आदि कहानियाँ बहुत प्रतिनिधि हैं। उनमें शोषित, किसान, नारी, अनमेल विवाह, लगान, जाति भेद, पराधीनता, स्त्री-पुरुष समानता, पीड़ित, मज़दूरों की समस्याओं का चित्रण मिलता है।

नई कहानी के दौर में प्रेमचंद की परंपरा के लेखक अमरकांत ने न केवल कहानी विधा को समृद्ध किया अपितु आलोचनात्मक यथार्थवादी लेखन परंपरा को एक नई गति प्रदान की। उन्होंने उपन्यासों से कहीं अधिक और प्रभावी रूप से कहानियों के माध्यम से निम्नवर्ग और निम्न-मध्यवर्ग के जीवन को स्वतंत्र भारत में उसके वास्तविक गति से दर्शाया है। उनके लेखन में जीवन में मौजूद द्वंद्व अपनी पूरी वास्तविकता के साथ उजागर हुए हैं। जैसे 'दोपहर का भोजन', 'ज़िंदगी और जोंक', 'डिप्टी कलक्टरी', 'हत्यारे', 'मौत का नगर' आदि बहुत प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। उनकी लेखन भूमि में मुख्यतः बेरोजगारी, विभाजन, संत्रास, बनावटीपन, आर्थिक बदहाली, कुंठा, भ्रष्टाचार और मोहभंग आदि विषय आए हैं। स्वतंत्रता के पश्चात नए उभर रहे भारत की वास्तविक तस्वीर और उसमें कैद एक बड़े जनसमूह के जीवन कथन को प्रस्तुत करने से अमरकांत की कहानियाँ शोध का विषय बन जाती हैं। अमरकांत की अधिकांश कहानियों की तुलना प्रेमचंद की अधिकांश कहानियों से नहीं की जा सकतीं। हालाँकि उन दोनों के कथा साहित्य की विषयवस्तु अलग है। प्रेमचंद के राय साहब, घीसु माधव और अमरकांत के रजुआ, मूस-परबतिया, मुनरी आदि के विषय में पात्रों की कमज़ोरियों

ने पाठकों के मन में गहरा प्रभाव डाला है । उन दोनों की कहानियों ने उस सामाजिक विषमता का संत्रास उभरने की कोशिश की ।

तीसरा, कथा साहित्य में उन दोनों की रचना शिल्प एक साथ गूंज रहा है । प्रेमचंद ने हिंदी कथा साहित्य को एक सुदीर्घ यात्रा कराई है । इस लेखन यात्रा में उन्होंने अनेक भारतीय लेखकों पर प्रभाव डाला है । खा़सकर कहानीकार अमरकांत जी के लिए । प्रेमचंद के आलोचनात्मक यथार्थवादी शिल्प को अमरकांत जी ने भी अपने रचना संसार में केंद्रित किया । प्रेमचंद के रचना शिल्प पर शिवकुमार मिश्र ने चर्चा की -'हिंदी कहानी के उदय और विकास में प्रेमचंद ने कहानी विधा के स्वरूप और गठन पर कुछ प्रकाश डालें । कहानी के स्वरूप और गठन की इस सैद्धांतिक चर्चा से प्रेमचंद की अपनी कहानियों का घनिष्ठ संबंध है । वस्तुतः उपन्यास हो अथवा कहानी, उनकी अंतर्वस्तु की ठेठ भारतीय पहचान होने के बावजूद उनका जो बाहरी ढाँचा या रूप है, प्रेमचंद ने उसे पश्चिम के अपने अनेक समानधर्माओं से ही पाया है - वे एडगर पो हों, डिकेंस हों, तोल्सतोय हों, अनातोले फ्रांस हों, चेखव हों, मोपासां हों अथवा अन्य ।' प्रेमचंद विश्व में सर्वाधिक लोकप्रिय कथाकार थे । लेखन कार्य में प्रेमचंद ने उर्दू और हिंदी भाषा का प्रयोग किया । प्रेमचंद की भाषा का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है कि वह जनमानस का स्पर्श करती चलती है, सरल और सहज भी है । कथानक में जहाँ पात्रों के संवाद हैं वहाँ पात्रानुरूप तद्भव, देशज, विदेशी शब्दों का प्रयोग अधिक है । इसके अलावा, प्रेमचंद के कथा साहित्य की कथावस्तु बहुत सजीव और आकर्षक है । वे मुहावरे और लोकोक्तियाँ प्रायः प्रयोग करते थे । प्रेमचंद की शैली भावों का अनुगमन करती चलती है । साथ ही उसमें व्यंग्य का भी अच्छा पुट रहता है ।

यशपाल के अनुसार रचनात्मकता की दृष्टि से अमरकांत को गोर्की के समकक्ष मानते थे । अमरकांत ने अपने कथा साहित्य में प्रभावशाली ढंग से कथावस्तु का चयन किया है । इन रचनाओं के विविध कथावस्तु द्वारा अपने गहरा विचार दर्शाया है । उनके कथा साहित्य के पात्रों में जीवंत है, संवाद बड़े रोचक है, और प्रसंग तो आकृष्ट है । भाषा शैली बड़ी सरल एवं सहज है । उन्होंने संस्कृत, हिंदी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी आदि भाषा द्वारा अधिक रचनाएँ की । उनके साहित्य में बिंबात्मकता, सांकेतिकता, प्रतिकत्मकता, व्यंग्यात्मकता तथा आलंकारिता का प्रयोग बहुत स्वाभाविक था । विश्वनाथ त्रिपाठी ने अमरकांत की कहानी की प्रगतिशीलता के लक्षण पर चर्चा की -'अमरकांत का साहित्य-संसार एक तरह से जानवरों का बाड़ा है । उनके पात्र पायः पक्षुओं-पक्षियों की तरह चेष्टाएँ करते दीखते हैं । यह मानव-समाज का अमानवीय जंगल तंत्र है ।' क्योंकि उन्होंने अपनी कहनियों में तथाकथित मानव समाज में कुछ व्यक्ति को गधे,कुत्ते और बैल जैसे निरीह की कथा कही । उन्होंने वर्णन चित्रण करने में प्रतीक, फंतासी, स्वप्न कथा, जादुई यथार्थवाद सब उसी में प्रयोग किया । हम कह सकते हैं कि हिंदी कथा साहित्य में प्रेमचंद की परंपरा शिल्प को लेकर अमरकांत ने और आगे बढ़ाया है, लेकिन अमरकांत ने अपनी विशिष्ट रचनात्मक शैली भी बनाई ।

चौथा, उन दोनों के आलोचनात्मक यथार्थवाद का विचार लगभग बराबर है । प्रेमचंद और अमरकांत दोनों ने अपने लेखन में उस समय के समाज के निम्न-मध्यवर्गीय जीवन की स्थितियों का यथार्थ पूर्ण अंकन किया है । भारतीय हर परिवार, हर गाँव, हर शहर के सुख-दुःख दृश्य को उनके कथा साहित्य में दर्शाया किया जाता है । कथाकार के रूप में उन दोनों ने गंभीर दृष्टि से इस समज के विविध समस्याओं का चर्चा किया । साथ ही पाठकों के मन में सवाल लेते हुए कि इन समस्याओं के समाधान का तरीक़ा क्या है ? हमारे देश का रास्ता कहाँ है ? हमारे जीवन का उज्ज्वर भविष्य कहाँ है ? हालाँकि आदर्शोन्मुख यथार्थवाद प्रेमचंद के कथा साहित्य की मुख्य विशेषता है । उनके कथा साहित्य में आदर्श का जो वातावरण है वह एकदम से अवास्तविक नहीं है । आदर्शवादिता हमारे यथार्थ का ही हिस्सा है । प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में निश्चित उत्तर नहीं दिया, पर उनकी कहानियों ने पाठक के मन पर स्पश किया और उन्हें समाधान के रास्ते खोजने के लिए प्रेरित किया । पीढ़ी दर पीढ़ी भारतीय लोगों ने जागर होकर अपने देश को प्रेम किया ।

राजेंद्र यादव अमरकांत को अस्तित्ववादी कहानीकार मानते हैं । 'अमरकांत उन रचनाकारों में हैं जिनकी कहानियाँ न केवल कथ्य और शिल्प की दृष्टि से बेजोड़ हैं बल्कि जो हमारे समय का अपूर्ण ही सही प्रामाणिक

दस्तावेज़ हैं । हमारे विषमताग्रस्त सामाजिक वातावरण की तर्कहीनता, असुरक्षा, संत्रास का सर्वाधिक विश्वसनीय और मार्मिक चित्रण अमरकांत की कहानियों में मिलता है । यह चित्रण मार्मिकता के साथ साथ उसके नैतिक बोध को भी व्यंजित करता है ।' हम कह सकते हैं कि अमरकांत ने आलोचनात्मक यथार्थवाद की दृष्टि से रचना की । उनकी कहानी प्रेमचंद की कहानी जैसी कहानी के अंत में भी समस्या का कोई समाधान नहीं दिया । पर उन्होंने स्वतंत्र्योत्तर भारत के यथार्थ दृश्य पाठकों के मन में छापया । प्रेमचंद का आलोचनात्मक यथार्थवाद न सिर्फ़ अमरकांत को बल्कि अनेक लेखकों को प्रभावित हुआ है । उन दोनों के साहित्य का यथार्थवादी भावना अतीतकाल से आज तक बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है ।

निष्कर्ष :

प्रेमचंद हिंदी कथा साहित्य में सबसे सशक्त कहानीकार थे । अमरकांत ने प्रेमचंद की परवर्ती कहानियों और उपन्यासों की परंपरा का आगे विकास किया है । प्रेमचंद की प्रगतिशीलता, सृजनशीलता और कल्पनाशीलता का शिल्प अमरकांत की कहानियों में अपनाया है । हम कह सकते हैं कि अमरकांत जी प्रेमचंद की परंपरा के कहानीकार थे, जो २०-२१वीं शताब्दी में भारतीय साहित्य में महत्वपूर्ण प्रभाव डाले । प्रेमचंद के आलोचनात्मक यथार्थवाद के विकास में अमरकांत का जन्म हुआ । अमरकांत ने प्रेमचंद की उत्तम परंपराओं से सीखकर नए युग के संदर्भों में अपनी नई परंपरा को बढ़ाया । अतः इस दुनिया में अद्वितीय नई कहानीकार 'अमरकांत' बन गए ।

संदर्भ सूची :

१. सत्यकाम(१९९४), आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद, नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, भूमिका

२. विजय कुमार वैराटे(२००६), कथाकार अमरकांत (प्रथम संस्करण), कानपुर : अभय प्रकाशन, पृष्ठ-६३

३. वही, पृष्ठ-६९

४. सिंह पुष्पपाल(१९८६), समकालीन कहानी : रचना मुद्रा, नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ-१७

५. रविंद्र कालिया(२०१२), नया ज्ञानोदय, नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ-६

६. डॉ. निर्मल सिंघल (१९९९), नई कहानी और अमरकांत, नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-९८-९९

७. शिवकुमार मिश्र (२०१६), कहानीकार प्रेमचंद रचना दृष्टि और रचना शिल्प, नई दिल्लीः लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ-७

८. विश्वनाथ त्रिपाठी (२०१५), कुछ कहानियाँ कुछ विचार, नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-३५

९. वही, पृष्ठ-२९

दक्षिण एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया भाषा और संस्कृति विभाग
यूनान मिंजु विश्वविद्यालय, खुन मिंग, चीन -६५०५००
मोबाईल नंबर : +८६ १५२८८४९०७८४ (चीन)
ईमेल : ganluting_glt22@163.com

निर्मला पुतुल की कविताओं में पारिस्थितिक स्त्रीवादी चिंतन

सोनू कुमार ठाकुर

शोधार्थी,हिन्दी विभाग
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय
मोतिहारी, गाँधी परिसर बनकट, बिहार-८४५४०१
ईमेल- snuthakur@gmail.com
मो - ६२००३५२६१५

पारिस्थितिकी जीवविज्ञान और भूगोल की एक शाखा है जिसमें एक जीव का दूसरे जीवों के साथ पारस्परिक संबंधों का अध्ययन किया जाता है। चूँकि सभी जीव एक दूसरे पर आश्रित हैं और खाद्य श्रृंखला से बंधे हैं इसलिये सभी का अस्तित्व एक दूसरे पर निर्भर है। पारिस्थितिक स्त्रीवाद अंग्रेजी के इको फेमिनिज़्म का हिंदी अनुवाद है जिसमें स्त्री और पृथ्वी दोनों को एक साथ शोषित दिखाया गया है। स्त्रियाँ पितृसत्तात्मक सोच और रूढ़िवादी पुरुषों से शोषित है। वहीं पृथ्वी मुनाफाखोर मनुष्यों से। इसलिये दोनों का दुःख एक है। दोनों के क्रमशः उजड़ते जाने की पीड़ा को निर्मला पुतुल की कविताओं में रेखांकित किया गया है।

उत्तर बिहार के दरभंगा जिले में एक गांव हैं सिरुआ। उस गाँव में एक प्रथा है जिसमें शारदीय नवरात्र के ठीक बाद ग्राम देवी के प्रांगण में उस गाँव की सभी महिलायें दिनभर का निर्जला व्रत रखते हुए मिट्टी के बने बड़े आकार के चूल्हों में बड़े बड़े रोट पकाती है। सभी आगंतुक ब्राह्मणों और कुंवारी कन्याओं को भोजन करा लेने के बाद प्रसाद ग्रहण करती है। इस प्रक्रिया में इन महिलाओं को अपनी शारीरिक शुद्धता, पुरुषों की नजरों से अपने को बचाने के लिये घूँघट आदि का तो विशेष ध्यान रखना ही पड़ता है साथ ही साथ धार्मिक पवित्रता बनाये रखने के लिये छोटे बच्चों विशेषकर दुधमुँहों को इन सबसे दूर रखा जाता है। ऐसी मान्यता है कि इससे ग्राम देवता प्रसन्न रहते हैं और घर के सभी मर्द सुखी होते हैं। संतान प्राप्ति (विशेषकर बेटा) की इच्छा से भी नव-विवाहितायें इसमें भाग लेती है।

अगर ध्यान से देखे तो उस गाँव की इस परंपरा को निबाहने का पूरा भार महिलाओं के कंधों पर है। जहाँ चूल्हे चौके में कैद एक निरर्थक जिंदगी को थोड़े समय के लिये झूठी सार्थकता का एहसास कराया जाता है। आधुनिक भावबोध से विलग ये महिलायें इस तरह की अर्थहीन, निरर्थक, ब्रह्मणवाद की पोषक अमानवीय परंपरा को साल दर साल इसी तरह जिलाये रखती है। इस तरह की शुष्क और पिछड़ी मानसिकता से चालित सामंती परंपरा लगभग पूरे भारत में विभिन्न स्वरूपों में मौजूद है। जहाँ इस परंपरा की आड़ में स्त्रियों का मानसिक और शारीरिक शोषण सामाजिक मर्यादा के नाम पर होता ही रहता है।

निर्मला पुतुल की सभी कविताओं में इस बात को प्रमुखता से रेखांकित किया गया है कि धार्मिक रीति रिवाजों में जो लैंगिक भेदभाव और शोषण है वो स्त्रियों पर ही लागू होती है। स्त्रियाँ इसकी आसान शिकार हैं। कवि आदिवासी स्त्री के पक्ष में अपनी बात रखते हुए 'बिटिया मुर्मू के लिए' नामक कविता में कहती हैं -

'जबकि तुम्हारे हिस्से में
भूख और थकान के सिवा
सिवा एक बेहतर जिंदगी की उम्मीद के
शायद कुछ भी नहीं है ...
विडम्बना ही है -
कि ईश्वर पर सबसे ज्यादा कैसे करती हो विश्वास ... ?'

स्त्रियाँ अपने परिवेश और परंपरा जनित संस्कार से यही सीखती हैं कि उनका ईश्वर इन्हीं परंपराओं और

इसके क्रियाकलापों में मौजूद है । इसलिए वो इसके मूल में निहित दुःख और शोषण को दैवी प्रकोप मान चुपचाप सह लेती है । इस अन्याय का प्रतिकार नहीं कर पाती हैं । इस अवस्था को प्रसिद्ध समाजशास्त्री 'कृष्ण कुमार' ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'चूड़ी बाजार में लड़की' में 'समाजिकिकरण की प्रक्रिया' का नाम दिया है जिसमें एक लड़की को औरत में बदला जाता है (मर्दों के लिये हर तरह से सुलभ रहने वाली) । इसलिये कवि अपनी कविता में स्त्रियों की इस मनोदशा के पीछे जो सामाजिक सांस्कृतिक पहलू है उस पर क्रोध भरी खीज से भर उठती हैं । कवि की स्वाभाविक लालसा है कि स्त्रियों को भी पुरुषों की तरह समाज में बराबरी का हक मिले । उसे भी चुनने का अधिकार हो । जैसे की अपने लिये वर -

'उतनी दूर मत ब्याहना बाबा !' नामक कविता में कवि अपने पिता से मनुहार कर रही है -

'बाबा !
मुझे उतनी दूर मत ब्याहना
जहाँ मुझसे मिलने जाने की खातिर
घर की बकरियाँ बेचनी पड़े तुम्हें
मत ब्याहना उस देश में
जहाँ आदमी से ज्यादा
ईश्वर बसते हों
जंगल नदी पहाड़ नहीं हो जहाँ
वहाँ मत कर आना मेरा लगन'

प्रकृति से सीधे जुड़ाव के कारण आदिवासी स्त्रियाँ कहीं ज्यादा स्वच्छंद हैं, वो यहाँ वहाँ अपनी मर्जी से हाट-बाजार जा सकती हैं, खुली हवा में साँस ले सकती हैं । कारण की आदिवासी अर्थव्यवस्था में इनकी भागीदारी मुख्यधारा की गैर आदिवासी स्त्रियों से कहीं अधिक है । लेकिन शोषण का स्वरूप लगभग समान है ।

'पहाड़ी स्त्री' नामक कविता में कवि इसी बात को इस तरह दर्ज करती है -

'वह जो सर पे सूखी लकड़ियों का गट्ठर लादे
पहाड़ से उतर रही है
पहाड़ी स्त्री
अभी-अभी जाएगी बाजार
और बेचकर सारी लकड़ियाँ
बुझाएगी घर-भर के पेट की आग'

निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी स्त्री मुक्ति का जो आख्यान है उसमें अपने आदिवासीपन को जिसे जगह जगह कवि अपनी कविता में झारखंडीपन कहती है को बचा लेने की जिद नजर आती है । अपने स्थानीय परिवेश से, अपनी भाषा और संस्कृति से गहरे लगाव और प्रेम की जरूरत पर विशेष बल है यहाँ ।

'अपने चेहरे पर
संथाल परगना की माटी का रंग
भाषा में झारखंडीपन'

'ठंडी होती दिनचर्या में
जीवन की गर्माहट
मन का हरापन
भोलापन दिल का
अक्खड़पन, जुझारूपन भी'

'आओ, मिलकर बचायें' कविता की उपर्युक्त पंक्तियाँ सम्बोधन की कविता है जिसमें अपने जन समुदायों से कवि की भावपूर्ण अपील है जिसमें अपने जंगल, पहाड़, मैदान, गीत-संगीत, अपनी अलग विशिष्ट आदिवासी पहचान, अपनी संस्कृति और संस्कारों को बाहर के सांस्कृतिक हमलों से बचा लेने का बोध निहित है । निर्मला पुतुल के यहाँ प्रकृति प्रेम सीधे सीधे अलग से लक्षित की जाने वाली काव्य वस्तु नहीं है बल्कि प्रकृति पर पूरी तरह से निर्भर आदिवासियों के लिये यह जीवन-मरण का प्रश्न है । यही बात लगभग सभी आदिवासी कवियों के लिये कही जा सकती है जबकि

मुख्यधारा की हिन्दी कविता में प्रकृति प्रेम एक खास तरह की पर्यावरणीय चिंता से सिक्त है -वह नजर आती है । उसमें एक तरह का प्रखर नागरिक बोध दिखलाई पड़ता है जिसमें प्रकृति से अलगाव बोध तो स्पष्ट है ही , प्रकृति के विनाश से संबंधित चिंता का कारण भी अपने भविष्य के अस्तित्व के संकट से जुड़ा नजर आता है इसलिये इस तरह की प्रकृति प्रेम की चिंता से उपजी कविताओं में गहन संवेदना भी दिखलायी पड़ती है । ज्ञानेंद्रपति, केदारनाथ सिंह, नरेश सक्सेना, एकांत श्रीवास्तव, अनामिका आदि की कवितायें इसका सशक्त उदाहरण है ।

निर्मला पुतुल की कविताओं में अपने आदिवासी पहचान को लेकर विशेष सजगता नजर आती है । कवि के यहाँ अपने आदिवासी पहचान और सांस्कृतिक गौरव का बोध इतना गहरा है कि भाषा में गैर आदिवासियों की सांस्कृतिक श्रेष्ठता का छद्म से भरा चेहरा पहचानने में तनिक भी देर नहीं लगाती । एक बानगी देखिये 'चुड़का सोरेन से' नामक कविता से -

'मैंने देखा था चुड़का सोरेन !
तुम्हारे पिता को अकसर हड़िया पीकर
पिछवाड़े बँसबिट्टी के पास ओघड़ाए हुए
कठुवाई अँगुलियों से दोना-पत्तल-चटाई बुन
बाजार ले जाकर बेचते हुए तुम्हारी माँ को भी
हजार-हजार कामुक आँखों और सिपाहियों के पंजे झेलती'

जल-जंगल-जमीन के लिये लड़ रहे आदिवासियों की पीड़ा कवि की इस कविता में मार्मिकता के साथ दर्ज है । जहाँ प्रकृति संरक्षण का स्थानीय तरीका और इसके विविध उपाय इनके पूर्वजों की थाती थी । प्रकृति पर निर्भर रहने वाले, उनकी गोद में पलने-बढ़ने वाले, प्रकृति के महत्व को, उसकी सभी विशेषताओं को मुख्यधारा के लोगों से ज्यादा जानते और मानते थे । लेकिन विडम्बना यह है कि प्रकृति जो इनका घर है, वहाँ से इन्हें लगातार बेदखल किया जा रहा है । इनके प्राकृतिक आवास जंगल, पहाड़, नदियों पर से इनकी निर्भरता खत्म की जा रही है । ऐसा सायासपूर्वक कानून का सहारा लेते हुए झूठे पुनर्वास का सब्जबाग दिखाकर कॉपीरेट के साथ मिलकर तथाकथित लोकतांत्रिक सरकारें कर रही है । विडम्बना यह है कि इस अमानवीय अपराध की कहीं कोई सुनवाई नहीं होती है । कविता का शीर्षक है- 'अपने घर की तलाश में'

'अन्दर समेटे पूरा का पूरा घर
मैं बिखरी हूँ पूरे घर में
पर यह घर मेरा नहीं है
बरामदे पर खेलते बच्चे मेरे हैं
घर के बाहर लगी नेम-प्लेट मेरे पति की है
मैं धरती नहीं पूरी धरती होती है मेरे अन्दर
पर यह नहीं होती मेरे लिए
कहीं कोई घर नहीं होता मेरा
बल्कि मैं होती हूँ स्वंय एक घर
जहाँ रहते हैं लोग निर्लिप्त
गर्भ से लेकर बिस्तर तक के बीच
कई-कई रूपों में....
धरती के इस छोर से उस छोर तक
मुट्ठी भर सवाल लिये मैं
दौड़ती-हाँफती-भागती
तलाश रही हूँ सदियों से निरन्तर
अपनी जमीन, अपना घर
अपने होने का अर्थ !!'

यहाँ इस कविता में एक स्त्री का अपना वैयक्तिक दुःख तो है ही, सदियों से पितृसत्ता और समाज ने उसे पराया धन ही माना है । अपनी स्वतंत्र सत्ता, वैयक्तिक इयत्ता और सामूहिक पहचान के लिये स्त्रियाँ लगातार संघर्ष कर रही है । प्रतिक्रियावादी ताकतों और जड़ मान्यताओं से जूझ रही है । फिर भी घर के बाहर लगी नेम-प्लेट उसके पति की है । जो घर और बिस्तर के बीच निर्लिप्त ही रहते हैं । यह बात दिखने में भले ही साधारण है पर समाज में मौजूद सूक्ष्म लैंगिक भेदभाव को दर्शाती है । इस कविता में एक स्त्री जीवन की विडम्बना को रेखांकित किया गया है जहाँ उसके पास अपना कहने को कोई घर नहीं है । वह अपनी सम्पूर्ण सत्ता में लगातार एक जगह से दूसरी जगह विस्थापित होती रही है ।

आदिवासियों के लिये जंगल, पहाड़, नदियाँ कोई मन बहलाव का साधन नहीं है जहाँ मुख्यधारा के लोग पर्यटनवादी मानसिकता से छुट्टियाँ मनाने यदा-कदा चले जाते हैं । बल्कि ये उनका घर है । उनके अपने जीवन अस्तित्व से जुड़ा हुआ है । आदिवासी प्रकृति के इन्हीं अवयवों से जरूरत भर की चीजें लेते हैं और अपना गुजारा करते हैं । जितना लेते हैं उससे कहीं ज्यादा प्रकृति को वापस भी कर देते हैं । संरक्षण इनके संस्कार और जीवन व्यवहार में शामिल है । निर्मला पुतुल आदिवासियों की इन्हीं विशेषताओं को अपनी कविताओं में रेखांकित करती हैं । उनकी एक कविता है 'बाहामुनी'

'तुम्हारे हाथों बने पत्तल पर भरते हैं पेट हजारों
पर हजारों पत्तल भर नहीं पाते तुम्हारा पेट
कैसी विडम्बना है कि
जमीन पर बैठ बुनती हो चटाइयाँ
और पंखा बनाते टपकता है
तुम्हारे करियाये देह से टप..... टप..... पसीना......!'

इस कविता में कवि बाहामुनी के बहाने सभी आदिवासियों को संबोधित करते हुये उसे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक कर रही है । बाहामुनी पत्तल, चटाइयाँ, पंखा, दातुन, झाड़ू आदि जरूरत की चीजें बनाती है और स्थानीय बाजार में बेचती है । ये चीजें प्राकृतिक उत्पादों से निर्मित है । इसलिये बाजार में इसकी कीमत कम करके आँकी जाती है । जबकि प्लास्टिक के बदले ये सस्ती और टिकाऊ भी है । सबसे महत्वपूर्ण है इन उत्पादों का पर्यावरण अनुकूल और हितैषी होना । प्लास्टिक और तमाम इलेक्ट्रॉनिक

कचरों के बीच ये आसानी से विघटित हो जाती है जिससे पर्यावरण को कोई नुकसान भी नहीं होता है। लेकिन विडम्बना ये है कि इन उत्पादों को बनाने वाली बाहामुनी और उनके जैसे आदिवासी प्रकृति और पर्यावरण हितैषी होते हुये भी बाजार की प्रतिस्पर्धा और उसकी कुटिलता में फँसकर रह जाते हैं। उन्हें इसका उचित मूल्य भी नहीं मिलता और उनका जीवन स्तर सामान्य बना रहता है जबकि महानगरों में इनके बनाये उत्पादों की माँग बहुत ज्यादा है, बिचौलिये इसका फायदा उठा लेते हैं।

निर्मला पुतुल की कविताओं में दिल्लीहर जगह मौजूद है। दिल्लीमहज एक शहर नहीं है यह भारत की राजधानी है शासन-सत्ता की प्रतीक है। हर तरह की सुविधाओं का द्वार यहीं से खुलता है। दिल्लीवैभव और ताकत का प्रतीक है। यह जिसके पक्ष में होती है वह उत्तरोत्तर समृद्ध होता जाता है। आज के संदर्भ में देखे तो कॉपीरेट इसकी मिसाल है। दुर्भाग्य से यही दिल्लीअपनी नीतियों में, कथनी और करनी में आदिवासियों के खिलाफ है।

'तुम्हारी चीजें पहुँच जाती हैं दिल्ली
जबकि तुम्हारी दुनिया से बहुत दूर है अभी दुमका भी !'

निर्मला पुतुल की एक कविता है 'बूढ़ी पृथ्वी का दुःख'। भारतीय परंपरा में पृथ्वी को माँ का दर्जा दिया गया है। इसलिये इस कविता में कवि पृथ्वी को बूढ़ी कहकर संबोधित कर रही हैं जैसे की वह कोई बीमार बूढ़ी महिला हो। पृथ्वी गुमसुम है, उदास है, खून की उल्टियाँ कर रही है। इसके पेड़ कटने के भय से चीत्कार कर रहे हैं। इसकी नदियाँ रात के सन्नाटे में अँधेरे से मुँह ढाँप कर रोती हैं। यह संबोधन की कविता है और हमारे मनुष्य होने पर प्रश्नचिन्ह लगाती है।

इस कविता में पारिस्थितिक स्त्रीवादी चिंतन के तत्व को उसके अर्थ एवं अभिप्राय में चीन्हा जा सकता है।

'क्या तुमने कभी सुना है
सपनों में चमकती कुल्हाड़ियों के भय से
पेड़ों की चीत्कार ?'
' सुना है कभी
रात के सन्नाटे में अँधेरे से मुँह ढाँप
किस कदर रोती हैं नदियाँ'
'खून की उल्टियाँ करते
देखा है कभी हवा को, अपने घर के पिछवाड़े ?
थोड़ा-सा वक्त चुराकर बतियाया है कभी
कभी शिकायत न करनेवाली
गुमसुम बूढ़ी पृथ्वी से उसका दुःख ?
अगर नहीं, तो क्षमा करना !
मुझे तुम्हारे आदमी होने पर संदेह है !!

सोनू कुमार ठाकुर
शोधार्थी,हिन्दी विभाग
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय
मोतिहारी, गाँधी परिसर बनकट,
बिहार-८४५४०१
ईमेल- snuthakur@gmail.com
मो- ६२००३५२६१५

हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों में नारी का बदलता परिवेश

नाइराह कुरेशी

शोधार्थी
कश्मीर विश्वविद्यालय
जम्मू व कश्मीर

सारः

ईश्वर ने सृष्टि-निर्माण के लिए पुरुष एवं नारी की अनुपम सृष्टि की है । प्रकृति की इस अद्भुत क्रिया करुणा, ममता, त्याग का सशक्त रूप है तो पुरुष वीरता, शौर्य, बलवान, नेतृत्व का प्रबल रूप है । नारी माँ, पत्नी, बेटी, बहन आदि रूपों में समाकर लक्ष्मी, रमा, अन्नपूर्णा, जगदम्बा आदि नामों से अभिहित हुई है । समाज में नारी आदर तथा सम्मान की पात्र थी परंतु जैसे-जैसे समय बड़ता गया नारी की दशा में भी परिवर्तन होता गया । उसकी स्थिति दयनीय होती गई। उसे मानव न मानकर वस्तु मात्र समझा जाने लगा । इसीलिए वर्तमान संदर्भ में नारी की स्थिति को समझने के लिए अतीत में झांकना आवश्यक है ।

प्रागैतिहासिक युग का इतिहास अवशेषों, चित्रों तथा चिह्नों द्वारा प्राप्त जानकारी पर आधारित है । इसीलिए इससे प्राप्त जानकारी केवल अनुमान पर आधारित है जिससे यह ज्ञात होता है कि उस समय नारी माता के रूप में अभिहित होकर सम्पूर्ण सत्ता तथा शक्ति का केंद्र थी। कई इतिहासकारों ने ऋग्वेद से प्राप्त जानकारी के आधार पर वैदिक युग को नारी जीवन का 'स्वर्ण काल' माना है । आर्यों ने स्त्री को सम्मान देते हुए उसे आश्चर्यजनक शक्तियों का प्रतीक माना और देवी नाम से संबोधित भी किया । ऋग्वेद में आर्यों द्वारा पूजित इन देवियों की संख्या बीस के आस-पास मानी गई है जिन्हें 'ब्रह्म वादिनी' भी कहा जाता था । इंद्राणी, उर्वशी, सावित्री, सरस्वती, अदिति, सूर्या, प्रभात, भारती आदि ऐसी ही वैदिक ऋषि/देवियाँ हैं जिन्हें दिव्य शक्ति का प्रतीक माना गया ।

शोध पद्धतिः

आलोच्य शोध पत्र में विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। जिसमें प्राथमिक स्रोत हेतु हिन्दी साहित्य के आदिकाल से रीतिकाल तक के पद्य साहित्य अथवा आधुनिक काल के गद्य अथवा पद्य दोनों प्रकार के साहित्य का गहन अध्च्यन किया गया है तथा माध्यमिक स्रोत हेतु हिन्दी साहित्य पर आधारित अंग्रेज़ी की प्रमुख आलोचनात्मक पुस्तकों क अध्ययन किया गया है।

भूमिकाः

वैदिक युग में पितृसत्तात्मक समाज की प्रधानता थी । पुत्र जन्म के लिए 'पुंसवन संस्कार' किया जाता था परन्तु सुसंस्कृत परिवार विद्वान पुत्री के जन्म की भी आकांक्षा किया करते थे और उसको सुनिश्चित करने के लिए वह यज्ञ भी किया करते थे । ऐसी पुत्रियाँ अपने परिवार के लिए वैभव एवं गौरव का प्रतीक सिद्ध होती थीं । स्त्रियाँ को शिक्षा दी जाती थी, पुरुषों की तरह उनका भी उपनयन होता था । स्त्री विद्यार्थियाँ को दो वर्गों में बांटा गया था---ब्रह्मवादिनी और सद्योद्वाह । ब्रह्मवादिनी जीवन भर धर्मशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र का अध्ययन करने में कार्यरत थीं । वह पूर्वमिमांसा में भी विशेषज्ञता प्राप्त करने में समर्थ थीं । गार्गी, मैत्रेयी, अत्रेयी ऐसे ही कुछ विद्वान स्त्रियों के उदाहरण हैं। सद्योद्वाह १५ से १६ वर्ष की आयु तक ही धार्मिक विधाएँ तथा मंत्रों को सीख कर गृहस्थ जीवन व्याप्त करती थीं। एकपत्नीत्व की प्रथा थी । घर को संभालने का पूरा दायित्व स्त्री का था । विवाह से पहले वह अपने माता-पिता और विवाह के बाद अपने ससुराल की देख-रेख में रहती थी । पति के छोटे भाई-बहनों को संभालने की पूरी जिम्मेदारी भी उसकी थी । दहेज प्रथा विद्यमान थी । स्त्री को स्वयं अपना पति चुने का पूर्ण अधिकार था । पति की मृत्यु के बाद उसे दूसरी शादी उसके देवर के साथ की जाती थी ।

Freedom of choice in marriage was given[x,27,12]. Girls lived under the protection of their parents, and after their death,

of their brothers [ii, 17, 7, and iv, 5, 5]. Dowry at marriage was usual [I, 109, 2]. The Rigvedic Marriage Hymn, x,85, shows that the bride after marriage was conveyed from the house of father to that of her husband and that in her new home, she had an honored place as mistress with authority over her aged father-in-law, mother-in-law, her husband's brothers and sisters. There is a reference [x, 40, 2] to the widow married to the brother of her husband who died without issue (Mookerji 72-73).

पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने में निपुण थीं। उन्हें ललित कलाएँ तथा काव्य रचना भी सिखाई जाती थीं। अल्टेकर के अनुसार ?ग्वेद के दसवें मण्डल की ३९ तथा ४० सूक्तियों की रचना लोपामुद्रा, विश्ववरा, सिक्ता निवारी और घोषा जैसी बुद्धिमान कवयित्रियाँ ने की हैं। 'Lopamudra, Visvara, Sikata Nivavari and Ghosha are undoubtedly the authors of the Rigveda 1.179, V.28.VIII. 91, IX. 81.11-20, and X.39, and 40 respectively' (Altekar 12).

हिन्दी साहित्य का वीर काव्य केवल वीरों के लिए नहीं अपितु सुंदर नारियों की संहार लीला को दर्शाने के लिए लिखा गया। वीर काव्य में नारी के दो रूपों का स्पष्ट चित्रण मिलता है- वीर एवं श्रृंगारी रूप। युद्ध-वर्ण सुनकर वह भयभीत नहीं होती,पति की गौरवमयी मृत्यु होने पर कामिनी शोक नहीं मनाती अपितु उसे अपना स्वाभाग्य समझकर उसे अपने प्रताप एवं शौर्य का उदाहरण देकर समाज में अपने विशाल एवं गौरवम्य सत्ता का उदाहरण प्रस्तुत करती है। वीर काव्य में नारी महान,क्षत्राणी,पवित्रता एवं कल्याण का प्रतीक रही है।

वीरकाव्य में कवियों ने साहित्य की सृजना अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में की। यह रासो काव्य मूलतःआश्रयदाताओं की प्रशंसा का काव्य है जिसमें प्रेम एवं युद्धों का वर्णन है। पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो, बीसलदेव रासो तथा खुम्माण रासो आदि रासो ग्रंथों में नारी के सौन्दर्य रूप, गुणों, पतिव्रत्य तथा उनके सत्ती स्वरूप का बड़ा मनोहारी चित्रण है परन्तु कहीं-कहीं इन नारियों के नारी-जीवन की करूणा का भी चित्रण हुआ है। यहाँ तककि भूषण भी जो श्रृंगार की ध्वनि में वीरतत्व का सिंहनाद सुनाते थे वह भी नारी को विलासता से अधिक किसी ओर रूप में न देख सके।

'बीसलदेव रासो' की नायिका राजमती का माना है कि ईश्वर चाहे जितने मनुष्य बनाए पर किसी को स्त्री न बनाए -

अस्त्री जनम काई दीयउ से महेश,
अवर जनम थारइ धणा से नरेश।
भक्ती दाष विजोरडी
तइतउ काइ सिरजो उलगाणा की नारि ?

हिन्दी साहित्य में संत-काव्य विराग,तप-तपस्या,त्याग,सदाचार जैसी भावनाओं को लेकर समृद्ध हुआ। ईश्वर को पति मानकर और स्वयं पत्नी के ह्रदय के अनुराग, कोमल भावनाओं से उसकी उपासना करके नारी को कामिनी, वासना की छाया, पतनकारिणी,माया का शस्त्र,अविद्या का प्रतीक,व्याभिचारिनी मानकर उसकी भर्त्सना भी की। संत-काव्य में आदर्श नारी केवल पतिव्रता को ही बताया गया है और पतिव्रता शब्द को दो विभिन्न अर्थों में अभिहित किया गया हैं - एक लौकिक पतिव्रता, जो सामान्य स्त्री है और अपने पति-धर्म एवं परिवार धर्म का पालन करती है और दूसरी अलौलिक पतिव्रत्ता जो ईश्वर से निश्छल भाव से ह्रदय की कोमल अनुभूतियों से उसकी उपासना करती है। परन्तु संतों ने नारी को अविद्या का प्रतीक और मोह-माया का घड़ा मानकर उसकी भर्त्सना भी की। दादूदयाल ने नारी को नागिन बताकर उसकी निन्दा की। सुन्दरदास ने केवल नारी शरीर को सुन्दर बता कर उसकी तुल सघन बन से की है-

कामिनी की देह मानौ कहिए सघन वन
उहाँ कोउ जाइअ सो तौ भूलि के परतु है।
(पाण्डे,पृ ८४)

निर्गुण कवयित्रियों ने तो नारी निन्दा पर चुपी साधी है। 'पार्वती ने चित्त को कामिनी के पास रखने का निषेध किया है¬-

धन जोबन की करै न आस,चित्त न रखै कामिनी
पास'(पाण्डे,पृ ८४)

सूफी-कवियों ने अपने काव्य में तत्कालीन नारी-स्थिति तथा नारी-भावना को दर्शाने के लिए अनेक नारी-विषयक उक्तियों का प्रयोग किया। यह उक्तियाँ हीं उनके विचारों का वाहक है। रत्नसेन पद्मावती के रूप का चित्रण सुनकर उस पर मंत्र-मुग्ध हो जाता है और उसे प्राप्त करने के लिए सिंहल द्वीप चला जाता है। नागमती,उसकी विवाहिता उसे राम और सीता का उदाहरण देकर उसे साथ ले चलने का अनुरोध करती है पर रत्नसेन उसके अनुरोध को ठुकरा कर सम्पूर्ण नारी-जाति को बुद्धिहीन कहकर चला जाता है।

तुम्ह तिरिआ मतिहीन तुम्हारी,मुरुख सो जो मतै घर नारी (पाण्डे,पृ १०५)

नारी को भोग-विलास की वस्तु मानकर उसे योगियों के लिए बाधा माना गया है ।

जोगिन्ह कहा भोग सों काजू चहे न मेहरी चहे न राजू (पाण्डे,पृ १०४)

रणोद्यत बादल नारी को अबला तथा बुद्धिहीन बताते हैं । उसे अचेतन भूमि मान कर, तिरिया और भूमि दोनों को ही खड्ग की अनुगामिनी बताया है ।

तिरिया पुहूमि खरग की चेरी । जोतै खरग होद तहि फेरी (पाण्डे,पृ १०४)

मध्ययुगीन काव्य में जहाँ संतों ने निराकार एवं निर्गुण ब्रह्म को कौतूहल का विषय बनाया वहीं सूफियों ने लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम का एकीकरण कर हृदय को स्पर्श किया किन्तु सामाजिक विषमता, धार्मिक विश्रृंखलता एवं नैतिक पतन के मध्य रामकवियों ने सगुण ब्रह्म के लोक-रक्षक रूप को अवतरित किया । तत्कालीन समाज में फैली अनैतिकता,कम्पित होती हुई मानसिक्ता ने इन उदात्त आदर्शों को जन्म दिया । राम-काव्य के कवियों ने राम को मर्यादा पुरषोत्तम एवं लोक-संग्रहकारी रूप के आलोक में निर्देशित किया। रामकाव्य के प्रतिनिधि कवि तुलसी का विश्लेषण से ही रामकाव्य में नारी की अवधारणा स्पष्ट हो सकेगी। तुलसीदास की नारी-भावना आदर,श्रद्धा एवं सम्मान से ओत-प्रोत है । पतिव्रता नारी को गृहस्थ-जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण माना । उन्होंने अपने काव्य में नारी के सत्-चरित्रों के मनोहारी-रूपों का अंकन करने के साथ-साथ उसकी निन्दा भी है और निन्दा वहीं पर हुई है जहाँ उसने धर्म-विरोधी आचरण ग्रहण किया हुआ है । तुलसीदास ने नारी जाति के लिए बहुत आदर-भाव प्रकट किया है। पार्वती, अनुसूया, कौशल्या, सीता, ग्रामवधू आदि की चरित्ररेखा पवित्र और धर्मपूर्ण विचारों से निर्मित हुई हैं । कुछ आलोचकों का कथन है कि तुलसीदास ने नारी जाति की निन्दा की और ढोल गंवार की कोटि में रक्खा । परन्तु आदि मानस पर निष्पक्ष दृष्टि डाली जाय तो विदित होगा कि नारी के प्रति भर्त्सना के ऐसे प्रमाण उसी समय उपस्थित किए गए जबकि नारी ने धर्म विरोधी आचरण किए । (वर्मा,पृ.४९४)

शुक्ल जी के मतानुसार तुलसीदास ने नारी के उस रूप की भर्त्सना की जो तप एवं त्याग में बाधा बनी । माताप्रसाद गुप्त ने तुलसीदास की अनुदारता को ही उनकी नारी निन्दा का कारण माना । मिश्रबंधुओं ने तुलसीदास को नारी-निन्दक माना पर सीता,कौशल्य आदि जैसे चरित्रों को पवित्र बताया जिसका कारण उनका राम से संबंध है । शेष नारियों को सहज,जड़,अपावन तथा स्वतंत्र होने के अयोग्य माना है । कई साहित्यकारों का मानना है कि तुलसीदास के नारी निनदा का कारण उनका नारी सम्पर्क का अभाव है ।

केशव ने रामचंद्रिका में उसी नारी को श्रेष्ठ माना जो पतिव्रता है । अपने जीवन युग में नारी को विलासता का कारण बता कर अपनी और पराई नारी के त्याग का निर्देश दिया । 'उन्होंने भी पातिव्रत पर अधिक बल दिया तथा स्त्री को ही भोग का कारण बता कर अपनी एवं पराई नारी के परित्याग का निर्देश किया है ' (पाण्डे,१२०) तुलसी के युग में नारी आदर तथा सम्मान से वंचित रही । उसका जीवन ओरों के लिए बलिदान देने में ही व्यतीत होता है । वह चारों ओर से बंदिनी थी । शिक्षा और ज्ञान से वंचित नारी मूर्ख समझी जाती थी ।

कृषण-काव्य में सूरदास नारी-निन्दा की ओर अग्रसर रहे हैं । कवि नारी स्वभाव को नागिन विष के समान समझते है । उसे हृदय-हीन तथा कठोर बताया गया है । सुकदेव कह्यों सुनौ हौ राव,नारी नागिन एक सुभाव ।

नागिन के काटे विष होइ,नारी चितवत नर रहै मोह ?

स्वयं कृष्ण दान-लीला में नारी के प्रति हीन भावना को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि नारी और बालक को अधिक सिर नहीं चढ़ाना चाहिए ।

कबहूँ बालक मुँह न दीजियौ,मुँह न दीजियौ नारी ।
जोई मन करै,सोइ करि डारै,मूड़ चढ़त हैं भारी ।।

नारी को उन्होंने माया,मिथ्या ,गहिंत का प्रतीक माना है परन्तु उपास्य रूप में कृष्ण के साथ रास इनका काम्य रहा है । वास्तव में कृष्ण भक्त कवियों को नारी के दो रूप मान्य है । एक रूप सामान्य रूप है जिसमें वह लौकिक नारी है और माया का प्रतीक है जिसमें वह कुलमर्यादा और बंधनों का अनुसरण करने पर विवश है । दूसरा रूप विशेष रूप है जो गोपियों का है जो अलौकिक नारी को दर्शाती हैं । ' विशेष रूप गोपियों का है,जो पार्वत्य सरिता के समान अप्रतिहत वेग वाली है । मार्यादा के कगारे, लोक-कानि और कुल-कानि के तटीय वृक्ष कृष्ण-प्रेम की प्रचण्डता के समक्ष नष्ट हो जाते हैं । ' (पाण्डे,पृ.१४६

रीति-काव्य में नारी कवि समस्त भावनाओं का केंद्र रही है । रीतिकाल के कवि अपनी प्रतिभा,कल्पना अथवा अपनी सम्पूर्ण दृष्टि नारी-चित्रण में लगा देते थे जिससे नारी-जीवन के महत्तवपूर्ण पक्षों का परित्याग हुआ ।

सुकुमारता और कमनीयता ही उसका गुण मान गया । 'श्रृंगार रसमयी क्रीड़ा करना, नित नूतन प्रसाधन कर पुरुष को विमोहित करना ही उसका एकमात्र कर्तव्य है ।'(पाण्डे, पृ.१६३) रीतिकाव्य में नारी कवि की समस्त भावनाओं की केंद्र है जिसमें केवल उन्हें नारी का कामिनी रूप ही काम्य है । नारी के विमोहक सौंदर्य का अंकन, उसके मनोविज्ञान का निरूपण,श्रृंगार-सज्जा का अदभुत वर्णन ही कवि का कार्य रहा है । 'नारी के रूप-चित्रण में उनकी सूक्ष्मदर्शिनी कल्पना, वर्णनात्मक प्रतिमा और रसपूर्ण दृष्टि उसके शरीर की मांसलता और कमनीयता पर ही फिसल गई । उसके अभ्यंतर तक पहुँचने में उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली ।' (पृ १६१,पाण्डे)

आधुनिक-काल में नवीनचेतना का विकास हुआ। अनेक धर्म-सुधार आन्दोलनों का जन्म हुआ जिनका मुख्य उद्देश्य था नारी जाति का उद्धार करना । स्वामी दयानन्द सरस्वती,राजा राममोहन राय, केश्वचंद्र सेन,एनीबेसेण्ट जैसे धर्म-सुधारकों ने सती-प्रथा, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, देवदासी प्रथा जैसी सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों पर कड़ा प्रहार किया ।

भारतेन्दु स्त्री-शिक्षा के समर्थक थे इसीलिए उन्होंने 'बाल-बोधिनी'पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया । वह स्त्री शिक्षा को समाज की उन्नति के लिए आवश्यक मानते थे । उनका मानना था कि जिस प्रकार अंग्रेज़ स्त्रियाँ पढ़ि-लिखी होती हैं,बच्चों को शिक्षा देती है,अपने घर,समाज तथा देश की संपति-विपति को समझती है । वह अपना सम्पूर्ण जीवन घर की दासी तथा कलह में नहीं व्यर्थ नहीं करती । यह परिकल्पना १९ वीं शताब्दी के नवजागरण का प्रमुख आयाम है । 'कवि वचन सुधा' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने नारी प्रगति को एक नई दशा प्रधान की और स्त्री-पुरुष समानता पर विशेष बल भी दिया जिसकी पंक्ति इस प्रकार है

'खल गगन सो सज्जन दुखि मति होंहि, हरि पदमति रहै
अपधर्म छुटें,स्वत्व निज भारत गहे,कर दुख बहै ?
बुध तजहि मत्सर,नारि नर सम होहि,जग आनंद लैह,
तज ग्राम कविता सुकवि जनकी,अमृत बानी सब कहै?
(शम्भूनाथ,पृ ९६)

भारतेन्दु ने अपने नाटकों के माध्यम से भी नारी शक्ति को सिद्ध किया । नील देवी नाटक में एक ऐसी नारी को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है जो पतिव्रता है ,धर्म का पालन करने वाली है और स्त्री क्षमता को स्वर देने वाली आदर्श नारी है । वैदिकी हिंस हिंसा न भवति में भी भारतेंदु ने हिन्दी प्रदेश की जनता के बीच विधवा-विवाह के प्रचार का प्रयास किया ।

बालकृष्ण भट्ट ने अपने निबंध 'हमारी ललनाओं की शोचनीय दशा' में स्त्रियों की दुर्दशा का प्रमुख कारण 'हिन्दुस्तान की परिवर्तन विमुखता' को माना है । आधुनिकता तो पनप रही थी पर केवल पुरुष ही इसका लाभ उठाने में स्मर्थ थे । स्त्रियों का अशिक्षित होना था तथा घर की चार दीवारियों में केद होना ही मूल कारण है । बालकृष्ण भट्ट निबंध में लिखते हैं

श्रीनिवासदास ने भी अपने नाटकों में रणधीर प्रेम मोहिनी और संयोगिता स्वयंवर में प्रेम-विवाह का समर्थन इस उद्देश्य से किया है ताकि स्त्री की रुचि को महत्त्व दिया जाए ।

द्विवेदी-युग में मानवतावादी विचारधारा का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पड़ा । इस युग तक आते-आते नारी उच्च भावना का प्रतीक बन गई थी । राजनीतिक कारणों से स्त्री पुरुष के समान अधिकारों को प्राप्त करने में सक्षम हो रही थी । वह पुरुषों की भाँति स्वत्रंता आन्दोलन में भाग ले रही थी । द्विवेदी-युग के रचनाकारों ने नारी के महान रूप का चित्रण करते हुए स्त्री-शिक्षा,स्त्री श्रम, उसके अधिकार,स्त्री-पुरुष समानता आदि को वाणी दी । द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका में भी स्त्री शिक्षा का समर्थन करते हुए 'स्त्री-शिक्षा के विरोधी कुतर्कों का खण्डन'नामक निबंध में लिखा-

'पढ़ने लिखने में स्वयं कोई बात ऐसी नहीं जिससे अनर्थ हो सके । अनर्थ का बीज इसमें हरगिज नहीं । अनर्थ पुरुषों से भी होते हैं,अपढ़ों ओर पढ़े लिखे दोनों से । अनर्थ दुराचार और पापाचार के कारण और ही होते हैं और वे व्यक्ति-विशेष का चाल-चलन देखकर जाने भी जाते हैं । अतएव स्त्रियों को अवश्य पढ़ना चाहिए ।'(चतुर्वेदी,पृ ४५)

मैथिलीशरण गुप्त ने समाज की उन्नति के लिए स्त्री-शिक्षा ,स्त्री स्वतंत्रता, समानता और न्याय को आवश्यक माना । उन्होंने अपने साहित्य में स्त्री पात्रों में युगानुरूप परिवर्तन कर नारी का आदर्श रूप की संकल्पना की ।

छायावाद पर सांस्कृतिक चेतना का प्रभाव प्रखर रूप से पड़ा । सांस्कृतिक नवजागरण ने समाज की युगीन व्याख्या की और नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा की । जिसके फलस्वरूप छायावादी रचनाकारों ने स्त्री-शिक्षा,विधवा-विवाह,नारी मुक्ति तथा अन्य स्त्री संबंधी समसयाओं को गंभीरता से दर्शाया । निराला ने अपने काव्य में स्त्री की विवश्ता,उसकी दयनीय दशा,वैषम्यों तथा कुरीतियों का जमकर विरोध किया । वह उच्च वर्ग की नारी शिक्षा के साथ-साथ निम्न वर्ग की नारी शिक्षा के समर्थक थे । वह लिखते हैं

'जो संपन्न हैं,जिन्हें दोनो वक्त मजे से भोजन मिल जाता है,वे भी बालिकाओं की शिक्षा की ओर ध्यान नहीं देते,बल्कि उच्च स्वर से यही घोषणा करते हैं कि लड़कियों को शिक्षा देना पाप है, वे बिगड़ जाती हैं। पीछे माता-पिता को समाज में रहने लायक भी नहीं रखती '(चतुर्वेदी,पृ १७०)
पंत भी स्त्री के परम्परागत रूप का निषेध करते हैं-

योनि नहीं है रे वह भी मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो,वह रहे न नर पर अवसित

प्रेमचंद ने अपने साहित्य में चित्रित नारी को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है एक वर्ग में नारी प्रताडित है, दूसरे वर्ग में नारी स्वाभिमानिनी एवं विद्रोहणी बनी जो सामाजिक कुरीतियों व शोषण के विरुद्ध संघर्ष करती है पर यह संघर्ष अपनी चर्म सीमा तक नहीं पहुँच पाता तथा तीसरे वर्ग नारियों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं रखता। अतः प्रेमचंद युग में नारी का मानसिक विकास हुआ।

प्रेमचंदोत्तर युग के साहित्य में नारियों का अहंवाद प्रबुद्ध है,विसर्जन की वृति प्रबल रही और उनका चरित्र आदर्शों की भाव भूमि पर आधारित रहा। इस अवधि में मार्क्सवादी और मनोविशलेषण विचारधारा का प्रभाव पड़ा। नारी पर होने वाले अत्यचार एवं शोषण का तीव्र विरोध हुआ। धीरे-धीरे नारी पुरुषों के समान सार्वजनिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने लगी। आज की नारी तीन श्रेणियों में विभक्त है-उच्च वर्ग,मध्य वर्ग तथ निम्न वर्ग। उच्च वर्ग की नारी शिक्षित है ,आर्थिक रूप से स्वतंत्र है, उच्च पदों पर कार्यरत है ,पुरुष वर्चस्व को त्याग चुकी है। मध्य वर्ग की नारी जो शिक्षित है, आर्थिक स्वतंत्र के लिए प्रयास कर रही है,वह पुरूष वर्चस्व को ढोती है तथा मूलभूत अधिकारों को भाग्य मानकर संतुष्ट है। निम्न वर्ग की नारी अशिक्षित है जो परिश्रम करके घर के आर्थिक स्वतंत्रता में सहभागिता करती है फिर भी दयनीय जीवन जीने पर विवश है।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि आधुनिकता एक संकल्पना है,विचारधारा है जिसके परिनामस्वरुप मनुष्य अपने उज्जवल भविष्य की कामना करते हैं। आधुनिकता के परिणामस्वरूप ही सामाजिक रूढ़ियों तथा परम्पाओं का धमन हुआ और स्त्री की दशा को सुधारने हेतु प्रेरित किया।

सन्दर्भ ग्रंथ सूचीः

१.Mookerji,Radha Kumud.Hindi Civilization,Stephen Austin & sons, Hertford, 1936

2.Altekar,(Dr.)A.S.The Position of Women in Hindu Civilisation, Banaras Hindu University, 1938

३.पाण्डेय, (डॉ.)उषा.मध्यययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना,हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, १९५९

४.वर्मा, (डॉ.)राम कुमार.हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामनारायण लाल प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता, इलाहाबाद, २०१०

५.कौर, (डॉ.) अरविन्द.महादेवी वर्मा के साहित्य में स्त्री छवि, संजय प्रकाशन, नयी दिल्ली, २०१६

६.शम्भूनाथ (प्रो.). भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण, प्रकाशन संसथान, नयी दिल्ली, २००९

७.चतुर्वेदी, जगदीश्वर.स्त्रीवादी साहित्य विमर्स, अनामिका प्रकाशन, नयी दिल्ली, २०१८

शोधार्थी
कश्मीर विश्वविद्यालय
जम्मू व कश्मीर

स्त्री अस्मिता संघर्ष और जिजीविषा का सशक्त रूप-छिन्नमस्ता

सुशीला बाई

शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्लीविश्वविद्यालय, दिल्ली-११०००७
सम्पर्कः ९५६०३१८६३९
ईमेल - meenadd56@gmail.com

शोध सारः प्रभा खेतान बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक की बहुचर्चित उपन्यास लेखिका है। आज हमारा युगबोध बदल गया है, जीवन पद्धतियाँ बदल गयी है। इसलिए स्त्री-पुरुष संबंधों में समीकरण की तलाश है। हिंदी साहित्य के आरम्भिक काल की रचनाओं में स्त्री को केवल विलासिता का पर्याय माना गया है। लेकिन आधुनिक काल में हिंदी साहित्य में नारी-लेखन आने के बाद नारी साहित्य का विषय बना। स्त्री सशक्तिकरण का सबसे बुलन्द नारा है साहित्य में स्त्री अस्मिता का प्रभाव। आधुनिक युग के उपन्यासों में दिखाई देने वाली एक नयी समस्या है- अस्मिता का बोध। अस्मिता माने अपनी सत्ता की पहचान। स्त्री-विमर्श की प्रखर चिन्तक और उपन्यासकार प्रभा खेतान का चर्चित उपन्यास है 'छिन्नमस्ता' इस उपन्यास में एक ऐसी स्त्री का जीवन संघर्ष है जो पुरुष-प्रधान समाज में पुरुषों के वर्चस्व के विरूद्ध अपनी अलग पहचान और जमीन बनाना चाहती है। पुरुष ने मानसिक और शारीरिक इन दोनों स्तरों पर स्त्री का निरन्तर शोषण किया है। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास की नायिका प्रिया इन दोनों मोर्चों पर पुरुष के शोषण से मुक्त होना चाहती है। प्रभा खेतान की नायिका प्रिया अपने आत्मविश्वास और परिश्रम के कारण वह समाज में अपनी पहचान बनाने में सफल होती है। आत्मनिणन्य और नए संकल्पों से निर्मित यह नारी पात्र नये नारीवाद का एक प्रतीक है। इस उपन्यास के सभी स्त्री पात्र स्त्री अस्मिता के अटूट उदाहरण है।

बीज शब्दः अस्तित्व, अस्मिता, स्त्री अस्मिता, स्त्री, विद्रोह, संघर्ष, पितृसत्ता, अधिकार, स्वतंत्रता, आत्मबोध, स्वावलम्बी, मुक्ति, प्रभा खेतान।

मूल आलेख : 'अस्मिता' शब्द 'स्व' की पहचान अथवा 'अपने अस्तित्व की पहचान' के अर्थ में जाना जाता है। उपनिषदों में 'आत्मने विद्धि' अर्थात् 'अपने को जानों' की बात कही गई हैं तथा श्रीमद्भगवद् गीता भी आत्मज्ञान को सबसे महत्त्वपूर्ण मानती है। कार्ल यॉस्पर्स का कथन है ''अस्तित्व कोई विचार नहीं, बल्कि अनुभूति का सर्वाधिक ठोस रूप है। इसका रूप सूक्ष्म विचारों की तरह निराकार नहीं होता। विश्व में अपने को असीम सत्ता के रूप में जानना, अपने अस्तित्व को अतिक्रांत कर हमें एक ऐसी सत्ता की ओर जागरूक बनाना है, जो सृजना की संभावनाओं, अर्थ और आशा से भरी है।''१

स्त्री अस्मिता से अभिप्राय स्त्री के 'स्व' के अस्तित्व या उसकी पहचान से है। मनुष्य अपने अस्तित्व की पहचान लिंग, जाति, समाज, धर्म, देश आदि के आधार पर करता है। पुरुष से शारीरिक स्तर पर भिन्न स्त्री भी एक सम्पूर्ण मानव है, जो अपनी आंतरिकता, वैयक्तिकता तथा स्वतंत्रता के द्वारा जीवन के उच्चतम सोपानों को साधकर अपने अस्तित्व की पहचान बनाती रही है। मातृसत्ता प्रधान युग में यह देखा जा सकता है, किन्तु वैदिक युग के पश्चात् शनैः शनैः नारी के अस्तित्व की पहचान खत्म होती चली गई और वह मानव के रूप में अस्वीकृत हो वस्तु अथवा भोग्या के रूप में ही स्वीकृत हो गई। स्त्री वस्तु नहीं है, वह भोग्या नहीं है, वह मात्र पुरुष के संबंधों के आधार पर संबोधित की जाने वाली चीज़ें नहीं है, वह पुरुष की संपत्ति ओर उसके सम्मान की प्रतीक हैं वह भी एक मानव है, उसकी भी अपनी अस्मिता है। यह आधुनिक काल में देखा जा सकता है।

स्त्रियों का अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी पितृसत्तात्मक व्यवस्था है। पितृसत्ता

अगर स्त्रियों को पुरुषों के अधीन रखने के लिए तमाम तरह के बंधनों में जकड़ देने का नाम है तो स्त्री-अस्मिता उन बंधनों से मुक्त होने के लिए विद्रोह करने और स्त्री-पुरुष की समानता के लिए संघर्ष करने का नाम है। स्त्री अस्मिता इस अर्थ में विशिष्ट है क्योंकि वह अपनी मुक्ति को जितना नैतिक दायित्व मानती है उतना ही वैचारिक और राजनीतिक भी मानती है। मनीषा कुलश्रेष्ठ कहती हैं- ''स्त्री-मुक्ति का सवाल अपने खुद के लिए निर्णय लेने से लेकर मनुष्य के रूप में आजादी से जुड़ा प्रश्न है। स्त्री-मुक्ति सड़े-गले स्त्री-विरोधी, पितृसत्तात्मक, ब्राह्मणवादी, सामन्ती मूल्यों के प्रति विद्रोह भी है।''२

'छिन्नमस्ता' (१९९३) प्रभा खेतान का तीसरा एवं बहुचर्चित उपन्यास है, जो स्त्री की उत्पीड़न एवं स्वावलंबन की कहानी है। आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया यह उपन्यास समकालीन हिंदी उपन्यास जगत् में विलक्षण है। इस उपन्यास में प्रभाजी ने प्रिया, नीना, जुड़ी, कस्तूरीदेवी, दाई माँ, तिलोतमा, सरोज आदि नारी पात्रों को लेकर उसके कथानक को पूर्ण आकार दिया है। 'छिन्नमस्ता' की नायिका प्रिया की शादी से पूर्व की कहानी प्रभाजी की खुद की कहानी है। उच्चवर्गीय मारवाड़ी परिवार में जन्मी प्रिया का बचपन उपेक्षित, कुंठित एवं भयभीत सहमी हुई लड़की का बचपन है। बचपन से ही प्रिया के जीवन में यातनाओं का दौर शुरू हो गया। हर समय, हर पल एवं हर राह पर सताई जाने वाली प्रिया के शारीरिक शोषण की कहानी उसके परिवार से ही शुरू होती है। प्रिया अपने ही घर में अपने बड़े भाई की वासना का शिकार होती है। भाई द्वारा अस्मत खोई बहन का वर्णन करने वाली प्रभा खेतान पहली लेखिका है। प्रभा खेतान कहती है-''सवाल उठता है कि स्त्री जब योन उत्पीड़न पर कुछ कहना चाहती है तो पुरुष व्यवस्था उसका विरोध क्यों करती है? व्यवस्था इतनी आतंकित क्यों होती है।''३ वह अपने भाई द्वारा किए गए अपराध के बारे में किसी से कुछ नहीं कहती है क्योंकि दाई माँ उससे कहती है-''सुन बिटिया! हमारा कहा मान और जिंदगी में ई सब बात किसी से न कहियों। आपन पति परमेसर से भी नहीं।''४

प्रिया अपनी बची जिन्दगी अपनी इच्छानुरूप जीने के लिए और सामाजिक बन्धनों को तोड़ने की कोशिश करती है। वह पुरुष से तथा पुरुष प्रधान समाज से संघर्ष करके अपनी अस्मिता की रक्षा करती है। समाज में अपनी पहचान बनाने में सफल होती है। पीड़ा और त्रासदी से झुलकर भी जिन्दा है और सारी विरोधी परिस्थितियों से लड़ने के लिए उसमें हिम्मत और आत्मविश्वास है। प्रिया कहती है- ''मैंने दुख झेला है। पीड़ा और त्रासदी में झुलसी हूँ। जिस दिन मैंने त्रासदी को ही अपने होने की शर्त समझ लिया, उसी दिन उस स्वीकृति के बाद मैंने खुद को एक बड़ी गैर जरूरी लड़ाई से बचा लिया। कुछ के प्रति यह मेरा समर्पण था। सारे जुल्मों के सामने --- सलीब पर लटकते मैंने पाया कि मैं अब पूरी तरह जिन्दगी की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार हूँ।''५

कॉलेज में भी प्रिया को प्रोफेसर द्वारा वासना का शिकार होना पड़ता है। परन्तु प्रिया हर चुनौती का सामना करते हुए घरवालों के विरूद्ध जाकर अपनी पढ़ाई को पूरा करती है। वह अपनी जिन्दगी भाभी और अम्मा की तरह घुटन भरी नहीं जीना चाहती, क्योंकि उसने प्रोफेसर चेटर्जी से सिखा था कि ''स्त्री होना कोई अपराध नहीं है, पर नारीत्व की आँसू भरी नियति स्वीकारना बहुत बड़ा अपराध है।''६ इसी संदर्भ में प्रसिद्ध समाजशास्त्री सिमोन द बोउवार ने 'द सेकंड सेक्स' में कहा है कि-''स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है।''७

पढ़ाई के पश्चात् प्रिया की शादी एक सम्पन्न परिवार में होती है। प्रिया को विवाह के बाद के कटु अनुभवों से पता चलता है कि धनी परिवार में विवाह होने पर भी स्त्री के जीवन की विद्रुपताएँ समाप्त नहीं होती। अतः प्रिया व्यवसायिक जगत में प्रवेश करती है क्योंकि वह एक भोग की वस्तु बनकर नहीं रहना चाहती थी। भारतीय परंपरा में निरन्तर स्त्री को प्रेम, समर्पण आदि महान बातें बोलकर स्त्री को घर में बिठाया गया है। नरेन्द्र भी प्रिया के समक्ष प्रेम, ईमानदारी, समर्पण की बात रखकर उसे चारदीवारी के अंदर कैद करना चाहता है। प्रिया अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करती है और नरेन्द्र से कहती है कि ''आपसी ईमानदारी, वफादारी, प्यार, समर्पण कुछ नहीं। सच कहूँ नरेन्द्र ये शब्द भ्रम है। औरत को यह सब इसलिए सिखाया जाता है कि, वह इन शब्दों के चक्रव्यूह से कभी नहीं निकल पाए ताकि युगों से चली आती आहुति की परंपरा को कायम रखे।''८ अतः प्रिया के विचार पुरोगामी है, वह दबना नहीं चाहती, दकियानुसी, परंपरागत धारणाओं से नारी के पैरों को हमेशा से पितृसत्तात्मक अवस्था ने जकड़ना चाहा परन्तु जब यह नहीं हुआ तो बड़े-बड़े शब्दों में फसाकर उसका शोषण करने का तरीका अपनाया जिससे प्रिया अपने आप को अछुता रखती है।

समाज चाहे कितना भी बदला हो लेकिन स्त्री के बारे में पुरुषों के विचार आज भी वही है। स्त्री का स्वतंत्र होना पुरुष को बर्दाश्त नहीं होता है। नरेन्द्र अपने पति होने का

अधिकार प्रिया पर थोपना चाहता है। वह बड़े कठोर शब्दों में कहता है- ''दरअसल तुम्हें इतनी खुली छुट देने की गलती मेरी ही थी। मुझे पहले ही चिड़िया के पंख काट डालने चाहिए थे, पर मैं तुम्हारी बातों में आ गया। तुम्हारे इस भोले चेहरे के पीछे एक मक्कार औरत का चेहरा है।''९ लेकिन प्रिया इन सब बातों को अनदेखा कर अपने व्यवसाय को आगे बढ़ाती है। प्रिया के इस सम्मान को बढ़ते वह देख नहीं सकता है और वह प्रिया को कोसते हुए नरेन्द्र कहता है- ''पैसा कमाना तुम्हारी हवस है प्रिया! तुम नारसिसिस्ट हो। तुम्हारी महत्वाकांक्षाएँ दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ती जा रही है।''१० इस पर प्रिया कहती है कि ''क्या महत्वाकांक्षी होना अपराध है? क्या तुम रुपया नहीं कमाते? तुम्हें मेरे रुपए से क्यों जलन हो रही है नरेन्द्र''।११ महत्वाकांक्षी होना एक इंसान का हक है। पुरुष का महत्वाकांक्षी होने पर कोई सवाल नहीं करता लेकिन जब एक स्त्री महत्वाकांक्षी बनकर अपने भाग्य खोजने के लिए आगे आती है तो उसे दबाने के लिए पुरुष सभी मोहरों को जुटाता है। इसी संदर्भ में 'सिमोन द बोउवार' कहती है कि ''आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में स्त्री की स्वतंत्रता सिर्फ अमूर्त और सैद्धांतिक रह जाती है। आर्थिक आत्मनिर्भरता स्त्री स्वातंत्र्य का दरवाजा है।''१२ 'छिन्नमस्ता' की स्त्रियां आर्थिक स्वायत्तता के माध्यम से पुरुष समाज में अपनी जगह बनाती है।

नीना प्रभा खेतान का ऐसा पात्र है जो जीवन को निरीह, असहाय नहीं बल्कि सशक्त और आधुनिक रूप में देखती है। वह मूक दर्शक बनकर सहन करने को तैयार नहीं है। ''देखा भाभी पापा चाहते हैं कि मेरी शादी हो जाए, लेकिन मैं नहीं करूंगी। मैं पहले अपने पैरों पर खड़ी होऊंगी।''१३ जूडी कहती है कि हम पश्चिमी औरत ने भी बहुत सहा है जब हमारे घर उजड़े बच्चों ने साथ छोड़ा, साठ वर्ष का पुरुष केवल पैसे के बल पर बीस वर्ष की लड़की के लिए घूमने लगा, तब हम भी तिलमिला उठीं भोग का नंगा नाच और उसमें शामिल हमारी बहनें और बेटियां भी। जूडी कहती है कि प्रिया ''एक तुम ही नहीं दुःख पा रही हो हर औरत के अपने-अपने दर्द के तहखाने हैं।''१४

समकालीन परिवेश में प्रिया हर स्त्री के लिए प्रेरणादायक एवं प्रेरक शक्ति है। आम स्त्री की तरह अपने हालातों से समझौता कर चूप रहनेवाली नहीं हैं प्रिया अच्छी तरह जानती है कि एक स्वावलम्बी स्त्री के लिए अपनी पारंपरिक सीमाओं को तोड़ना बहुत जरूरी है। वह जानती है कि कोई भी पुरुष स्त्री के स्थान की पूर्ति नहीं कर सकता है इस संदर्भ में अपने दोस्त फिलिप से प्रिया कहती है- ''पुरुष भूमि है, आकाश है, हवा है, अग्नि है, जल है लेकिन स्त्री बीज बनकर धरती के नीचे दबना जानती है, वक्त आने पर अंकुरित होती है और फिर शाखा-प्रशाखाओं में फैलती हुई पूरा जंगल हो जाती है।''१५ 'छिन्नमस्ता' उपन्यास की कहानी स्त्री के अस्तित्व एवं आत्मबोध की है। स्त्री के जीवन राह में आने वाली हर चुनौतियों से संघर्ष करती और अपनी अस्मिता की पहचान करती है। स्त्री के इर्द-गिर्द जो भी संबंध बंधन है उनका विरोध संघर्ष करती हुई, किसी भी संबंध को अपनी शर्तों पर बना रखनेवाली स्त्री के इस आधुनिक रूप को देख वैशाली देशपांडे लिखती है-''प्रिया का यह व्यवहार आधुनिक नारी के उस रूप को उद्घाटित करता है, जो पुरुष प्रधान समाज के अत्याचार के विरोध में खड़ी रहकर अपनी क्षमता को साबित करती है। शोषण के सामने चुनौती बनकर खड़े रहने की क्षमता आज की नारी में आ चुकी है और प्रिया उस नारी का प्रतिनिधित्व कर रही है।''१६ 'छिन्नमस्ता काश! इस उपन्यास को मैं फिर से लिख पाऊँ' लेख में प्रभा खेतान लिखती है साधारण मानवीय रूप में मेरी नायिका प्रिया अपनी व्यथा को कहती है और हमें कहते कहते अपने एक त्रासद अतीत से उबारती है। समाज के अनुसार उसे मर जाना चाहिए था, टूट जाना चाहिए था। उसका सर तो पहले ही कट चुका था, लेकिन फिर भी वह छिन्नमस्ता देवी अपने रक्त से परिवेश से और अन्ततः अपने पति से लड़ती हुई अपनी जिन्दगी बनाती है क्योंकि मेरे जीवन की सबसे बड़ी प्रेरणा रही है कि स्त्री अपनी मानवीय गरिमा के लिए संघर्ष करे, उसे जगत में अपने होने के माध्यम से हासिल करके रहे।

प्रिया अपने प्रखर व्यक्तित्व के प्रभाव से आनेवाली स्त्री समाज की नई पीढ़ी को और भी सशक्त एवं सफल बनाना चाहती है। आधुनिक नारी शक्ति की पहचान बनकर अपने निराले व्यक्तित्व से सदियों से शोषित पीड़ित नारी की पंक्ति से अलग करने में समर्थ बनी है। प्रिया के माध्यम से ज्ञात होता है कि सम्मान कोई देता नहीं, उसे खुद हासिल करना पड़ता है। हर दिशा से उपेक्षा का भाव मिलने पर भी वह अपनी जिन्दगी हँसते हुए जीती नज़र आती है। उसका यह आशावादी नज़रिया सब स्त्री के लिए दृष्टान्त है। आज की पीड़ित, तड़पती नारी में आत्मबल एवं स्वाभिमान भरने का स्तुत्य कार्य करने में यह सक्षम तथा सफल हुआ है। स्त्री के शिक्षित एवं आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनने से कोई मूलभूत परिवर्तन न आनेवाले हैं, जरूरत है समाज में इस मानसिकता

को बदलने की, जिसमें स्त्री को पुरुष से भिन्न समझा जाता है। नारी जीवन के इस संघर्ष को लेकर डॉ- मधु सन्धु लिखती है कि-''छिन्नमस्ता, नारीयातना, विद्रोह एवं मुक्ति की गाथा है।''१७

निष्कर्षः प्रभा खेतान आधुनिक युग की चर्चित नारीवादी लेखिकाओं में से एक है। उनका सम्पूर्ण साहित्य चिंतन प्रधान है। रचना कौशल में नवीनता है। कथ्य की मजबूती है। भारतीय स्त्री की स्थिति के साथ-साथ प्रभा खेतान ने दूसरे देशों की स्त्री की यथास्थिति को भी उकेरा है। प्रभा खेतान की स्त्री व्यवस्था की मार झेलती हुई त्रस्त जीवन से बाहर आने के लिए संघर्षरत है। प्रभा खेतान की स्त्रियाँ अस्मिता के प्रति जागरूक है। वह सवाल करती है कि पुरुष की तरह वह भी एक स्वतंत्र इकाई है, फ़िर उसे पीछे क्यों धकेला जाता रहा है? प्रभा खेतान के 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में स्त्री अस्मिता से संबंधित विविध आयाम स्त्री जीवन के तनाव व कुंठा, दांपत्य जीवन की विसंगतियों, संघर्ष, आक्रोश, अपनों द्वारा आहत जीवन, स्त्री जीवन की यातनाएँ आदि का यथार्थ पृष्ठभूमि पर चित्रण किया है। प्रिया, नीना, दाई माँ, कस्तूरीदेवी, जुड़ी, सरोज आदि स्त्री पात्र स्त्री अस्मिता के अटूट उदाहरण है।

संदर्भः

१.अर्चना वर्मा- अस्मिता-विमर्श का स्त्री-स्वर, प्रकाशक मेधा बुक्स, प्रथम संस्करण २००८, पृष्ठ संख्या-७९.

२.सुभाष सेतिया - स्त्री-अस्मिता के प्रश्न, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, २००९, पृष्ठ संख्या-१०२.

३.डॉ. ऊषा किर्ती राणावत - प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार, वाणी प्रकाशन २०१५, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या-४७.

४.प्रभा खेतान - छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, पटना, १९९३, पृष्ठ संख्या-११.

५.प्रभा खेतान - छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, पटना, १९९३, पृष्ठ संख्या-९.

६.प्रभा खेतान - छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, पटना, १९९३, पृष्ठ संख्या-४४.

७.प्रभा खेतान - स्त्रीः उपेक्षिता सीमोन द बोउवार, हिन्दी अनुवाद, १९९२, पृष्ठ संख्या-८९.

८.प्रभा खेतान - छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, पटना, १९९३, पृष्ठ संख्या-११, १२.

९.प्रभा खेतान - छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, पटना, १९९३, पृष्ठ संख्या-११७.

१०.प्रभा खेतान- छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, पटना, १९९३, पृष्ठ संख्या-१२४.

११.प्रभा खेतान- छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, पटना, १९९३, पृष्ठ संख्या-१३.

१२.प्रभा खेतान- स्त्रीः उपेक्षिता सीमोन द बोउवार, हिन्दी अनुवाद, १९९२, पृष्ठ संख्या-४७.

१३.प्रभा खेतान - छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, पटना, १९९३, पृष्ठ संख्या-१४४.

१४.प्रभा खेतान- छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, पटना, १९९३, पृष्ठ संख्या-१८७.

१५.प्रभा खेतान - स्त्रीः उपेक्षिता सीमोन द बोउवार, हिन्दी अनुवाद, १९९२, पृष्ठ संख्या-२११.

१६.डॉ. वैशाली देशपांडे - स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार, विकास प्रकाशन, कानपुर, २०१७, पृष्ठ संख्या-९७.

१७.डॉ. मधु सन्धु - महिला उपन्यासकार, शोधपरक ग्रंथ २०००, पृष्ठ संख्या-४८.

१८.गोपाल राय - हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१६, पृष्ठ संख्या-४२६.

सुशीला बाई
शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्लीविश्वविद्यालय, दिल्ली-११०००७
सम्पर्कः ९५६०३१८६३९
ईमेल - meenadd56@gmail.com

शोध निर्देशक
डॉ.- कविता भाटिया मेहता
हिंदी विभाग, मिरांडा हाउस कॉलेज
दिल्लीविश्वविद्यालय, दिल्ली-११०००७
ईमेल- kavita.bhatia@mirandahouse.ac.in

‘तीसरी ताली’ उपन्यास में चित्रित एलजीबीटी

सीमा कुशवाहा

शोधार्थी,हिंदी विभाग,
दिल्लीविश्वविद्यालय,दिल्ली

‘तीसरी ताली’ उपन्यास में एलजीबीटी समुदाय के साथ-साथ समाज के निम्न मध्यवर्ग, पुरूष वर्चस्वकारी और बेरोजगारी को ढोते उस वर्ग की भी बात की गई है जो एलजीबीटी बनने को मजबूर हैं। इस उपन्यास में एक संकेत विदेश की ओर भी है कि वहाँ भी ऐसा होता है इसलिए देह व्यापार में किन्नर, लौंडों और समलैंगिक की सोशल मीडिया पर कॉलगर्ल माफिया से माँग की जाती है। किन्नर वर्ग रिश्तों की तलाश करता है। वह जीवन में उपलब्धि भी पाता है। लेकिन किन्नरों में प्रत्येक व्यक्ति एक जैसा नहीं होता बिल्कुल सामान्य जन की तरह ही संघर्ष न कर पाने के कारण वह आत्महत्या का मार्ग अख्तियार करता है। एलजीबीटी समुदाय में किन्नर ने अपनी मानसिक अनुभूति के अनुसार अपना यौन अंग बदलवा लिया है और उपलब्धियाँ भी हासिल कर ली हैं लेकिन जीवन का अकेलापन उन्हें हमेशा दबोचता रहता है। स्त्री लेस्बियन नहीं है लेकिन पिता द्वारा माँ की लगातार पिटाई करने से और ममेरे भाई का हिंसात्मक स्वभाव उसे लेस्बियन बनने को मजबूर करता है। सामान्य जन की भाँति लेस्बियन और गेय की भी कामना होती है कि वे अपना वैवाहिक जीवन व्यतीत करें। इसके लिए ३७७ धारा पर उपन्यास में रोक लगाकर वैवाहिक जीवन की स्वीकृति दी गई है। सामान्य जन की तरह इनमें भी कमियाँ है जिसके कारण इस उपन्यास में बायोसेक्सुअल का वैवाहिक जीवन सफल नहीं हो पाता। सही और गलत की दिशा बताने के लिए उपन्यासकार ने एक पात्र किन्नरों की संत को भी जगह दी है। प्रदीप सौरभ पत्रकार होने के साथ एक सफल उपन्यासकार भी हैं। ‘तीसरी ताली’ उन तीसरी योनि के लोगों के बारे में है जो समाज में उपेक्षित हैं। इस उपन्यास की शुरूआत लेखक ने दिल्लीके उच्चवर्ग सिद्धार्थ एन्कलेव से की है। जहाँ मण्डली की सरगना डिम्पल रहती है-‘‘जो खास-खास मौकों पर दो चार किलो सोना अपने शरीर पर चढ़ा लेती थी’’१ उपन्यास के अंत में लेखक ने राम के उस प्राचीन मिथक को झूठलाया है जिसके अनुसार तृतीयलिंगी बस नाच-गाकर अपना गुजारा कर सकते हैं। इतना ही नहीं राम के मिथक के कारण ही वे समाज और परिवार से बेदखल हैं विजय कृष्णा जिसे फोटोग्राफी का शौक था जो जन्मजात हिजड़ा है लेकिन तकदीर को अपना भविष्य नहीं बनने देता वह कहता है-‘‘दुनिया के दंश से अपने आपको बचाने के लिए मैंने लगातार लड़ाई लड़ी और खुद को स्थापित किया मैं नाचना-गाना नहीं नाम कमाना चाहता था’’२ उपन्यास के मध्य में लेखक ने उस निम्न मध्यवर्ग को रेखांकित किया है जो अपने और अपने परिवार की खातिर किन्नर, लौंडे बनने और देहव्यापार में जाने को मजबूर हैं। राजा को रोटी की खातिर किन्नर बनना पड़ा। राजा के मन में विचार आया था कि-‘‘असली हिजड़े तो वे हैं जिन्होंने मेरी कला की इज्जत नहीं की और मुझे भुख से मरने के लिए छोड़ दिया।’’३ मंजू के माता-पिता गरीब होने के कारण उसे डिम्पल के पास बेच देते हैं, मंजू ने किन्नर के समान नाच-

गाना सीख लिया था लेकिन स्त्रियोचित भावना उसकी मरी नहीं थी जिसके कारण उसने राजा से शारीरिक संबंध बनाए थे और फिर एक माँ बनने के दिन गिनने लगी थी तभी उसकी मुखियाँ डिम्पल ने सामाजिक भय से उसका गर्भपात करा दिया -''उसको एनेस्थीसिया लगाकर बेहोश कर दिया गया। ऑपरेशन शुरू हुआ और बच्चे को जन्म लेने से पहले ही मार दिया गया। ऑपरेशन कर रही लेडी डॉक्टरों ने देखा कि अजन्मी बच्ची लड़की है। लगे हाथ मंजू की बच्चेदानी भी निकाल दी गई।''४ बाबू श्यामसुंदर सिंह का लौंडा ज्योति और जमींदार जगरूप सिंह ने लौंडा रखा हुआ था। ज्योति को उसके बाबू श्यामसुंदर सिंह ने ज्योति के गाल पर जबरन चुंबन लिए जाने पर बालात्कार की शिकार हुई औरत की तरह ही उसे भ्रष्ट बताया और उसे नौकरी से निकाल दिया गया-''उन्होंने नौकरों को आदेश दिया कि ज्योति को कोठी से बेदखल कर दो।''५ ज्योति गरीबी के कारण शरीर बेचने को मजबूर हो गया -''शरीर बेचने का धंधा छोड़ने की सोचता लेकिन बूढ़े माँ-बाप की शक्ल देखकर वह फिर खमोश हो जाता''६ ज्योति भी हिजड़ा बन जाता है। उसकी सोच बताती है कि मनुष्य व्यवहार से हिजड़ा बनता है मात्र शरीर से नहीं, वह कहता है-''बिना हिजड़े के भी तो हिजड़ा बना हुआ हूँ। जो अपने को मर्द कहते हैं, वे कौन से हिजड़ों से कम हैं।''७ दूसरी तरफ देवरिया का जगरूप सिंह जिसने अपने लौंडे का बालात्कार हो जाने पर भी उसे बेदखल नहीं किया लेकिन इस घटना के बाद वह अछूत जरूर हो गया था -''इस घटना के बाद उन्होंने कभी उससे सेवा नहीं ली। यहाँ तक कि तेल मालिश भी नहीं कराई, पर उसके पेट पर लात नहीं मारी''८ रेखा चितकबरी पहले निम्र मध्यवर्ग की थी उसके पास पैसे नहीं होते थे जिसके कारण वह दिल्लीकी वरिष्ठ कालर्गल सप्लायर बनी थी। इस तरह इनके साथ परिस्थितिवश किन्नर हो जाने का दवाब, अछूतपन और भेदभाव किया जाता है। उपन्यास में लेखक उन पात्रों को भी सामने लाते हैं जो किन्नर की तरह नाच-गाना करने को विवश हैं जबकि वो पूर्ण स्त्री व पुरूष हैं उनका मानना हैं कि नौकरी मिल जाने पर वे ये काम छोड़ देंगे। पिंकी और सुनयना जोकि किन्नर हैं वे नाच-गाने से तंग आ चूकी थी इसलिए रेखा के दैहिक व्यापार में जा मिली थी। संक्षेप रूप में कहाँ जाए तो लेखक ने पाठकों के सामने किन्नरों का ऐसा समुदाय रखा है जो अपनी कबिलियत के अनुसार धन नहीं कमा सकता और न ही समाज उसे उसके अनुसार जीवन जीने ही देता है। सामान्य मनुष्य की भाँति इनका शोषण करने वाले भी उच्चवर्ग की किन्नर ड़िम्पल, जमींदार बाबू श्यामसुंदर और जगरूप जैसे लोग हैं।

सुधीश पचौरी ने लिखा है-''लेखको की गहरी हमदर्दी इस जिंदगी के अयाचित दुखों और अकेलेपन की तरफ है। इस दुनिया को बाकी समाज, जिस निर्मम क्रूरता से डील करता है वही क्रूरता इनमें हर स्तर पर 'इनवर्ट' होती रहती है।''९ गौतम साहब का तीन बेटियों के बाद बेटा हुआ था जो ट्रांसजेंडर था। विनीता मानसिक रूप से अपने आपको लड़की मानता था। जब घर पर कोई नहीं होता था तो वह लिपिस्टिक लगाता है, बिंदी लगाता है, बहनों के कपड़े पहन लेता है किंतु पिता को उसका यह रूप पसंद नहीं आता। इसी वजह से वह घर से पैसे चुराकर हमेशा के लिए बाहर निकल जाता है। इसके बाद वह दिल्लीदर्शन करता है। केजी मार्ग पर विनीत विनीत से विनीता बन जाता है। उसे यह जब पता चलता है जब कोई कार वाला उससे शरीरिक संबंध बनाता है इसी इलाके की वकालत करने वाले हिजड़े विनिता को धंधा करते हुए पकड़ लेते हैं जबकि उसे इस विषय में कुछ भी मालूम नहीं होता -''उसके हाथ में एक हजार का नोट रख दिया और बोला, फिर मिलेंगे।''१० धंधे के बदले विनीता को पीटा जाता है। वह लहूलुहान हो जाती है लेकिन उसे बचाने की हिम्मत कोई नहीं करता-''यहाँ तो गुंड़ों की जगह हिजड़े थे। इनसे तो खुदा भी ड़रता है। कब कौन-सी नंगई पर उतर आये।''११ सुधीश पचौरी के अनुसार यह वही 'क्रूरता' है जो इनमें 'इनवर्ट' हो जाती है। यही एक कांस्टेबल राज चौधरी उसे अपने घर रखने के लिए ले जाते हैं। उनकी पत्नी इसका विरोध करती है। वह अपने पास के गाँव का एक प्रसंग याद दिलाती है जिसमें किसन और बाबी की प्रेम कथा थी, किसन पूर्ण पुरूष था जबकि बाबी किन्नर थी और वह बाबी को अपने गाँव ले आया था। किसन इस प्रेम के बदले अपनी पत्नी को भी छोड़ चुका था। गाँव में यह बात फैल चुकी थी अर्थात समाज भी उन्हें स्वीकार नहीं करता । पंचायत ने उन्हें बेदखल कर दिया था तब किसन ने उसका विरोध करते हुए कहा था-''हिजड़े कोई हिंसक जानवर नहीं हैं जो गाँव में रहेंगे तो लोगों को मारकर खा जाएँगे।''१२ राज चौधरी इस घटना से सचेत हो गये थे। विनीता ने पार्लर सीख रखा था, घर का मामला बिगड़ता देख उसने अपने पिता समान कांस्टेबल के सहयोग से पार्लर में सीखना शुरू कर दिया था। इसके बाद उसने खुद का पार्लर 'गे वर्ल्ड' खोल लिया था। सब कुछ होने के बावजूद भी विनीता का अकेलेपन मरता नहीं था, उसे घर की याद आती थी-''विनीता पिता से चिपटकर बच्चे की तरह रोई। गौतम साहब उसके सिर पर हाथ फेरते रहे।

आँखों के दरिया की रवानी जब थमी तो वह एकदम हल्की सी हो चूकी थी। उसके अंदर का खालीपन भर गया था''१३ विनिता ने तीसरी योनि से मुक्ति पा ली थी हलाँकि वह बच्चे पैदा नहीं कर सकती थी-''उसने वहाँ अपने वक्षस्थलों की काँस्मेटिक प्लास्टिक सर्जरी कराने के साथ वेजाइना रिकंट्रक्शन भी करा लिया था।''१४ अब उसकी कामना थी कि विजय कृष्णा जिसके बारे में वह यह नहीं जानती थी कि वह हिजड़ा है, उससे उसके आत्मविश्वास के कारण प्रेम कर बैठी थी, जिसके बिना वह खुद को अधुरा समझती थी। 'गे वर्ल्ड' जैसे पार्लर की मालकीन होने पर भी उसे जीवन में अधूरापन लगता था।

आनंदी आण्टी की लड़की निकिता जो हिजड़ा है - ''वह सोचती थी कि मै चाहे जितना पढ़-लिख जाऊँ, बड़ी होकर पेट पालने के लिए नाच-गाना ही करना पड़ेगा।''१५ वह निकिता जैसी मजबूत नहीं है नीलम के ड़ेरे मे जब उससे नाच-गाना करवाने के लिए चुनरी रस्म की जाती है तो वह सोचती है कि नीलम के ड़ेरे में उसे अन्य हिजड़ों के समान ही नाचना-गाना पड़ेगा इसलिए उसने जहर खाने का फैसला ले लिया-''चूहे मारने की दवा की पूरी शीशी उसने अपने हलक से ऊपर उतार ली।''१६ लेकिन उसी के समक्ष विनीता जैसी किन्नर भी है जो अपना वजूद स्थापित करती है सुंदरम शांडिल्य के शब्दों में- ''तीसरी दुनिया के निकिता जैसे बाशिंदों के लिए विनीता एक बड़ी मिशाल है जो अपने संघर्ष और हुनर के बल पर समाज में ऊँचा मुकाम हासिल करती है।''१७

सुविमल भाई जिन्हें औरतों की गंध पसंद नहीं थी अर्थात गेय थे। बिमारी में सहयोग की खातिर और समाज में गेय विवाह की सहमति न होने के कारण भी उन्होंने रति से विवाह कर लिया था। रति को बच्चा चाहिए था लेकिन सुविमल भाई ने संबंध नहीं बनाया। सुविमल भाई ने कहा कि वह अनिल से संबंध बना सकती है। इससे उसे कोई आपत्ति नहीं होगी। ;अनिल बायोसेक्सुअल था।द्ध ३७७ धारा को जब कोर्ट में अवैध घोषित कर दिया गया तब उन्होंने अनिल के साथ विवाह कर लिया। दोनों का एक दूसरे के प्रति स्त्री-पुरूष जैसा आत्मसर्मपण था लेकिन मानवीय कमजोरी होने के कारण सुविमल भाई को 'गे वर्ल्ड' के वैभव ने पागल बना दिया था-''अनिल को सुविमल भाई का ही सहारा था। अनिल पत्नी की भूमिका में था और सुविमल भाई पति की स्थिति में , शादी टूटने से अनिल को सुप्रीम एनक्लेव छोड़ना पड़ सकता था । सुविमल भाई अनिल की सारी स्थिति को समझते थे फिर भी वे उससे अलग होने की जिद पर अड़े थे।''१८ रति हो या अनिल उनका उन्होंने आवश्याकता अनुसार उपयोग किया था। वैभव के साथ भी वही हो रहा था। जुलेखा लेस्बियन है जबकि इससे शारीरिक और मानसिक संबंध रखने वाली यास्मीन लेस्बियन नहीं है किंतु वह पुरूषों से नफरत करती है इसकी दो वजह हैं, एक उसके पिता जो माँ को मारते थे -''बाप कौसर खान माँ को हर वक्त जलील करता रहता था गाहे-बगाहे वह उसकी कुटाई भी कर देता था। हिंसक था पूरी तरह।''१९ दूसरा उसका ममेरा भाई आलम था, जिसने उस पर हिंसक प्रहार किया था-''उसने यास्मीन के शरीर से खून निकालने के लिए उसके वक्षस्थल को अपने नाखूनों से चीर दिया।''२०

सभी एलजीबीटी समुदाय में कामुक नहीं हैं बल्कि इनमें मातृत्व की भावना भी है नीलम ने निकिता को अपनी बेटी मान लिया था। जिसे आनंदी आंटी हिजड़ा होने पर सामाजिक भय से उसके बड़ा होने पर, उसे नीलम के डेरे मे छोड़ गई थी-''असल में हिजड़ो को अगर कही खुशी मिलती है तो किसी से रिश्ता बनाने में। अतीत के उनके सभी रिश्ते टूट जाते हैं, शायद इसलिए। नीलम निकिता को अपनी बेटी की तरह पाल रही थी।''२१ इसी तरह ड़िम्पल भी मंजू को अपनी बेटी की तरह पाल रही थी। उसे उसकी माँ गरीबी के कारण डिंपल के डेरे में बेच आई थी। मंजू जो पूर्ण स्‍॰॰त्री है, जब राजा के साथ शारीरिक संबंध बना लेती है तो डिंपल उसके गर्भवती होने की जानकारी मिलने पर उसका धोखे से गर्भपात करा देती है जिसके लिए बाद में खुद को कोसती भी है और फिर मंजू की आजादी पर रोक नहीं लगती। एलजीबीटी समुदाय की कामुक होने की एक और वजह भी है सुंदरम शांडिल्य के शब्दों में -''तीसरी दुनिया के लोगों की सबसे बड़ी और मूलभूत समस्या अजीविका है जो इन्हें अंततः इनके समुदाय में ले जाती है। खुशी के मौकों पर घरों में नाच-गाकर बधाइयाँ वसूलने वाले हिजड़ों से लेकर सेक्स रैकेट से जुड़े समलैंगिक लड़को और हिजड़ियों तक सभी के आगे ये विकट समस्या समान रूप से विद्यमान है।''२२ इस संबंध में शरद सिंह का कहना है-'' शिक्षा की कमी, अन्य व्यवसाय में जुड़ने के सीमित अवसर, आर्थिक तंगी व परिवार का भावात्मक लगाव न होना ही अधिकांश किन्नरों को योन कर्म की ओर ले जाता है। लोगों की सोच में यह रचा बसा है कि सारे किन्नर योन कर्मी हैं जो गलत है। इसी कारण इन्हें सामाजिक सम्मान नहीं मिल पा रहा है। इसी कारण इन्हें समाज में अवांछित माना जाता है।''२३

हिजड़ों की समस्या यह है कि लिंग न पहचानने के कारण इन्हें स्कूल में दाखिला भी नहीं दिया जाता। आनंदी आण्टी की लड़की को इसीलिए दाखिला नहीं मिल पा रहा था, बाद में उन्होंने उसे प्राइवेट शिक्षा दिलवाई। डिंपल चाहती थी कि वह पूर्ण स्त्री मंजू जिसे गरीबी के कारण बेच दिया गया था, को पढ़ाये लेकिन फिर ख्याल आता था कि उसे स्कूल में भर्ती कौन देगा। दूसरा हिजडे की लड़की से शादी कौन करेगा इसलिए उसे परंपरागत नाच-गाना सीखा दिया था। अतः समाज में इनका आर्थिक दायरा भी कमजोर किया जाता है, लक्ष्मी नारायण ने अपने साक्षात्कार में कहा है- "हिजड़ों के पास बुद्धि नहीं होती ? उनके पास प्रतिभा नहीं होती ? .... इन बातों को किन तर्कों के आधार पर तय किया?"२४

बाहरी मानुष्य के समान हिजड़ों में भी गद्दी को लेकर राजनीति होती है। चंदाबाई की हत्या उसी की मंडली की नरगिस ने कराई थी। नरगिस और पूर्ण पुरूष गोपाल दोंनों आपस में प्रेम करते थे, गद्दी के लोभ में नरगिस के कहने पर गोपाल ने नरगिस की हत्या कर दी थी फिर उसने गोपाल को जान से मारने की सुपारी दी थी। जब गोपाल को यह पता लगा तो उसने नरगिस पर कोर्ट में गोली चला दी थी और बाद में अपना लिंग बदल कर हिजड़ों की गद्दी पर आसीन हो गया था- "नये अवतार में जब गोपाल गद्दी पहुँचा तो वहाँ मौजूद सभी उसे देखकर हक्के-बक्के रह गये। सबके सामने उसने अपनी धोती उठा दी, देखो अब मैं हिजड़ा बन गया हूँ देखता हू अब मुझे गद्दी से कौन बेदखल करता है।"२५ किन्नरों की एक संत आशामाई भी है जो बताती है कि पूर्ण स्त्री या पूर्ण पुरूष को हिजड़ा बनाना पाप है। गद्दी पर हिजड़ा को ही आसीन किया जाना चाहिए नही तो भविष्य में भ्रष्टाचार जैसी समस्याए होंगी। इतना ही नहीं आशामाई नेक कार्य भी करती हैं -"अचल सम्पत्ति को लेकर तय हुआ कि एक ट्रस्ट बनाकर गरीब बच्चों के लिए अनाथालय और स्कूल खोला जाए चन्दाबाई की याद में।"२६

आंदोलनों और मुद्दों के बीच प्रदीप सौरभ ने दो विचारधाराएँ रखी हैं, एक परंपरागत और दूसरी आधुनिक विचारधारा ३७७ धारा जिसमें शारीरिक संबंध अवैध माने गये थे। उसे नाज फाउंडेशन के सहयोग से कोर्ट में वैध घोषित कर दिया गया। इसमें परंपरावादियों का मानना था कि लोग बच्चे पैदा करना बंद कर देंगे तो उनका रोजगार रूक जायेगा। आधुनिक लोगों का मानना था कि ऐसे भी वो गिरिया रखते हैं यह एक ही रखा जाता है जिसके लिए करवाचौथ जैसी पूजा, रीति-रिवाज निभाये जाते हैं। तो कोई कुछ भी करे। उधर राजनीति में भी शबनम जैसी किन्नर हिस्सेदारी कर रह थी जिसके विषय में उसका कहना था कि वह लोगों की दृष्टि साफ करना चाहती है कि वो असली हिजड़ा नहीं असली हिजड़े तो वे हैं जो जनता का वोट पाकर संसद और विधानसभा में बैठकर जनता का ही खून चूसते हैं जबकि परंपरावादियों का मानना है कि राजनीति कुछ दिनों की, फिर तो उन्हें तालियाँ ही पीटनी है। सविता शर्मा के अनुसार -" तमाम आधुनिकताओं एवं आंदोलनों के बावजूद वस्तूस्थिति यह है कि किन्नर आज भी तिरस्कृत, अप्रिय, आवांछित एवं वर्जित महसूस करते हैं, उन्हें यह अहसास निरंतर दिलाया जाता है कि वह इस समाज में आदरणीय नहीं है"२७

'दा छक्का' प्रोग्राम के माध्यम से 'तीसरी ताली' उपन्यास में कई नामी हिजड़ों को सामने लाया जाता है जो निम्न मध्यवर्ग और मध्यवर्ग से बाहर आये हैं, जिन्होंने न केवल अपनी पहचान बनाई यद्यपि दूसरों के लिए भी सहयोगी बने। जिसमें प्रीतम चोपड़ा गेय हैं। विनीता पेज थ्री की नायिका है। मणि कलीता डांस डायरेक्टर हैं। राजू कथामीपुरा में एड्स और बीडी से ग्रस्त वेश्याओं तथा हिजड़ों की सेवा करता है। सुप्रीया कपूर फिल्मों की मशहूर डंसर हैं। सुंदरम शाडिल्य के अनुसार-"जिन्होंने विरोध और अपमान का घूंट पीकर सच्चे दिल से काम किया तथा हार को जीत में बदलने का जज्बा बनाये रखा।"२८

लेखक ने हिजड़ों की क्रूर संस्कृति भी दिखाई है जिसमें किसी के मरने पर उसे जूतों-चप्पल से पीटा जाता है और शवयात्रा इस प्रकार निकाली जाती है कि दुबारा उसका इस योनि में जन्म न हो। प्रो. शर्मिला सक्सेना के शब्दों में- " समाज यह नहीं जानता की हिजड़ों की शारीरिक संरचना क्या है, इस समुदाय के नियम क्या हैं, इनकी आजीविका साधन क्या है, इनकी बिरादरी का ताना- बाना क्या है। इनके जीवन का दर्द, इनकी मृत्यु के बाद होने वाली रस्मों से झलकता है। इनका अंतिम संस्कार आधी रात के बाद दुनिया की निगाह से छुपाकर किया जाता है। इनके शव को जूतों से पीट-पीटकर दुआ माँगी जाती है कि ऐसा जन्म फिर न मिले।"२९ दूसरी ओर कृष्ण और अरवाण कथा प्रसंग के माध्यम से विवाह के बाद इनमें विधवा होने की प्रथा भी है।
निष्कर्षतः 'तीसरी ताली' उपन्यास में लेखक ने एलजीबीटी समुदाय के साथ ही एलजीबीटी जीवन जीने को विवश उस समुदाय को सामने रखा है जो अपनी परिस्थितियों के कारण

बन जाते हैं या बना दिए जाते हैं। उन समस्याओं को भी सामने लाये हैं जो सामान्य मानव के समान ही इनके जीवन में भी वर्चस्व स्थापित कर चूकी है। एलजीबीटी समुदाय का अपना संघर्ष और उनकी अपनी संस्कृति भी उभर कर आयी है। तमाम परंपराओं और आधुनिकताओं के बाद भी इनका अकेलापन मिट नहीं सका है। समाज, राजनीति, और इनके आर्थिक पहल को नजर अंदाज कर समाज ने इन्हें अकेला जीवन जीने को विवश कर दिया है लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी ने लिखा हैं-''वह राजनीति में नहीं जा सकते ? फौज में नहीं जा सकते? इन बातों को किन तर्कों के आधार पर तय किया ? आपने कलाकारों प्रतिभावनों को मजबूर कर दिया पचास - पचास रूपये में देह बेचने को।''३०

संदर्भ ग्रंथ

१. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, पृ. १४
२. वही, पृ. १९५
३. वही, पृ. २५
४. वही, पृ. ३५
५. वही, पृ. ५३
६. वही, पृ. ५५
७. वही, पृ. ५६
८. वही, पृ. ५४
९. वही, भूमिका, सुधीश पचौरी
१०. वही, पृ. ८५
११. वही, पृ. ८७
१२. वही, पृ. ९४
१३. वही, पृ. १२०
१४. वही, पृ. ११५
१५. वही, पृ. ४३
१६. वही, पृ. ४५
१७. सुंदरम शाडिल्य ,तीसरे लोगों की दुनिया की अन्तर्कथा, थर्ड जेण्डर अतीत और वर्तमान, विकास प्रकाशन, संः डॉ फ़िरोज़ खान, पृ. ३५
१८. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, पृ. १७१
१९. वही, पृ. १२२
२०. वही, पृ. १२५
२१. वही, पृ. १०२
२२. सुंदरम शाडिल्य ,तीसरे लोगों की दुनिया की अन्तर्कथा, थर्ड जेण्डर अतीत और वर्तमान, विकास प्रकाशन, संः डॉ फ़िरोज़ खान, पृ. ३६
२३. किन्नर भी इन्सान हैं!, थर्ण्ड जेण्डर विमर्श, सं- शरद सिंह, भारतीय पुस्तक परिषद, पृ. ४५
२४. जूग- जुग जियेसू ललनवा ;साक्षात्कारद्ध , हम सबला ;यौनिकता विशेषांकद्ध , ;सं. द्ध जूही जैन, जागौरी पत्रिका, पृ. ३९
२५. वही, पृ. १०६.
२६. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली, पृ. ११२ - ११३
२७. सविता शर्मा, 'तीसरी ताली' और 'पोस्ट बॉक्स नं. २०३ नाला सोपारा' में अभिव्यक्त किन्नर समाज का तुलनात्मक अध्ययन, सं- माणिक एवं जितेन्द्र यादव, पत्रिका अपनी माटी, पृ. ३८
२८. सुंदरम शाडिल्य ,तीसरे लोगों की दुनिया की अन्तर्कथा, थर्ड जेण्डर अतीत और वर्तमान, विकास प्रकाशन, संः डॉ फ़िरोज़ खान, पृ. ३५
२९. प्रो. शर्मिला सक्सेना, 'तीसरी ताली' की अंधेरी दुनिया का काला सच, थर्ड जेण्डर और साहित्य, विकास प्रकाशन, संः डॉ फ़िरोज़ खान, पृ. ४८
३०.लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, मैं हिजड़ा.... मैं लक्ष्मी, वाणी प्रकाशन, पृ. ५५

संपर्क
सीमा कुशवाहा
शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली

भोजपुरी थारू लोकगीतों में स्त्री की विरह वेदना

अवधेश कुमार

शोधार्थी,हिन्दी विभाग
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय
मोतिहारी, बिहार ८४५४०१
ईमेल- akumarmgcub@gmail.com
मो. - ९९३९०१०७९९

भारत एक बहुधार्मिक तथा बहुसांस्कृतिक देश है। जिसके अंतर्गत बहुत सारी जातियाँ तथा जनजातियाँ भी समाहित है। भारत में लगभग पचास से अधिक जनजातियाँ पायी जाती है। जिसमें थारु भी एक प्रमुख जनजाति है। जो प्रमुख रूप से पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा उतराखंड के पहाड़ी इलाकों में निवास करती है। बिहार राज्य के अंतर्गत भारत नेपाल सीमावर्ती क्षेत्र के निकट पश्चिमी चंपारण के सोमेश्वर पर्वत श्रेणी में फैले रामनगर, बगहा, मैनाटांड तथा शिकारगंज थाने तक फैले क्षेत्रों को थरुहट कहा जाता है। ऐसे तो थारू जनजाति में चार तरह की भाषाएँ प्रचलित है- (१) पूर्वी थारु (२) मध्य थारू (३) पश्चिमी थारू (४) कुमाऊनी थारू। पश्चिमी चंपारण के सीमावर्ती क्षेत्र के थारू का संबंध मध्य थारू से है। जिन्हें भोजपुरी थारू के नाम से जाना जाता है। इन थारुओं का अपना एक समृद्ध लोक साहित्य है। जिसमें लोक गीत भी एक महत्वपूर्ण विधा है। इनके गीतों में रोजमर्रा का जीवन, परंपरा, संस्कृति आदि की अभिव्यक्ति तो हुयी ही है तथा इसके साथ ही साथ इन गीतों में जीवन से मरण तक के सारे चित्र मिलते हैं। इन गीतों में एक तरफ गृहस्थ जीवन, सास-बहू, ननद-भौजाई, देवर-भाभी, पति-पत्नी का प्रेम और उलाहना है तो दूसरी तरफ अपने प्रियतम से दूर होने की चिंता, पीड़ा तथा दुःख भी मौजूद है।

थारू लोकगीतों में विरह के गीत अत्यंत ही प्रचलित है। यह गीत सामान्यतः स्त्रियों के साथ-साथ पुरुष भी हल चलाते समय बहुत ही मगन हो कर गाते हैं। इस संदर्भ में सिपाही सिंह श्रीमंत कहते हैं-

'आसमान में बादल घहर रहें हों, क्षितिज की ओर से घटाओं का पहाड़ ऊपर की ओर उठता आ रहा हो और बरसाती हवा लहर मार रही हो-ऐसे समय जब थारू हलवाहे बिरहिनी गीतों में अपने उल्लास को उड़ेल कर गाना गाना प्रारंभ करते है, तो वातावरण में अजीब मादकता की सृष्टि हो जाती है'

बिरह के गीत थारुओं के जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, संभवतः अन्य लोक गीतों में 'बिरहिनी' नाम से प्रसिद्ध कोई गीत नहीं है। हां छिटपुट जरूर मिल जाती है। लेकिन थारु लोक गीतों में बिरह की अपनी परंपरा है। इनके गीतों में प्रियतम या प्रेमी से वियोग का संकेत प्रायः हर गीतों में देखा जा सकता है। एक विरिहनी एक सुगे को अपने जाँघ पर बैठाकर कहती है -

'हां रे, कहां के राजा, राजा हो मुकुन सिंह, कि कहां बसे पियवा हमार।

हां रे, सगुन करत में बहुत दिन बीतलें, ना हीं अइले कन्त हमार।।

हाँ रे, सुगना बोलाई के जाँघ बइठवलीं, सुनु सुगना वचनी हमार।

हाँ रे, जाहु-जाहु सुगवा दखिन के रे देसवा, कि जहाँ वसे पियवा हमार।।'

जहां प्रेम है वहां पीड़ा भी मौजूद है। यह पीड़ा ही प्रेम

की कसौटी है। प्रेम का सात्विक रुप ही वियोग है। वियोग में ही पता चलता है कि प्रेमियों के हृदय में एक-दूसरे के प्रति कितनी दृढ़ता है, कितनी निष्ठा है, कितनी तीव्रता है, कितनी आतुरता है, और कितनी चाह है। तभी तो भौजाई अपने ननद से पूरवा हवा और गोंइठे के आग का दृष्टांत देते हुए कहती है-

'बाव बहेले पुरवइया मोरे ननदी, गोंइठन सुनुगेले आग।

मोर जीव घसर-मसर करे मोरे ननदी, ओही रे गभरुआ के साथ।।

कहवाँ रे सिरिजेले ओही जोड़ी जँतवा, कहवाँ सिरिजे झीन गेहूँ ।

कहवाँ सिरिजिले ननदी के भइन्यवा, ओही रे गभरुआ के साथ।।'

अपने प्रियतम के चाह में यह जो धीमी आंच पर पकता हुआ टीस है। वह एक लोक की ही खुबसूरती हो सकती है।

जैसा कि मैंने ऊपर कहा कि वियोग में ही एक दूसरे के प्रति दृढ़ विश्वास का पता चलता है। प्रियतम अपनी प्रेमिका (स्त्री) को छोड़कर परदेस चला गया है। स्त्री अपने प्रियतम के याद में आम और महुए के घनघोर बगीचे के बीच रास्ते में बैठकर आंसू बहा रही है-

'आम-महुअवा घन गछिया, बीचे डगर लगी, हो बीचे डगर लगी;

कि ताही तर सुन्नर ठाढ़ भई रे, नयना नीर ढ़री।।'

स्त्री के रोने का कारण जानकर एक बटोही उसे तरह-तरह के प्रलोभन देता है लेकिन वह उस प्रलोभन को स्वीकार नहीं करती है। प्रियतम के आस में रोती ही रहना चाहती है -

'देबो हम डाला भर सोनवा, मोती मांग भरी, मोती मांग भरी;

कि छोड़ी देहु उनहूं के आस हो, संग साथ चलूं, संग साथ चलू।।

अगिया लगइबों में सोनवा, मोती वजर पड़ी, मोती बजर पड़ी;

कि करबो बलमुआ के आस हो, नायना नीर ढ़री, नयना नीर ढ़री।।'

प्रियतम के प्रदेश चले जाने पर पत्नी के लिए सारा संसार सूना लगता है। वह खुद को एक अभागिन समझती है। वह अपना दुःख किसे सुनाएं। प्रियतम के लिए सजायी हुई सेज उसे भयावन लगती है। पौआ-पाटी में घुन लग गया है। प्रियतम के लिये जो मैं पान रखी थी उसमें अब भुअरी लग गयी है, खैर-सुपारी में घुन लग गया है। विरहिनी अपनी सखी से कहती है -

'सखि रे, डँसल सेजिया रे भेयावन, पउआ-पासी लागी गइले घूने,

सखिया रे मोरे, बालम हमरो बिदेसवा गइले ना।।

सखि रे, पानवा भुराइ गइले ना, हाँ रे खैर-सोपरिया लागी गइले घूने,

सखिया हो मोरे, बालम हमरो विदेसवा गइले ना।।'

प्रियतम जब साथ हो तब नोंक-झोंक आम बात है। असली टीस, पीड़ा, दुःख, खालीपन, पश्चाताप तब उत्पन्न होता है जब एक दूसरे से अलग हो जाएँ। ऐसे ही एक स्त्री क्रोध में आकर अपने पति को गाली दे देती है। अब उसका प्रियतम उससे नाराज होकर उस घने जँगल में चला गया है जहाँ सींक भी नहीं समा सकता। स्त्री अपनी पीड़ा सुनाते हुए एक सखी से कहती है -

'हम तो अभागिन ए नारी, हां रे पियवा देलीं हम गारी,

रुसली गे पियवा चलेला विदेसवा हो राम, रुसली गे पियवा।।

जवने वने सिंकियों ना डोले, तवने वनवाँ पियवा लेले वासे,

रुसली गे पियवा चलेला बिदेसवा हो राम, रुसली गे पियवा।।'

स्त्री की पीड़ा तब और तीव्र हो जाती है जब उसका प्रियतम उससे विमुख हो जाता है। एक बिरहनी अपनी सखी से कहती है। हे सखी! जैसे साँप अपना केंचुल और बाँस अपना कोंपल को त्याग देता है उसी तरह मेरा पति मुझसे अलग हो गया है-

'सखि रे, साँप छोड़ले साँप-केंचुल हे

सखि रे, ओइसने छोड़ले पिया मोर, भँवरवा विमुख भइले रे

'बाँस छोड़ले बाँस-कोपल,

सखि रे, अइसने छोड़ले पियवा मोर, भँवरवा विमुख भइले रे।।'

थारू लोकगीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह किसी तरह के बनावटीपन का शिकार नहीं है। इनके गीतों में जो बिंब, प्रतीक और उपमान आए हैं, वह जीवन

जगत से जुड़ी हुई है। वह एकदम सहज और सरल है। कोई भी अतिशयोक्ति पूर्ण बातें नहीं है। एक नायिका का पति परदेस में है। वह अपनी यौवन की तुलना आम, जामुन और खजूर के पके फलों से करती हुई अपनी सासु से कहती है -

'सासु हे, दुख कासे कहों, राउर बेटा परदेस हे।
खरच माँगत तड़प बोले, बोलत बिरहा विरोग हे।।
अमुआ पाकल, जमुना पाकल, पाकल वन के खजूर हे,
कुस विरिदावन दाख पाके, आ मुरुख पियवा विदेस हे।।'

अर्थात, हे सासु! आम भी पक गये, जामुन भी पक गये यहाँ तक कि अब तो वन के खजूर भी पक गये है। मेरा पति जाकर परदेस में बस गया है वह आने का नाम ही नहीं लेता है। खर्च मांगने पर भी धमकी भरा शब्द बोलता है। उस मूर्ख को इतना भी पता नहीं है कि इन पके हुए फलों की तरह मेरा यौवन भी पक गया है।

इसी तरह एक स्त्री का पति परदेस जाकर बस गया है, वह स्त्री की जरूरतों का समान परदेस से भेजता तो है लेकिन उसकी यौन इच्छाओं के पूर्ति के लिये नहीं घर पर आता है। बसंत का आग अब नायिका से सहन नहीं होता, वह कहती है-'कतेक दिनवाँ ना, अब रहब नन्दलाल हो, कतेक दिनवाँ ना

सोने के सिन्होरवा पियव देले भेजवाय, जेतने टिकव ओतने समझव जून।
हाँ रे, कतेक दिनवाँ ना, अब रहब नन्दलाल हो, कतेक दिनवाँ ना।।
आम त महुइया चढ़ि बोलेली जोड़ी काग, मोरे लेखे माधोपुर में धधकेला आग।
हाँ रे, कतेक दिनवाँ ना, अब रहब नन्दलाल हो, कतेक दिनवाँ ना।।'

इस तरह से भोजपुरी थारू लोक गीतों में जीवन के विभिन्न रंग समाहित है। इन विभिन्न रंगों में जो सबसे टहकार और गहरा तो कभी एकदम मद्धिम रंग विरह का है। इन गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह हमें थारू समाज की महिलाओं की जीवन से साक्षात्कार करवाती है तथा इसके साथ ही साथ हम इनके गीतों को पढ़कर किसी भ्रम का शिकार नहीं होते। निर्मला पुतुल की कविता इनके जीवन पर काफी सटीक बैठती है -

'घर-गृहस्थी सँभालते
लड़ते अपने हिस्से की लड़ाई
जो कुछ देखा-सुना-भोगा
बोला-बतियाया
आस-पड़ोस में संगी-साथी से
लिख दिया सीधा-सीधा समय की स्लेट पर'

संदर्भ सूची-

'श्रीमंत, सिपाही सिंह. थरूहट के लोकगीत. सारनः श्रीमंत प्रकाशन. २००२. पृष्ठ संख्या-४१
वहीं. पृष्ठ संख्या-५९
वहीं. पृष्ठ संख्या-४४
वहीं. पृष्ठ संख्या-७६
वहीं. पृष्ठ संख्या-७६
वहीं. पृष्ठ संख्या-१६०
वहीं. पृष्ठ संख्या-१५९
वहीं. पृष्ठ संख्या-१६१
वहीं. पृष्ठ संख्या-१६०
वहीं. पृष्ठ संख्या-१६७
पुतुल, निर्मला. नगाड़े की तरह बजते शब्द. दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ.२०१२. पृष्ठ संख्या- ९४

अवधेश कुमार

शोधार्थी,हिन्दी विभाग
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय
मोतिहारी, बिहार ८४५४०१
ईमेल- akumarmgcub@gmail.com
मो. - ९९३९०१०७९९

बंगमहिला और हिन्दी नवजागरण की रुपरेखा

चंचल साह

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
हिंदी विभाग,वाराणसी
संपर्क - ९००२३१०३५७
ईमेल -madhwisah27@gmail.com

दुनिया भर में समय समय-समय पर अलग-अलग की वैचारिकी में परिवर्तन होता रहता है।यह परिवर्तन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक किसी भी रूप में हो सकती है।१४वीं सदी से १७वीं सदी मध्य यूरोप में एक नवीन चेतना का उदय हो रहा था, 'उस समय यूरोप नई करवट ले रहा था।'[1] यूरोप में इस समय को सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक प्रगति का काल माना जाता है। यूरोपीय समाज में एक नए जीवन का संचार हो रहा था। धर्म, दर्शन, कला, विज्ञान, चित्रकार, मूर्तिकला, संगीत आदि का क्षेत्रों में नए-नए अन्वेषण हो रहे थे। यूरोप में आए इस नई लहर को पुनर्जागरण नाम दिया गया।

इसी तरह १९वीं सदी के दौरान संपूर्ण भारत में भी एक नई चेतना का आविर्भाव हुआ।इस चेतना को कई नामों से पुकारा गया। रेनसा्, पुनर्जागरण, पुनरुत्थान, प्रवोधन, नवोत्थान, समाज सुधार इत्यादि। इस नई चेतना के दौर का कोई एक नाम है इस विषय को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहे हैं। 'पहले तो अंग्रेजी के शब्द 'रैनेसा्' के स्थानापन्न के रूप हिंदी में पुनर्जागरण शब्द प्रयुक्त हो रहा था। डॉ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इस युग को नवोत्थान नाम दिया जबकि रामधारी सिंह दिनकर ने इसके लिए पुनरुत्थान शब्द का प्रयोग उचित समझा '।[2] भारत में आई इस नवीन चेतना को नवजागरण नाम से भी संबोधित किया। इस शब्द का पहली बार प्रयोग डॉ रामविलास शर्मा ने किया। उन्होंने 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण'(१९७७) नामक पुस्तक के द्वारा न केवल नवजागरण वरन् हिंदी नवजागरण की भी संकल्पना प्रस्तुत की।

वैसे तो भारत में नवजागरण की लहर १९वीं सदी के तीसरे-चौथे दशक से ही देखने को मिलती है। इसकी शुरुआत सबसे पहले बंगाल से होती है। 'यूरोपीय रेनेसां में जो भी स्थान इटली का है, भारत के नवजागरण में वही स्थान बंगाल का है'।[3] बंगाल में नवजागरण लाने का श्रेय राजाराम मोहन राय को दिया जाता है। इसको आगे बढ़ाने वालों में केशवचंद सेन, देवेन्द्र नाथ ठाकुर, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद आदि का नाम लिया जाता है। इन लोगों ने सती प्रथा, बाल विवाह,बहुत विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार कर सामाजिक सद्भाव, स्त्री शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह उनकी प्रगति पर जोर दिया। इस नवजागरण के द्वारा सुधारवाद, मानवतावाद, आधुनिकतावाद जैसे विचार विकसित हुए।

'बंगला नवजागरण भारतीय जीवन और संस्कृति

 ISSN: 2583 - 5750

की एक बड़ी घटना है।इसका असर पूरे देश पर न सिर्फ पड़ा बल्कि नव-शिक्षित लोगों ने एक नई सभ्यता का अनुभव करना शुरू किया।'४ बंगाल से होते हुए नवजागरण की यह लहर पूरे भारत में फैलने लगी। महाराष्ट्र, केरल, तमिलनाडु,असम में यह अलग-अलग रुपों में नज़र आती है। हिंदी प्रदेश में नवजागरण की लहर सबसे अंत में दिखाई पड़ती है। रोहिणी अग्रवाल कहतीं हैं 'हिंदी पट्टी में नवजागरण की आहटें बंगाल एवं महाराष्ट्र के मुकाबले काफी देरी से आई और जब आई तो राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्ति के लक्ष्य से लड़ें जाने वाले १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन के साथ '५

हिंदी प्रदेश में नवजागरण का प्रारंभ १८५७ ई की क्रांति से माना जाता है। हिंदी क्षेत्र में धार्मिक संकीर्णता, कर्मकांड आदि सामाजिक पिछड़ेपन, सामंती व्यवस्था, स्त्रियों एवं दलितों की स्थिति जैसी समस्याएं प्रमुख थी। हिंदी नवजागरण के बारे में महावीर प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं - ' वस्तुतः १७६४ई. की बक्सर की लड़ाई के बाद लगभग समूचा हिंदी भाषी प्रदेश अंग्रेजों के प्रभाव में आ गया। १८५७ई. में प्रसिद्ध भारतीय विद्रोह हुआ। जिसने ईस्ट इंडिया कंपनी के भाग्य का निपटारा कर दिया और लगभग समूचा भारतवर्ष अंग्रेजी साम्राज्य की छत्र-छाया में आ गया। सन् १८६० के बाद देश में पूर्व रूप से शांति व्यवस्था कायम हो गई। यातायात के साधन सुलभ हो गए और क्रमशः उनमें सुधार होता गया। यही से वास्तविक साहित्य का प्रकाशन भी होने लगा था।'६

भारत के अन्य क्षेत्रों में जहां नवजागरण के मुख्य सुत्रधार के रूप में समाज सुधारकों का योगदान रहा वहीं हिंदी नवजागरण में इस प्रदेश के जागरूक लेखकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। हिंदी प्रदेश में नवजागरण के सशक्त साहित्यकारों में हम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सहित उनके मंडल के लेखकों का नाम ले सकते है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र मंडल में बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, चौधरी बद्रीनाथ प्रेमघन,लाला श्रीनिवास दास, राधाकृष्णन दास, बालमुकुंद गुप्त आदि प्रमुख हैं। इन्होंने हिंदी साहित्य के हर विधा में अपनी लेखनी चलाई। इन्होंने कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन,बाला बोधिनी, भारतेन्दु जैसी पत्रिकाओं का भी प्रकाशन किया। इन्होंने विभिन्न सामायिक राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विषयों पर काफी कुछ लिखा गया। इस मंडल ने स्त्रियों के विषय पर भी लिखा। भारतेन्दु ने स्त्रियों के लिए एक खास पत्रिका बाला बोधिनी का भी प्रकाशन किया जिसमें स्त्री समस्या से संबंधित विभिन्न पक्षों पर लेख लिखे गए। पर यह विचारणीय है कि स्त्री विषयक समस्याओं पर जागरूकता के बाद भी भारतेन्दु मंडल में एक भी महिला लेखिका का नाम नहीं मिलता है।भी भारतेन्दु मंडल में एक भी महिला लेखिका का नाम नहीं मिलता है। १९वीं सदी के बीत जाने और २०वीं सदी के शुरुवात में पहली बार सशक्त महिला लेखिका के रूप में हम बंगमहिला को देखते हैं। १९वीं सदी के नवजागरण पर विचार करते हुए डॉ वीरभारत तलवार ने लिखा है कि - '१९वीं सदी में हिन्दी की एक भी महत्वपूर्ण लेखिका सामने नहीं आई। यह तथ्य पश्चिमोत्तर प्रांत के नवजागरण पर अपने आप में एक टिप्पणी है। पश्चिमोत्तर प्रांत में हिन्दी की पहली लेखिका पूरी १९वीं सदी के बीत जाने के बाद सामने आई और उसका रचनाकाल १९०४ से शुरू हुआ। गौरतलब है कि हिंदी की यह पहली लेखिका हिंदुस्तानी नहीं बंगाली 'बंगमहिला' जिनका असली नाम राजेन्द्रबाला घोष था '७

राजेन्द्र बाला घोष उर्फ बंगमहिला का जन्म १८८२ ई. में बनारस के कोदई मुहल्ले में हुआ था। उनके पिता का नाम रआमप्रसन्न घोष था। वे मिर्जापुर के रईस और जोर्डन कंपनी में बड़े अफसर थे। उनकी माता नीरदवासिनी घोष बंगला की कहानी लेखिका थी। उनके चार भाई थे जिनके नाम क्रमशः रामेंद्रकृष्ण घोष, राम यादव घोष,राम गोपाल घोष, तथा राम केशव घोष था। इनकी शिक्षा घर पर ही हुई। अपनी शिक्षा के बारे में बंगमहिला लिखती हैं -'एक तो हिंदी मेरी मातृभाषा नहीं, दूसरे मेरी शिक्षा भी घर की है, मुझे जो कुछ शिक्षा मिली ,वह मेरी पूजनीया जननी देवी और परम पूज्य पिता द्वारा ही।'८ सांस्कृतिक रूप से विकसित होने के बावजूद भी इनका परिवार पारंपरिक रुढ़िवादियों से जकड़ा हुआ था जिसका परिणाम यह हुआ कि मात्र ११ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह कर दिया गया।१८९३ ई. में छपरा(बिहार) निवासी श्री पूर्णचंद्र डे से इनका विवाह हुआ।६५ वर्ष की अवस्था में २४फरवरी १९४९ को मीरजापुर में इनका निधन हो गया।

बंगमहिला हिंदी नवजागरण के दौर की पहली महत्वपूर्ण महिला लेखिका हैं।उनका लेखन कार्य १९०४

से शुरू होता है और १९१७तक लगभग १३-१४ साल चलता है। उनकी पहली ही रचना ने हिन्दी क्षेत्र में तहलका मचा दिया। १९०४ में इनका पहला लेख 'हिंदी के ग्रंथकार' चंद्रधर शर्मा गुलेरी जी के संपादन में समालोचक पत्रिका में छपा। इसमें इन्होंने हिंदी के महान लेखकों पर नक़ल का आरोप लगाया। 'बांग्ला और हिन्दी दोनों की साहित्यिक गतिविधियों से वाकिफ बंगमहिला ने इस लेख में मूल लेखक की इजाजत के बगैर बांग्ला से हिंदी में अनुवाद करके अपने नाम से छापने या इससे मिलती-जुलती साहित्यिक चोरी की दूसरी घटनाओं को सामने रखकर साहित्यिक नैतिकता के सवाल को उठाया था। इस सिलसिले में हिन्दी के धुरंधर लेखकों बाबू श्यामसुंदर दास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और किशोरी लाल गोस्वामी को नहीं बख्शा।'?

जिस समय बंगमहिला लिख रही थी उस समय बंगाल में में लार्ड कर्जन का शासन था।१९०५ में कर्जन ने ही बंगाल विभाजन किया था।जिसके खिलाफ लोगों ने आंदोलन चलाए। देश विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग पर जोर दिया जा रहा था। १०९८ में बंगमहिला की एक रचना 'भाई-बहन' आती है जिसमें उन्होंने उपयुक्त समस्या को लेखनी का हिस्सा बनाया। वे बच्चों के बातचीत के जरिए स्वदेशी वस्तुओं को अपनाकर, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की बात कहती है।इस कहानी के माध्यम से उन्होंने विदेशी वस्तुओं के इस्तेमाल से भारतीय कारीगरों पर पड़ने असर को उजागर किया है। उन्होंने इस कहानी में श्रीराम नामक पात्र से कहलवाया कि 'हां मोल तो तुमने रामदीन से ही ली सही।लेकिन रामदीन ने इसे बनाया तो नहीं, बनाया है जर्मनी के कारीगर ने, आखिरकार तुम्हारा नहीं तो बिसाती का पैसा उसके यहां गया कि नहीं। वह लोग तो हर तरह मओटए-तआजए है और बेचारे यहां के जो कुहांर और कारीगर है उन्हें दिन भर में नमक रोटी भी मुश्किल से मिलती है,वे लोग यदि पांच आने पैसे पा लें तो उनको पेट भर खाने को मिल जाए।'इसी तरह की समस्याएं 'दुलाईवाली' कहानी में भी है।इस कहानी का उद्देश्य है स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग जिससे देश का पैसा बाहर न जाए। जानकी देई के पूछने पर कि कोई जरूरी चीज भूल गए हैं तो वंशीधर कहते हैं- ' नहीं, एक देशी धोती पहिनकर आना था,जो भूलकर विलायती ही पहिन आए।नवल कट्टर स्वदेशी हुए हैं न? वे बंगालियों से भी बढ़ गए हैं। देखेंगे तो दो चार सुनाए बिना न रहेंगे और बात भी ठीक है।नाहक विलायती चीजें मोल लेकर क्यों रूपए की बरबादी की जाए? देशी लेने से भी दाम लगेगा सही,पर रहेगा तो देश में ही।'□□

नवजागरण के दौर में जब हिंदी प्रदेश में साहित्य के क्षेत्र में केवल पुरुष लेखकों का ही वर्चस्व था। बंगमहिला उस की पहली महिला लेखिका है जो नारी प्रवक्ता के रूप में ख्याति प्राप्त कर रही थी। 'हिंदी भाषा-भाषी क्षेत्र में स्त्रियों को रूढ़ तथा जड़ परंपराओं के शिकंजे में कसने वाली शास्त्रिय व्यवस्था को नकारती हुई बंगमहिला ने स्त्री शिक्षा और जागरण का नया माहौल बनाया।'□□ उन्होंने 'गृहचार्य', ' स्त्रियों की शिक्षा', 'हमारे देश की स्त्रियों की दशा', 'संगीत और सूई का काम' जैसी स्त्री संबंधी विषयों पर लेखनी चलाई। हिंदी प्रदेश में पहली बार कोई महिला नारी शिक्षा के अभाव पर खुलकर बात कर रही थी और महिलाओं को शिक्षा देने की मांग कर रही थी। वे कहती हैं - ' शिक्षिता होने से लज्जाहीन हो जाने का कोई कारण नहीं।'□□ वे स्त्री की पक्षधर थी। तत्कालीन समाज में ऐसा जाता है कि 'पढ़ने से बालिकाएं शीघ्र विधवा हो जाएगी।□४ इस बात का खंडन करती हुई वे इसे अंधविश्वास का नाम देती है। उनका मानना था कि उच्च उपाधि ने सही परंतु थोड़ी मातृभाषा की शिक्षा स्त्रियों को मिलना चाहिए जिससे महिलाएं पत्र पढ़-लिख सके और उन्हें इस कार्य के लिए किसी की मिन्नत न करना पड़े।

उस समय के हिंदी के प्रमुख चार लेखकों चौधरी बद्रीनारायण 'प्रेमघन', केदारनाथ पाठक, आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा काशी प्रसाद जयसवाल से बंगमहिला का सान्निध्य प्राप्त था। चुंकि उनको विवाह के उपरांत स्वयं पर्दे में रहना पड़ता था। उन्हें किसी से आमने-सामने बैठकर बात करने की इजाजत नहीं थी। 'जब कभी पं. रामचन्द्र शुक्ल उनसे मिलने के लिए आते तो उनसे आमने-सामने बैठकर बात करने की इजाजत उन्हें नहीं मिलती। पर्दे के बाहर आचार्य शुक्ल होते और पर्दे के भीतर बंगमहिला होती। दोनों के बीच में पड़ा हुआ पर्दा उनकी आवाजों को प्राणवान नहीं बना पाता और वे दोनों अनावर्तित ही रह जाते।'□५ पर्दे में रहने का उनका अपना अनुभव था। वे पर्दे को स्त्री स्वतंत्रता में बांधा मानती है। भारतीय स्त्रियों को उच्च शिक्षा न मिलने का कारण भी वो पर्दा प्रथा को ही बताती

है। 'हमारे देश की स्त्रियों की दशा' लेख में उन्होंने बताया कि कैसे स्त्री स्वाधीनता, शिक्षा में पर्दा रुकावट पैदा करती है। 'पर्दे वाली स्त्रियों को कदाचित स्वाधीनता नहीं मिल सकती। इसी कारण से उन्हें शिक्षा भी नहीं मिलती। उच्च शिक्षा के साथ स्वाधीनता का घनिष्ठ संबंध है।इस बात का प्रमाण हमारे देश में ही मौजूद है। ब्रह्म समाजियों और पारसियों में पर्दे का अधिक ख्याल न रखने का कारण उनकी स्त्रियां प्रायः शिक्षिता होती है।' ६ तत्कालीन समाज में स्त्रियों की शादी कम उम्र में करवा दी जाती थी जिससे उनकी शिक्षा बाधित होती थी। लड़कियों के निरक्षरता का एक कारण वे पतियों को भी मानती है - 'एक बी.ए. की पत्नी का निरक्षर होना बड़े ही क्षोभ , दुःख और लज्जा की बात है पर इस दोष के कुछ-कुछ हिस्सेदार वे बी.ए. पति महाशय भी हैं।'७

पर्दा प्रथा का विरोध, स्त्रियों की शिक्षा, उनकी स्वतंत्रता पर जोर देने वाली बंगमहिला 'बुनियादी तौर पर वे स्त्री संबंधी परंपरागत दृष्टिकोण की समर्थक थी।१९०४ -१९०८ के बीच लिखे गए अपने एक महत्वपूर्ण लेख 'गृहचर्या' में उन्होंने स्त्रियों की पारंपरिक छवि और भूमिका का समर्थन करते हुए लिखा है कि नारी दया की मुर्ति होती है।' ८ वे स्त्रियों के लिए उतनी ही शिक्षा चाहती थी जितने में वें घर का हिसाब-किताब कर पति की सेवा कर सके, अच्छे ग्रंथों को पढ़ कर अपना जी बहला सके। वे स्त्रियों का ज्यादा बोलना और हंसना अनुचित समझती थी।वे कहती हैं - ' स्त्रियों को उचित है कि लज्जा और नम्रता को सदा अपना आभूषण समझें। जिस स्त्री को लज्जा नहीं है वह स्त्री पद पाने के योग्य नहीं है। नम्रता से बढ़कर कोई भी गुण नहीं है।'?

बंगमहिला का लेखन इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने मात्र पारिवारिक लेख , कहानियां, स्त्रियों की तत्कालीन समाज में स्थितियों के बारे में ही नहीं लिखा बल्कि तत्कालीन राजनीति को भी अपने रचना का विषय बनाया। १९०४ में सरस्वती में उनकी लिखी एक लेख 'चंद्रदेव से मेरी बात' छपा। यह एक व्यंग्यात्मक ललित निबंध है। इसमें उन्होंने चंद्रदेव से वार्तालाप करते हुए तत्कालीन समाज की जटिलताओं के साथ-साथ शासन व्यवस्था पर करारा व्यंग किया है। लेख की शुरुआत ही बड़े व्यंग्यात्मक ढंग से करती है- ' भगवान चंद्र देव! आपके कमलवत् चरणों में इस दासी का अनेक बार प्रणाम।आज मैं आपसे दो चार बातें करने की इच्छा रखती हूं। क्या मेरे प्रश्नों का उत्तर आप प्रदान करेंगे? कीजिए, बड़ी कृपा होगी।देखो,सुनी अनसुनी सी मत कर जाना। अपने बड़प्पन की ओर ध्यान देना। अच्छा, कहती हूं सुनो।'नष्ट उन्होंने शासन व्यवस्था में ऊपर से नीचे तक के विभाग को आड़े हाथों लिया।वे बिजली विभाग, चिकित्सा विभाग, यातायात विभाग, कानून, कल-कारखानों के मालिक, कारीगर किसी को नहीं बख्शा। चिकित्सा विभाग पर वे व्यंग्य करते हुए चंद्रदेव से कहती हैं कि -'यदि आप कभी भारत भ्रमण करने को आए तो अपने 'फैमिली डाक्टर' धनवंतरी महाशय को और देवताओं के चीफ जस्टिस चित्रगुप्त जी को साथ अवश्य लेते आए। आशा है कि धनवंतरी महाशय यहां के डाक्टरों के सन्निकट चिकित्सा संबंधी बहुत कुछ शिक्षा लाभ कर सकेंगे।यदि प्लेग महाराज (ईश्वर न करे) आपके चंद्रलोक या देवलोक में घूम पड़े, तो वहां से उनको निकालना कुछ समज बात न होगी। यहीं जब चिकित्सा शास्त्र के बड़े-बड़े पारदर्शी उन पर विजय नहीं पा सकते तब भला वहां आपके देवलोक में जड़ी बूटियों के प्रयोग से क्या होगा?' सरकारी संस्थाओं में होने वाले भ्रष्टाचार, सूदखोरी,पद्दोनति के लिए चापलूसी का यथार्थ चित्रण किया है - ' यदि आपको अंग्रेज जाति की सेवा करना स्वीकार हो तो,एक एप्लीकेशन(निवेदन पत्र) हमारे आधुनिक भारत प्रभु लार्ड कर्जन के पास भेज देवें।' तत्कालीन गवर्नर लॉर्ड कर्जन की राजनीति पर वे व्यंग्य करती हुई कहती हैं -' मैं विश्वास करती हूं कि जब हमारे लार्ड हमारे भारत के स्थायी भाग्यविधाता बनकर आवेंगे,तब आप को किसी कमीशन का मेंबर, नहीं तो किसी मिशन में भरती करके वे अवश्य ही भेज देवेंगे। क्योंकि, उनको कमीशन और मिशन, दोनों ही, अत्यन्त प्रिय हैं।

बंगमहिला का परिवार मूल रूप से बंगाली परिवार था और उनकी माता नीरदवासिनी घोष बंगला भाषा की कहानीकार थी। इसलिए उनको बंगला भाषा का भी अच्छा ज्ञान था। उन्होंने बंगला के की प्रसिद्ध लेखक रविन्द्र नाथ ठाकुर, श्रीयुत रामानंद चट्टोपाध्याय, श्रीयुत बैकुंठ दास, श्रीयुत जलधर सेन, श्रीयुत देवेन्द्र कुमार राय, श्रीयुत नारायण सेन, बंकिमचंद्र आदि के लेखों का हिंदी में भावानुवाद किया, जो उस समय के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं

में प्रकाशित हुई। अनुवाद के लिए उन्होंने अधिकतर पारिवारिक, स्त्रियों से संबंधित विषयों का ही चुनाव किया। 'तिल से ताड़', 'मुरला', 'दालिया', 'मातृहीन', 'अपूर्व प्रतिज्ञापालन', 'दान प्रतिदान', 'संसार सुख', 'पतिसेवा', 'गृह' आदि उनकी अनुवादित रचना है। ' स्त्री जीवन की व्यथा कथा को व्यंजित करने वाले गद्यलेख जाति वर्णन व पुरावृत्त संग्रह से संबंधित महत्वपूर्ण रचनाओं की सुंदर बानगी उनकी रचनात्मक सक्रियता की गवाह हैं। 'अण्डमानद्वीप के निवासी' तथा 'नीलगिरी पर्वत के निवासी टोड़ा लोग' जैसे गद्य लेख भारतीय समाज में जनपदीय अध्ययन के शुरुआत का प्रारंभिक स्वर हैं। 'जोधाबाई', 'श्रीयुत रामेन्द्र सुंदर द्विवेदी' और 'अबुल फजल' जैसे ऐतिहासिक पुरावृत्त से संबंधित आलेख बंगमहिला की इतिहास चिंता और अपनी परंपरा के प्रति गहन निष्ठा का प्रमाण हैं।'४

१९०० में सरस्वती का प्रकाशन हुआ। १९०३ में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसके संपादन का भार संभाला। वे १९०३-१९२० तक इसके संपादक रहे। हिंदी क्षेत्र में मानक खड़ी बोली हिन्दी को स्थापित करने में उनका बहुत योगदान रहा है। वे सरल और शुद्ध भाषा के हिमायती थे। वे लेखकों की वर्तनी अथवा त्रुटियों का संशोधन स्वयं करते थे। उन्होंने रचनाओं में हिन्दी खड़ी बोली के प्रयोग पर जोर दिया। बंगमहिला का लेखन भी उसी दौर में चल रहा था। १०९४-१९१७ तक उनका रचनाकाल रहा। उनकी कहानियां एवं लेख सरस्वती पत्रिका में भी छपे थे। उनकी भाषा में अनेक रूप मिलते है। वे अपनी रचनाओं में खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग करती थीं।'वह लड़का तो तुम्हारे घर पर मरा था न, तब मैं उसे कहां ले गई थी। सच तो यह है कि जिस की मौत आ जाएगी, उसे कहीं कोई रोक नहीं सकता।' ५ उन्होंने बड़ी ही सरल शब्दों में जीवन के गूढ़ रहस्य को बताती है। पात्र के अनुरूप वे अपनी रचनाओं में भाषा को ढाल लेती है।जब वे पढ़े-लिखे संभ्रांत परिवार का चित्रण करती हैं तो वहां खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग करती हैं। दुलाईवाली कहानी में जब वंशीधर अपने मित्र से बात करते हैं तो उनकी भाषा खड़ी बोली रहती है-

'वंशीधर बोले- मेरे ऊपर तो जो कुछ बीती,हो बीती,पर वह बेचारी, जो तुम्हारे से गुणवान के संग पहली ही बार रेल से आ रही थी; बहुत ही तंग हुई। उसे तो तुमने नाहक रुलाया।वह बहुत ही डर गई थी।

'नहीं जी! डर किस बात का था? हम तुम दोनों गाड़ी में थे न?'

' हां, पर, यदि मैं स्टेशन मास्टर से इत्तिला कर देता तो बखेड़ा खड़ा हो जाता न?' ६

इसी कहानी में जब महिलाएं आपस में बात करती है तो उनकी भाषा स्थानीय हो जाती है -

'तब पहिली बोली 'हट हम पुछिला न। हम कहां,काहां ऊतरबू हो? आंय ईलाहाबास?'

दूसरी 'ईलाहाबास कौन गांव हो गोईयां?'

पहली 'अरे नाहीं जनलू? पेयाग जी, जहां मनई मकर नहाए जाला।'

दूसरी 'भला पैयाग जी काहे न जानीथ, ले कहै के नाहीं, तोहरे पच के धरम से चार दाई नहाए चुकी हई। एसों हो सोमवारी,अउर गहन, दका,दका,लाग रहा तउन तोहरै काशीजी नाहाय गई रहे।' ७

यहां स्थानीय भाषा का प्रयोग करते हुए इलाहाबाद को ईलाहाबास,प्रयाग को पैयाग,चार बार को चार दाई कर दिया गया है।

उन्होंने अपनी रचना में मुहावरों जैसे 'तिल का ताड़', 'विपद का पहाड़ टुटना', 'पेट में चूहिया कूदना, लोकोक्तियां जैसे 'बिन घरनी घर भूत का डेरा' कहावतें 'बहन के घर भाई कुत्ता, ससुर के घर जमाई कुत्ता' आदि का प्रयोग किया है।

राजनीति, सामाजिक, धार्मिक विषयों पर बात करती है तो उनकी भाषा व्यंग्यात्मक हो जाती है। 'चंद्रदेव से मेरी बात' में राजनीति पर कटाक्ष करती हुई कहती हैं - 'देखो न चंद्रदेव को अमृत दे कर उन्होंने अमर कर दिया तब यदि मनुष्य होकर हमारे अंग्रेज अपने जाति वालों का पक्षापात करें तो आश्चर्य ही क्या? अच्छा यदि आपको अंग्रेजी जाति की सेवा करना स्वीकार हो तो एक एप्लीकेशन(निवेदन पत्र) हमारे आधुनिक भारत प्रभु लार्ड कर्जन के पास भेज देवें।८

हिंदी भाषी क्षेत्र के नवजागरण के संदर्भ में बंगमहिला के लेखन का महत्व इसलिए भी है कि स्त्री विषयक प्रश्नों पर बहुत जागरूक ढंग से लिखती हैं। बंगमहिला न सिर्फ पहली लेखिका हैं बल्कि पुरुष वर्चस्व के बीच सामाजिक- पारिवारिक वैक्तिक मोर्चे पर संघर्ष

करते हुए भी वह अपनी बात को बराबरी के साथ समझाना चाहती है।वह स्त्री विषयक प्रश्नों पर व्यक्तिगत अनुभव के स्तर पर मुख्य होती है लेकिन पारिवारिक मर्यादा को कायम रखना चाहती हैं। उनका लेखन स्त्री उपेक्षा के सवाल को हिंदी प्रदेश के सामाजिक परिवेश में समझने के लिए जरूरी प्रस्तावना है।

संदर्भ

१. नवजागरण और प्रताप नारायण मिश्र, भगवती प्रसाद शर्मा, राधा पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण,१९९४, पृष्ठ -२
२. वही, पृष्ठ -१
३. वही, पृष्ठ -१९
४. भारतीय नवजागरण एक असमाप्त सफर, शंभुनाथ, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली,प्रथम संस्करण,२०२२, पृष्ठ -५५
५. स्त्री लेखनः स्वप्न और संकल्प, रोहिणी अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,प्रथम संस्करण,२०२२, पृष्ठ -१८
६. हिंदी नवजागरण और स्त्री अस्मिता, सुनंदा पराशर, दिल्ली,अनन्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण,२०२२, पृष्ठ -१८
७. रस्साकशी, वीरभारत तलवार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,द्वितीय प्रकाशन,२०१७, पृष्ठ -२१७
८. बंगमहिला नारी मुक्ति का संघर्ष, डॉ भवदेव पांडेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण,२००८, पृष्ठ -१०
९. रस्साकशी, वीरभारत तलवार, वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण,२०१७, पृष्ठ -२१८
१०.बंगमहिला रचना समग्र, संकलन संपादन - अस्मिता तिवारी, यश पब्लिकेशन, नई दिल्ली,२०१८, पृष्ठ -६९
११. वही, पृष्ठ -४८
१२. वही, पृष्ठ -९
१३. वही, पृष्ठ -१३६
१४. वही, पृष्ठ -१३६
१५. वही, पृष्ठ -१६
१६. वही, पृष्ठ -१४४
१७. वही, पृष्ठ -१४४
१८. रस्साकशी, वीरभारत तलवार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण,२०१७, पृष्ठ -२१८
१९. बंगमहिला रचना समग्र, सं-सं- अस्मिता तिवारी, यश पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २०१८, पृष्ठ -१२८
२०. वही, पृष्ठ -१६४
२१. वही, पृष्ठ -१६७
२२. वही, पृष्ठ -१६४
२३. वही, पृष्ठ -१६५
२४. वही, पृष्ठ -२०
२५. वही, पृष्ठ -३१
२६. वही, पृष्ठ -५२
२७. वही, पृष्ठ -५०
२८. वही, पृष्ठ -१६४

नाम- चंचल साह
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
हिंदी विभाग,वाराणसी
संपर्क - ९००२३१०३५७
madhwisah27@gmail.com

'कफ़न' परजीवी संस्कृति का आईना

धर्मवीर सिंह

शोधार्थी - हिंदी विभाग,
दिल्लीविश्वविद्यालय, दिल्ली
मो.- ९८९९७७४७४७
ईमेल - kumardharm30595@gmail.com

राजनैतिक व सामाजिक आंदोलन भारत में समय-समय पर होते रहे है। दयानन्द सरस्वती, राजा राम मोहन राय व महात्मा गांधी जी द्वारा कई आन्दोलन किये गये, चौरा-चोरी और असहयोग आंदोलन आदि इसके उदाहरण हैं । प्रेमचंद इसी समय साहित्य को समाज सापेक्ष बनाने के लिए 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना करते हैं और अपने लेखन में भी नया मोड़ लाते हैं। इस स्थिति को समझते हुए 'विमल थोरात' व 'सूरज बड़त्या' लिखते हैं- 'भारत में सामाजिक परिवर्तन के आंदोलन के साथ ही सामाजिक परिवर्तनकारी साहित्य की भी जरूरत महसूस की जाने लगी थी । थोरात विमल, बड़त्या सूरज, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, रावत पब्लिकेशन (प्रस्तावना से), पृष्ठ-३ .'कफ़न' कहानी का यथार्थ दलित समाज का यथार्थ है इस कहानी में दलित समाज का नकारा पन दिखाना ही केवल प्रेमचंद का मकसद नहीं था वरन् वह नकारा हुए क्यों ? या किस व्यवस्था ने उन्हें नकारा बनाया, इस तथ्य पर विचार करने पर जोर देती है । किस तरह समाज की इंसानियत, दया, करूणा सब जाति और धर्म के द्वारा संचालित हो रहा है इस तरह कफ़न कहानी देश की आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक स्थिति का मूल्यांकन करती है व्यक्तिगत स्वतंत्रता, मानवीय मूल्य, मानवीय प्रतिष्ठा को देखने के लिए सर्वथा नयी दृष्टि प्रदान करती है। कथाकार अमरकांत इस कहानी के संबंध में कहते है- 'असंख्य लोगों की आर्थिक आजादी के बिना न्याय व समता की व्यवस्था कायम नहीं की जा सकती, इसलिए यह कहानी हमारी आर्थिक आजादी के ढांचे, उसके व्यापक क्षेत्र को भी परिभाषित करती है । अमरकांत पृष्ठ-३१ .

कथा सम्राट प्रेमचंद का नाम न सिर्फ भारत वरन् समूचे विश्व में जाना जाता है । हमारे मस्तिष्क में प्रेमचंद का नाम गाँव की मिट्टी की सुगंध साथ-साथ नये शहर की सुगबुगाहट भी लाता है । इस सुगंध में एक सांस लेता हुआ गाँव है जिसमें कजाकी सरीखा डाकिया है, तो हीरा-मोती बैलों की जोड़ी भी है, कहीं समझदार रूपा है, कहीं छोटे हामिद का बड़े काम का चिमटा भी... आदि-आदि । प्रेमचंद तत्कालीन समय की लोक प्रचलित हिन्दी-उर्दू दोनों भाषाओं पर बराबर अधिकार रखते थे। प्रेमचंद ने अपने समाज में रहकर समाज को जीया व गहराई के साथ समझा है इस समझने के साथ ही प्रेमचंद समाज के सामने आवश्यक बदलाओं के चुनाव भी पेश करते गये ।

प्रेमचंद जैसा युग परवर्तक यदा-कदा ही साहित्य की दुनिया में आता है। प्रेमचंद को जितना हिन्दी भाषी लोगों ने पढ़ा, लगभग उतना ही गैर हिन्दी क्षेत्र के लोगों ने भी पढ़ा प्रेमचंद ने साहित्य में मनुष्य के लिए जो स्थान बनाया, परवर्ती समय में भी वह बना रहा । इस राह में कितने साहित्यकारों ने अपना साहित्यकर्म पूरा किया यह बात मैं तथ्य के साथ नहीं कह सकता यद्यपि जैनेन्द्र और रेणू ने इस परंपरा को बचाने में अहम योग किया है। न केवल हिन्दी साहित्य अपितु भारत के इतिहास में भी

प्रेमचंद के रचित साहित्य को अहम समझना चाहिए। यदि कल कोई प्रेमचंद को साहित्य और समाज से मिटा दे तो यह हमारे समाज व संस्कृति की भारी क्षति होगी ।

प्रेमचंद ने अपने समय की मांग को समझते हुए साहित्यकर्म किया है। इस बात को विस्तार देते हुए प्रेमचंद के हवाले से कंवल भारती जी कहते हैं- 'संस्कृति अमीरों, पेटभरों का व्यसन है। दरिद्रों के लिए प्राण रक्षा ही सबसे बड़ी समस्या है। उस संस्कृति में क्या था जिसकी वे रक्षा करते, जनता मूर्छित थी और उस पर धर्म और संस्कृति का मोह छाया हुआ था, ज्यों-ज्यों उसकी चेतना जागृत होती गयी, वह देखने लगी कि यह संस्कृति लुटेरों की संस्कृति थी, जो राजा बनकर, विद्वान बनकर, जगत सेठ बनकर जनता को लूटती है। प्रेमचंद के हवाले से कंवल भारती, लेख- दलित साहित्य की अवधारणा, युद्धरत आम आदमी, अंक ४१-४२. भारतीय समाज में कईं माइनों में हम प्रेमचंद को प्रासंगिक मान सकते हैं, गाँव हो या शहर सबकी रचना उन्होंने बड़ी बारीकी से की है। आज भी यदि हम प्रेमचंद को प्रासंगिक मानते हैं, तो इसलिए कि प्रेमचंद के रचना संसार में दलितों, शोषितों के प्रति आए दिन हो रही नृशंशता का यथार्थ और मार्मिक चित्रण मिलता है। दलितों के प्रति हो रही घटनाओं का सिलसिला आज भी जारी है, भले ही वह ज्यों का त्यों उसी रूप में न हो किन्तु इसके होने की संभावना को नकारा नहीं जा सकता ।

मैं यहाँ कांतीमोहन के शब्दों में कहूँ तो 'फिलहाल इस विमर्श के पूरे विस्तार को छोड़ भी दें और अपनी बात दलित विमर्श के दायरे में ही रखें तो भी हमें इस बात पर तो ध्यान देना ही होगा कि तमाम सामाजिक गत्यात्मकता और परिवर्तन की अंतरंजित घोषणाओं के बावजूद हमारे समाज में दलित समस्या की निरन्तरता अभी भी बनी हुई है। यदि ऐसा न होता तो दलित समस्याओं के साथ-साथ उसके संदर्भ में प्रेमचंद भी अप्रासंगिक या अल्प प्रासंगिक हो गये होते। डॉ. कांतीमोहन , प्रेमचंद और दलित विमर्श , स्वराज प्रकाशन पृष्ठ-१२ .

सृष्टि का नियम है हम जैस पाते हैं, वैसा ही वापस लौटाते है । यदि हम सृष्टि का अतिशयता के साथ दोहन करेंगे तो फिर प्राकृतिक आपदा से भी संघर्ष करना ही पड़ेगा। ठीक वैसे ही हमारा समाज भी काम करता है, बहुत कम मनुष्य ऐसे होते हैं जो खार(कड़वा) खाकर भी मीठा उगल दें। ठीक यही बात हम कफ़न में भी देखते हैं घीसू, माधव भी यहाँ ऐसी ही स्थिति में हैं। घीसू, माधव जैसे लोगों के पास संतोष व धैर्य के लिए कुछ भी नहीं बचा है, समाज के नियम व संयम के कानून उनके लिए नहीं हैं। उनको मार-मार कर वहाँ खदेड़ दिया गया, जहां परावलंबी बनने के लिए वे मजबूर हैं और मार खाना, गाली सुनना, कर्ज से लदे रहकर भी चिंता मुक्त रहना अब उनकी आदत में आ चुका है' कथाकार अमरकांत इस विषय में कहते हैं - 'सदियों से घीसू-माधव के कुनबे को इस दुर्गति को अंगीकार करने का अभ्यास है और निरंतर अभ्यास ही दूसरी प्रकृति बन जाता है' डॅअमरकांत , लेख-, संपादक-पल्लव, कफ़न एक पुनः पाठ, पृष्ठ- २८ .

इसी कड़ी में आगे बढ़ते हुए 'विमल थोरात' और 'सूरज बड़त्या' ने साहित्य के इस विषय में कहा है- 'दलित कविता केवल कविता नहीं है वह सदियों पुरानी विषमतामूलक सनातनी परंपराओं को दफन करने की एक विचारधारात्मक कार्रवाई है। चेतनागर्भ यह मानव अधिकारों का संघर्ष उस अमानुषिक व्यवस्था के विरुद्ध किया जा रहा है जो मानव गरिमा को गिराकर परजीवी संस्कृति का निर्माता है। डथोरात विमल, बड़त्या सूरज, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, रावत पब्लिकेशन (भूमिका से सुखदेव थोरात), पृष्ठ-१ .

कफ़न कहानी में अजीब सी विडंबना दिखाई देती है और दुख की बात यह है कि वह विडंबना अभी तक बनी हुई है। घीसू का यह विश्वास कि हमारा समाज धार्मिक कर्मकांड में अखंड विश्वास रखता है, भले ही वह जातीयता के कारण इंसानियत में विश्वास न रखता हो । कहानी का एक प्रसंग यहाँ सटीक लगता है, बुधिया प्रसव पीड़ा में कराह रही है दोनों बाप-बेटे द्वार पर बैठे हैं कोई इंतजाम करने नहीं दौड़ते क्योंकि वे जानते हैं की दवा-दारू के लिए उनके आस-पास बसा समाज उन्हें पैसे नहीं देगा' इस कहानी को कहानी न कहकर कड़वा सच कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। उनके पास क्या है ? वे जानते हैं कि वे समाज पर निर्भर हैं और समाज भी अपनी विपन्नता व भिखमँगई से परम संतुष्ट है।

एक ऐसा समाज हमारे आस-पास ही है जिसे किसी इंसान के जीने या मरने से कोई सरोकार नहीं, हां

उसे सरोकार है तो महज इस बात से कि कोई व्यक्ति धर्म के आडंबरों से बच न जाये ईक्कीसवीं सदी में आकर भी प्राय हमें यह सुनने को मिल जाता है कि फलां पुरुष अपनी पत्नी के बच्चे को अपना बच्चा नहीं मानता, फलां पुरुष ने अपनी पत्नी को मर जाने की हद तक मारा और छोड़ दिया बिना इलाज मरने के लिए। यह बात तो हम सभी वर्णों के समाज में देखते हैं। जिस जाति को लेकर यह कहानी लिखी गई है उस जाति के बच्चे जब पूर्वाग्रहों से ग्रसित बाकी वर्णों के लोगों के संपर्क में आते हैं तो वह सिर्फ अपमान जनक शब्द और गालियां ही पाते हैं। अपनी जाति व अपने लिए गलियों के आदि हो चुके मनुष्य के लिए यह गालियां एक मजाक की तरह बन कर रह जाती है। इस तरह धीरे-धीरे दलित जातियों के लोगों को इन उपमानों में कोई बुराई नजर नहीं आती।

'शिव कुमार मिश्र' इसके संबंध में कहते हैं- 'कफ़न कहानी वस्तुतः परजीवियों पर केंद्रित कहानी है और यह जरूरी नहीं की इसका संबंध दलित वर्ग से ही लिया जाए। परजीवी किसी भी वर्ग के हो सकते हैं। बहुत साफ तरीके से प्रेमचंद कहानी में बताते हैं कि ये परजीवी आसमान से नहीं टपकते, ये व्यवस्था और सामाजिक स्थितियों की उपज होते हैं। शिव कुमार मिश्र लेख , .

अभी तक यह समाज विरोध न कर पाने की स्थिति में ही बना हुआ। इस तरह वह इन्हीं गालियों का प्रयोग अपने से कमजोर जाति के लोगों के लिए करने लगता है, और इसी तरह के अपशब्दों का प्रयोग फिर वह अपने घर के लोगों व छोटे बच्चों के लिए भी करने लगता है। यह अपशब्दों का चक्र जो अपनी जाति से छोटी जाति के लोगों के लिए प्रोयोग में लाया जाता रहा है और उच्च जाति के लोगों में दलितों के प्रति अभी भी जड़ जमाये बैठी हिंसा के लिए, बहुत हद तक तक यह कुचक्र जिम्मेदार है।

दरअसल यहाँ डॉ. अंबेडकर के शब्दों से स्थिति और साफ हो जाएगी। डॉ. अंबेडकर अपने लेख 'मुक्ति कोन पथे' में कहते हैं -'सैंकड़ों साल उच्च वर्ग की सेवा में बिताने से, सैंकड़ों सालों से उपहास, तिरस्कार को चुपचाप सहन करने से आप उन्हें जवाब देने की, प्रतिकार करने की हिम्मत हार चुके हैं। डॉ. अंबेडकर, लेख मुक्ति कोन पथे, संपादक- शरणकुमार लिंबाले, दलित साहित्य वेदना और विद्रोह, पृष्ठ-७१.चूंकि इस बात में कोई दो राय नहीं है कि दलित समाज से संबंध रखने वाला कोई गरीब व्यक्ति, चाहे वह कोई काम करे, कहीं काम करें उसका जातीय प्रताड़ना से सामना हो ही जाता है। ऐसे में वह व्यक्ति या तो अपने कार्यस्थल पर झगड़ा कर बैठेगा या फिर वहाँ से काम छोड़ देगा। इन दोनों स्थितियों से परे एक और स्थिति बनती है जिसका जिक्र 'कफ़न' कहानी में किया गया है। अर्थात ऐसी स्थिति जहां उसे अपने जातीय उत्पीड़न का एहसास होना ही बंद हो जाएगा, या कहूँ की उसके विरोध करने की क्षमता ही समाप्त हो जाएगी। अतः अभी तक दलित समाज के सामने स्वतंत्रता, सम्मान व बराबरी से जीने के लिए कोई पुष्ट मार्ग नहीं खुला है।

संदर्भ सूची

थोरात विमल, बड़त्या सूरज, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, रावत पब्लिकेशन (प्रस्तावना से), पृष्ठ-३

अमरकांत पृष्ठ-३१

प्रेमचंद के हवाले से कंवल भारती, लेख- दलित साहित्य की अवधारणा, युद्धरत आम आदमी, अंक ४१-४२

डॉ. कांतीमोहन , प्रेमचंद और दलित विमर्श , स्वराज प्रकाशन पृष्ठ-१२

अमरकांत , लेख-, संपादक-पल्लुव, कफ़न एक पुनः पाठ, पृष्ठ- २८

थोरात विमल, बड़त्या सूरज, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, रावत पब्लिकेशन (भूमिका से सुखदेव थोरात), पृष्ठ-१

शिव कुमार मिश्र लेख ,

डॉ. अंबेडकर, लेख मुक्ति कोन पथे, संपादक- शरणकुमार लिंबाले, दलित साहित्य वेदना और विद्रोह, पृष्ठ-७१

शोधार्थी - हिंदी विभाग,
दिल्लीविश्वविद्यालय, दिल्ली
मो.- ९८९९७७४७४७
इमेल - kumardharm30595@gmail.com

‘कहब त लग जाई धक से’ आर्टिकल-१५ फ़िल्म में दलित सरोकार

सुरेंद्र कुमार

शोधार्थी,हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय
मो - ९९७१५८७२६८
ईमेल- kumarsurender246@gmail.com

संविधान का निर्माण करते समय संविधान सभा ने इस बात का पूरा ख्याल रखा था कि, इसमें समाज के हर वर्ग की समान भागीदारी सुनिश्चित हो सके। संविधान के द्वारा एक ऐसी व्यवस्था करने की कोशिश थी जिसमें हर वर्ग, धर्म और समुदाय के लोग सम्मान के साथ जी सकें। न्याय, स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति, समता, बंधुता ये मात्र कोरे शब्द भर नहीं हैं, बल्कि आज़ादी के बाद के देश में इन शब्दों को चरितार्थ होना था। लेकिन आज हम समाज में हाशिये के लोगों की जिस स्थिति को देख रहे हैं इसकी आशंका डॉ. भीमराव अंबेडकर ने संविधान निर्माण के समय ही जता दी थी। २५ नवंबर १९४९ को संविधान सभा की कार्यवाही की समाप्ति पर अपना समापन भाषण देते हुए डॉ. भीमराव अंबेडकर ने जो बातें कहीं थीं उनके दूरगामी महत्व थे। डॉ. भीमराव अंबेडकर के शब्द थे, ‘हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि भारतीय समाज में दो चीज़ें सिरे से नदारद हैं। और इनमें से एक है समानता। सामाजिक स्तर पर हिंदुस्तान में एक ऐसा समाज है जहाँ श्रेणीबद्ध असमानता के सिद्धांत को माना जाता है, जिसका मतलब है कुछ का ऊपर उठना और बाक़ी सबका नीचे धकेला जाना। आर्थिक स्तर पर हमारे यहाँ ऐसा समाज है जिसमें कुछ के पास अकूत दौलत है जबकि बाक़ी अधिकतर घनघोर गरीबी में अपना जीवन-यापन करते हैं। इस २६ जनवरी, १९५० को हम हम विरोधाभासों के दौर में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति में हम समता स्थापित कर लेंगे, लेकिन जीवन के सामाजिक और आर्थिक पक्ष में असमानता बनी रहेगी।’

डॉ. भीमराव अंबेडकर की कही हुई बात आने वाले समय में बिल्कुल सही साबित हुई। सामाजिक रूप से हाशिये में रहने वाले लोगों को बराबर का स्थान देने के लिए संविधान में जिन प्रावधानों को सुनिश्चित किया गया उनकी उपेक्षा आज भी हो रही है। दलितों के साथ होने वाले दुर्व्यवहार और उनके शोषण को देखते हुए यह कहते हुए संकोच होता है कि हम एक आज़ाद और समतामूलक समाज में रहते हैं। आज भी दलित जातिवाद का दंश झेल रहे हैं। हमारी सामाजिक व्यवस्था ने बड़ी चतुराई से सामाजिक हैसियत को जाति से जोड़ा जिसकी आड़ में

सदियों से दलितों का शोषण होता रहा है। किसी घटना को ख़बर की तरह सुनने और उसे महसूस करने में फ़र्क़ होता है। देश के हर कोने में रोज़ाना ऐसी घटनाएं देखने-सुनने को मिलती हैं जो दलित विरोधी है, उनके अपमान से जुड़ी हुई हैं और भेदभावपूर्ण व्यवहार से जुड़ी हुई है। आश्चर्य की बात है कि इन घटनाओं को इतना सामान्य मान लिया गया है कि कोई इसपर बात तक नहीं करता। ऐसे में जरूरी हो जाता है किसी ऐसे माध्यम के द्वारा लोगों तक इन घटनाओं को रखना जो प्रभावशाली हो और जिसका असर दिखाई पड़े। साहित्य और सिनेमा का भी यही काम होता है कि किसी बात को उसके पूरे असर के साथ प्रस्तुत किया जाए। साहित्य के क्षेत्र में अदम गोंडवी की ग़ज़ल 'आइए महसूस करिए ज़िंदगी के ताप को' और नागार्जुन की कविता 'हरिजनगाथा' ने दलित समाज को जिस नज़र से हमें दिखाया है उसे पढ़कर महसूस होता है कि देश में समता और सम्मान से जीने का जो हक़ हमें संविधान देता है वह कहीं काग़ज़ों में दर्ज एक बात भर बन कर तो नहीं रह गई।

हिन्दी सिनेमा ने भी दलित जीवन से जुड़ी कई समस्याओं को अपना विषय बनाया और उनपर सार्थक फ़िल्मों का निर्माण किया। इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में तेजी से अस्मिता विमर्श का उभार हुआ है जिसने सिनेमा के लोगों को इस बात के लिए प्रेरित किया है कि वे भी अब नैतिक-सामाजिक ज़िम्मेदारी को उठाते हुए सार्थक फ़िल्मों का निर्माण करें। अनुभव सिन्हा एक ऐसे ही निर्देशक हैं जिनकी फिल्मी यात्रा बताती है कि उन्होंने समय और समाज को ध्यान में रखा। अपने एक साक्षात्कार में वे कहते हैं- 'मेरे लिए सफलता की परिभाषा बदली है, हमारी ज़िम्मेदारी है कि हम समाज को भी मुड़-मुड़ कर देखते रहें।' अनुभव सिन्हा ने इक्कीसवीं सदी की कुछ बेहतरीन फ़िल्मों का निर्माण किया है जिसमें स्त्री और दलित विमर्श को एक नए परिप्रेक्ष्य में खड़ा किया गया है। आर्टिकल-१५ अनुभव सिन्हा की ऐसी ही एक फ़िल्म है जिसने न केवल व्यावसायिक स्तर पर सफलता हासिल की बल्कि अपने संदेश को दर्शकों तक पहुंचाने में भी कामयाब रही है। हम शुरू में ही संविधान की बात कर चुके हैं कि कैसे आज संविधान को नज़रंदाज़ करके हर क्षेत्र में दलितों का शोषण किया जा रहा है। वे जो दलित नहीं है बड़ी आसानी से कह सकते हैं, और कहते हुए पाए जाते हैं कि अब जातिगत भेदभाव उतना नहीं रहा लेकिन रोज़ अखबारों में छपती घटनाएं इस बात की पुष्टि करती हैं कि हम किसी भ्रम में जी रहे हैं क्योंकि आज भी समाज में दलितों की स्थिति जस की तस बनी हुई है।

दिलचस्प बात है कि आर्टिकल-१५ फ़िल्म का नायक सवर्ण समाज से आता है, जो विदेश से पढ़ाई कर के लौटा है। एक पुलिस अधिकारी के रूप में उसकी पोस्टिंग एक ग्रामीण इलाक़े में होती है। फ़िल्म की शुरुआत में ही एक लोकगीत बज रहा है, 'कहब त लग जाई धक से' मानो निर्देशक पहले ही स्पष्ट कर देना चाहता है कि फ़िल्म का उद्देश्य हमारा मनोरंजन करना नहीं है बल्कि वह एक ऐसी बात करने जा रहा है जो तीखी और चुभने वाली है। 'सदियों का संताप' जिसे दलित झेलते रहे हैं उस यथार्थ को कलात्मक तरीक़े से प्रस्तुत करना इसका उद्देश्य है। फ़िल्म का नाम ही स्पष्ट कर देता है कि इसमें संविधान की बात होने वाली है। संविधान का आर्टिकल-१५ कहता है कि, किसी भी व्यक्ति के साथ धर्म,जाति,वंश,लिंग जन्म स्थान के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जा सकता। लेकिन यह फ़िल्म दिखाती है कि कैसे आज़ादी के इतने सालों बाद भी संविधान में बात सिर्फ़ एक काग़ज़ी बात लगती है। अयान रंजन एक युवा पुलिस अधिकारी है जो धीरे-धीरे ग्रामीण व्यवस्था में व्याप्त जातिवाद और भेदभाव को समझता है। फ़िल्म में सवर्ण किरदारों के द्वारा हमेशा दलितों के लिए 'ये लोग', 'इन लोगों' जैसे शब्द इस्तेमाल किए जाते हैं जैसे उनकी अपनी कोई पहचान नहीं है। इसी फ़िल्म का एक संवाद यह दर्शाता है कि कैसे निचले तबके से आने वाले लोगों को सिर्फ़ अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए प्रयोग किया जाता रहा है। निषाद कहता है- ' हम कभी हरिजन हो जाते हैं, कभी बहुजन हो जाते हैं, बस जन नहीं बन पा रहे, कि जन गण मन में हमारी गिनती हो जाए।' जब भारत आज़ाद हुआ और संविधान का निर्माण हो रहा था तभी इस बात की पूरी आशंका थी कि, आने वाले समय

में ' हम 'एक व्यक्ति,एक वोट' और 'एक वोट, एक भार,' के सिद्धांत को अपनायेंगे । लेकिन जीवन के सामाजिक और आर्थिक पक्ष में हमारी सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं की वजह से हम 'एक व्यक्ति,एक महत्व,' के सिद्धांत को नकारते रहेंगे ।' और आज यह बात सिद्ध नज़र आती है ।

तीन बच्चियों के साथ हुए बलात्कार और उनके लापता होने से इस फ़िल्म की शुरुआत होती है । अयान रंजन जो एक सवर्ण पुलिस अधिकारी है लेकिन उसके मन में जातिगत भेदभाव वाली भावना नहीं है । वह पूरी ईमानदारी से इस केस को सुलझाने की कोशिश में लग जाता है और इसी प्रक्रिया में वह उन बातों से अवगत होता है जो असल में हमारे सम्माज की सच्चाई है । जगह जगह दलितों का शोषण हो रहा है । कुछ तस्वीरें दिल दहला देने वाली होती हैं, पेड़ पर लटकी दो बच्चियों की लाशें किसी को भी परेशान कर सकती हैं । लेकिन ये घटनाएं किन लोगों के साथ हों रही हैं और व्यवस्था का उसके जवाब में क्या रवैया है इसकी पड़ताल यहाँ पर होती है । इस फ़िल्म में बार-बार ऐसे दृश्य आते हैं जिन्हें संवादों की ज़रूरत नहीं है । एक जगह कुछ दलितों को सड़क के बीचोंबीच गाड़ी में बांधकर पीटा जा रहा है, उसका सिर्फ़ यही दोष है कि उसने मंदिर में बैठकर खाना खाया है । मयंक जो सवर्ण समाज से आता है और बचपन में निषाद के साथ पढ़ा होता है और अब वह पुलिस व्यवस्था का हिस्सा है वह एक जगह यह तर्क देता है कि 'प्रॉब्लम हर कम्युनिटी में होती है' इसके जवाब में निषाद कहता है कि ' प्रॉब्लम हर कम्युनिटी में होती हैं, लेकिन मंदिर में घुसने से तुम्हारी हड्डियाँ नहीं तोड़ी जातीं मयंक'। भारतीय समाज में अब दलितों के साथ होने वाली घटनाओं को इतना आम मान लिया गया है कि किसी को इससे फ़र्क़ नहीं पड़ता । कोरोना काल के दौरान की ही ख़बर है कि पानी की कमी के कारण जो पानी की टंकी गाँव जाती है सवर्ण लोग दलितों को उसे छूने भी नहीं देते । उत्तराखंड की कुछ ही समय पहले की घटना है कि प्राइमरी स्कूल में दलित महिला के द्वारा बनाए गए खाने को सवर्ण बच्चों ने खाने से मना कर दिया और उस महिला को भी बाद में नौकरी से निकाल दिया गया । मंदिर में प्रवेश के कारण दलितों की पिटाई की घटनाएं आम हैं । आज भी दलितों को घोड़े में बारात निकालने के लिए पुलिस का सहारा लेना पड़ता है क्योंकि यह सवर्ण समाज को सहनीय नहीं हैं । ऐसे में अगर हम समानता की बात करते हैं तो वह झूठी है । इस फ़िल्म की सबसे बड़ी विशेषता है संवेदनशील घटनाओं को पूरे यथार्थ के साथ प्रस्तुत करना जो लोगों को झकझोरे ।

फ़िल्म की पूरी कहानी में हम संविधान और उसके मूल्यों की उपस्थिति को महसूस करते हैं । अयान जब धीरे-धीरे दलितों के साथ होने वाले शोषण से अवगत होता है तो उसके अंदर एक परिवर्तन आता है । सदियों से दलितों के साथ हो रहे शोषण को महसूस करते हुए वह सवर्ण जाति का होने के नाते एक ग्लानि से भर जाता है । इस फ़िल्म की भी यही कोशिश है उन लोगों को ये बात समझ आए जो ये मानने के लिए तैयार नहीं की अब भी ऐसा होता है । हमारे देश में जिसके पास सत्ता की ताकत है या जो सामाजिक रूप से मजबूत है उन्हीं के हाथों यह देश चलाया जा रहा है, लेकिन यह फ़िल्म संविधान की बात करती और कहती है की देश को संविधान से चलाने की ज़रूरत है । फ़िल्म में एक क़िरदार कहता है कि 'ये लोग उस किताब (संविधान) की नहीं चलने देते । इसके जवाब में अयान कहता है कि 'उस किताब की चलानी पड़ेगी, उसी से चलेगा ये देश' । इतनी दृढ़ता से इस बात को रखना दिखाता है कि जिस संविधान को हम अभी तक मात्र एक किताब मानते रहे हैं, विशेषकर दलितों के अधिकारों के मामले में, अब उसी के हिसाब से देश चलना चाहिए । इस फ़िल्म की शुरुआत और अंत प्रतीकात्मक है। फ़िल्म की शुरुआत में एक अंग्रेज़ी गाना बज रहा है 'The answer is blowing in the wind' यह मानो एक सवाल है जिसका उत्तर किसी के पास नहीं है । सवाल यह की आज़ादी के इतने सालों बाद भी दलितों के साथ होने वाला अत्याचार क्यों नहीं रुक रहा । क्यों आज भी दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जा रहा है । दलित बाक़ी समाज के साथ खड़ा हो सके इसके लिए

संविधान में जो प्रावधान हुए उनकी अवहेलना कैसे हो रही है। पूरी फ़िल्म में दिखाया जाता है कि कैसे प्रत्येक व्यक्ति जातीय गौरव का शिकार है, उनकी हर बात में जाति शामिल रहती है। लेकिन फ़िल्म के अंत में अयान रंजन सड़क के किनारे लगी एक दुकान वाली अम्मा से पूछता है,- 'कौन जात हो अम्मा', और इसका जवाब ट्रक की आवाज़ में खो जाता है और सभी पात्र हँसने लगते हैं। यह एक उम्मीद है कि आने वाले समय में सब समान होंगे और जाति जैसी किसी चीज का अस्तित्व नहीं होगा। लेकिन उसके लिए एक लंबे संघर्ष की ज़रूरत है। जातिगत शोषण इतने महीन रूप में समाज में व्याप्त है कि उसे जड़ से खत्म करने के लिए अभी एक लंबी लड़ाई बाक़ी है और उसका सबसे बड़ा हथियार है संविधान जिसकी बात यह फ़िल्म करती है।

ऐसा नहीं है की दलित विमर्श से संबंधित और फ़िल्में नहीं बन रही हैं, लेकिन अनुभव सिन्हा द्वारा इस फ़िल्म को बनाना सुखद है। अनुभव सिन्हा वही फिल्मकार हैं जिन्होंने रा-वन जैसी व्यावसायिक फ़िल्म बनाई थी और कुछ सालों बाद अगर वे सामाजिक सरोकारों से संबंधित फिल्मों की और लौटे हैं तो ये एक फिल्मकार के रूप में उनकी नई पारी है। आर्टिकल १५ के सहलेखक गौरव सोलंकी हैं जो अपनी कविताओं और कहानियों के लिए पहले ही चर्चित हो चुके थे, और ये कहना ठीक होगा की इस फ़िल्म की स्किपट में भी गौरव सोलंकी ने बड़ी बेबाक ढंग से अपनी बात को रखने की कोशिश की है और दर्शकों के मन में जिस असर को पैदा करने की ज़रूरत थी उसमें वो कामयाब भी रहे हैं। आर्टिकल १५ के बाद अनुभव सिन्हा 'थप्पड़' और 'मुल्क' जैसी फ़िल्में भी बना चुके हैं जो क्रमशः स्त्री विमर्श और सांप्रदायिक समस्या के विषय को मजबूती के साथ उठाते है। कोई भी कला माध्यम प्रतिरोध का प्रमुख हथियार बन सकता है, पिछले कुछ समय के सिनेमाई अनुभव इस बात की पुष्टि करते हैं, और आर्टिकल १५ इसका एक सशक्त उदाहरण है।

संदर्भ सूची-

हिन्दी सिनेमा दलित आदिवासी विमर्श, संपादक. प्रमोद मीणा, अनन्य प्रकाशन, पृष्ट,७३

सौरभ द्विवेदी की अनुभव सिन्हा से बातचीत, साभार लल्लनटॉप

ओमप्रकाश बाल्मीकि का एक कविता संग्रह

फ़िल्म आर्टिकल-१५ का संवाद

हिन्दी सिनेमा दलित-आदिवासी विमर्श, संपादक, प्रमोद मीणा, अनन्य प्रकाशन, पृष्ठ,७४

फ़िल्म आर्टिकल १५ का संवाद

सुरेंद्र कुमार

शोधार्थी,हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय
मो - ९९७१५८७२६८
ईमेल-
kumarsurender246@gmail.com

समीक्षात्मक आलेख

ज्योतिपंखी गीत

डॉ.हरिश्चन्द्र वर्मा

एम०ए०, पीएच०डी० (हिन्दी-संस्कृत), डी०लिट्०
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,
डीन, मानविकी संकाय,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक।

कृतिः 'पंख होते हैं समय के'
कवि : राजेन्द्र गौतम

लय ही वह मूल तत्त्व है जो हजारों वर्षों से कविता को गद्य से अलगाता आया है। लय के विभिन्न साँचे ही भिन्न-भिन्न छन्दों के नामों से अभिहित किये जाते हैं। यह ठीक है कि वैचारिक गद्य भावात्मक गद्य से भिन्न होता है, किन्तु न वैचारिक गद्य कविता है और न ही भावात्मक गद्य। गद्य अपने हर रूप-रंग में गद्य ही रहता है। कविता कविता है और गद्य गद्य। इस मोटे से तथ्य या सत्य को ईमानदारी से स्वीकारना होगा। जिस मानसिकता से गद्य जन्म लेता है, कविता उससे भिन्न मानसिकता की सृष्टि है। कविता में घटित अनुभूति का जन्म ही लयात्मक या छन्दोबद्ध रूप में होता है। मुक्तछन्द कविता भी छन्द से मुक्त नहीं होती। मुक्तछन्द कविता के पुरोधा 'निराला' ने 'परिमल' की भूमिका में स्पष्ट लिखा है कि 'मुक्तछन्द कविता' की रचना वही कवि कर सकता है जिसका छन्द पर अच्छा अधिकार हो ! मुक्तछन्द कविता के समर्थक टी० एस० ऐलियट की मान्यता है कि स्वच्छन्दतम कविता में भी कोई-न-कोई छन्द समाहित रहता है। तथा अयोग्य और प्रतिभाहीन रचनाकार ही छन्द या लय से मुक्ति की हिमायत करते हैं। जनतन्त्र के नाम पर टूटती हुई मर्यादाओं के इस युग में छन्द से मुक्ति को एक सुविधा के रूप में भोगा जा रहा है। इस सुविधा को भोगने वालों में सबसे बड़ी संख्या उन लोगों की है जो श्रम, साधना, संघर्ष के नारे उछालने की कला में दक्ष हैं और उत्कृष्ट गीतकारों को शिल्पधर्मी, रसलोलुप, लिजलिजी अनुभूतियों के वाहक तथा सामन्ती प्रवृत्तियों से ग्रस्त घोषित करते नहीं थकते।

आधुनिक युग में जब जीवन-मूल्यों और कला-मूल्यों का क्रमशः विघटन होता जा रहा है और कविता की अस्मिता संकटग्रस्त है, श्री राजेन्द्र गौतम द्वारा रचित 'पंख होते हैं समय के' शीर्षक गीत-संग्रह निश्चय ही कविता के अँधेरे कुटीर में छन्दों के दीपक जलाने के संकल्प का उद्घोष करता है। श्री गौतम ने मुक्त गद्य की मीनारों पर आसीन उन कीर्तिकामी, सुविधाभोगी रचनाकारों पर बहुत ही सटीक कटाक्ष किया है जो गद्य की पंक्तियों को तोड़कर उन्हें सीढीदार रूप में प्रस्तुत करने में ही कवि-कर्म की इतिश्री समझते हैं और कविता के नाम पर गद्य की खपत करके भी न केवल धोखाधड़ी के अपराध से मुक्त रहते हैं, वरन् अपने दलगत प्रचार और प्रभाव के बल पर अभिनन्दित भी होते हैं। इस संदर्भ में श्री राजेन्द्र गौतम की पंक्तियाँ कितनी प्रासंगिक और धारदार हैं :

तुम तो बैठे हो मुक्त गद्य की मीनारों पर जाकर
पर झोंपड़ियों में छन्दों के हम दीप जलाते हैं।

यों तो झोपड़ियों और उनमें जीवन बिताने वालों के प्रति सहानुभूति दिखाने का ठेका एक विशेष वर्ग ने ले रखा है और अब इस ठेकेदारी ने साम्प्रदायिक रूप ले लिया है, तथापि श्री गौतम की रचनाएँ आम आदमी के दर्द से स्पन्दित और आन्दोलित हैं। उनके गीतों का शिल्प पीड़ित-शोषित जनता की आहत संवेदना से जन्मा है। उनकी संवेदना जन-मानस की पीड़ा से बिद्ध है - 'हम टायर के जूतों-से छीजे संवेदन पहने हैं।' श्री गौतम छन्दों के दीप जलाकर कुंकुमरची रागिनी गुंजित करके जन-अभिषेक की अधूरी कथा को पूरी करने और गाँव भर के अजाने दर्द से जन-जन को अवगत कराने में ही अपनी सर्जना की सच्ची सार्थकता मानते हैं :

छन्द के दीपक
नहीं अब तक जले
सरिता तरंगों पर
रागिनी कुंकुमरची
गूंजी नहीं
क्यों सब दिगन्तों से
कथा जन-अभिषेक की
हर बार क्यों रहती अधूरी
क्या त्वचा संकल्प की छिदती
रहेगी गरल दन्तों से
क्या अजाना ही रहेगा
गाँव भर का दर्द सिसकते सीवान है
जिसको रहे गुहरा।

श्री राजेन्द्र गौतम के गीतों की सबसे अधिक उल्लेखनीय विशेषता है, उनमें निहित बोध की वह गहराई जो मानव-प्रकृति और मानवेतर प्रकृति को एक ही संवेदना-सूत्र में गूंथ देती है। जिस प्रकार मानवीय पीड़ा से कवि के छन्द फूटते हैं, उसी प्रकार प्रकृति की पीड़ा के कारण वन के पोर-पोर में नव छन्दों के पत्ते

फूट पड़ते हैं--
चुप्पी के दंशों से ऐंठे,
चीड़ों के थे गात।
वन के पोर-पोर में फूटे,
नव छन्दों के पात।

कवि ने प्राकृतिक सन्दर्भों और मानवीय संवेदनाओं के मिश्रण से एक अनूठी अभिव्यक्ति-पद्धति विकसित की है। ऐसे स्थलों पर विचलन, मानवीकरण जैसी भाषिक एवं भावात्मक क्षमताओं का सहज समन्वय हो गया है :

सन्नाटा
नुक्कड़ पर बैठा
अपना सिर धुनता
बस्ती में घुसते
जंगल की गुर्राहट सुनता
सड़कों पर
लेटे सायों को
कर्फ़्यू रहा कुचल।

बस्ती में प्रवेश करते जंगल (पाशविक हिंस्रता) की गुर्राहट के आतंक से सन्नाटे का छाना और उसका विवशतावश सिर धुनना कितना सार्थक है ? आतंक के कारण सभी लोग घरों में बन्द हैं। सड़कों पर सिर्फ वृक्षों और मकानों के साये हैं जिन्हें कर्फ़्यू वाले बन्दूकधारी सिपाहियों के घोड़े अपनी टापों से कुचल रहे हैं। सन्दर्भ और संवेदना के संयोजन से एक अनूठे बिम्ब की सृष्टि हुई है।

श्री राजेन्द्र गौतम की सवेदनाएँ गहन और जीवन्त हैं तथा शिल्प भाषिक क्षमता के विविध आयामों के संयोजन से निर्मित है। भाषिक क्षमता का प्रबलतम रूप हैं सादृश्य-विधान इस दृष्टि से श्री गौतम को विरल सफलता मिली है। आतंक और हिंसा के परिवेश में रिश्तेदार भी सहायता करने से मुख मोड़ लेते हैं। आत्मीयता के तल से हिल उठे रिश्तों के सन्दर्भ को दहलते पुलों के प्रसंग से जोड़ना चयन और संयोजन की मौलिकता को प्रमाणित करता है :

बारूदी हलचल
रिश्तों के पुल भी
उठे दहल।

सामान्यतः प्रकृति के प्रसंगों का उपयोग मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति को उत्कर्ष प्रदान करने की दृष्टि से किया जाता है, किन्तु श्री गौतम के अनेक गीतों में प्राकृतिक परिवेश के साथ मानवीय परिवेश का इतना घनिष्ठ तादात्म्य है कि प्राकृतिक परिवेश भी मानवीय संकटों, सन्त्रासों से युक्त एक नगरीय जीवन की प्रामाणिक प्रतिलिपि प्रतीत होता हैः

एक दहशत से घिरा
जंगल खड़ा खामोश
पेड़ कब तक यहाँ
क़ायम रख सकेंगे होश
रोज जिन्दा देह कटती है
बन रहे शहतीर।
रात-सी लम्बी गुफाओं में
किरण की
सड़ रही है लाश।

श्री गौतम का अप्रस्तुत विधान बहुत मौलिक और

प्रभावशाली है। अप्रस्तुत विधान में कवि की अद्भुत अनुसन्धान-क्षमता और उद्भावना-शक्ति का परिचय मिलता है। वक्त को दूर तक फैले हुए उस जाल के रूप में देखना, जिसमें फँसी सन्ध्या-रूपी हिरनी विवश कसमसाती रहती है, निश्चय ही गहरी और सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि की अपेक्षा करता है :

वक्त है या जाल कोई दूर तक फैला
साँझ की हिरनी
विवश जिसमें कसमसाती है।

यह सादृश्य-विधान अक्सर उपमा, रूपक आदि सादृश्यमूलक अलंकारों की सीमा लांघकर प्रतीकों के रूप में अधिक मार्मिक और व्यंजक रूप में प्रयुक्त हुआ है। कई स्थलों पर गहन अर्थों के जटिल बिम्बों की बुनावट के लिए, जातीय अवचेतन में अनुस्यूत मिथकीय सन्दर्भों को प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया गया है। ऐसे बिम्बों की सम्प्रेषणीयता बढ़ गयी है। मिथकीय सन्दर्भों के प्रतीकात्मक प्रयोगों की संरचना वाले बिम्बों की व्यंजकता द्रष्टव्य है :

१. सिन्धु-मंथन तो किया है,
देव-असुरों ने यहाँ फिर
पर नहीं कोई बचा शिव,
जिसे विष युग का पचेगा।

२. सदा ही बनते रहे हैं
लाख के घर तो
कब नहीं चौपड़ बिछी
इतिहास को छलने
प्राप्य लेकिन पार्थ को
तब ही यहाँ मिलता,
जब धधक गाण्डीव से
ज्वाला लगे जलने।

कवि ने अपनी अभिव्यंजना की क्षमता में वृद्धि करने के लिए सादृश्य-विधान मानवीकरण, प्रतीक-योजना के साथ ही भाषिक विचलन का भी उपयोग किया है। जब एक सन्दर्भ की शब्दावली को वहाँ से उठाकर दूसरे सन्दर्भ के साथ जोड़ दिया जाता है तो इस प्रकार के संयोजन से नयी भाषिक संरचना तैयार होती है। जो अपनी व्यंजकता में बेजोड़ होती है। 'बेशर्म मौसम हर गली की आबरू लूटे' पंक्ति में 'बेशर्म' विशेषण और 'आबरू' संज्ञा का प्रयोग विचलन का उदाहरण प्रस्तुत करता है। मौसम को बेशर्म कहकर परिवेश में विचरते असामाजिक तत्त्व को लक्षित किया गया है और गली की आबरू के लूटे जाने के उल्लेख से गली में रहने या विचरने वाली महिलाओं की असामाजिक तत्त्वों द्वारा लूटी जा रही लाज की ओर मार्मिक संकेत किया गया है। निम्नलिखित अवतरण में ढोने का काम मुस्कानों से कराया गया है। ऐसा करने से मुस्कान का मानवीकरण तो हो ही गया है, साथ ही ढोने की क्रिया से जुड़कर मुस्कान के सामान्य अर्थ में भी नयी अंगिमा आ गयी है। सामान्यतः मुक्त मुस्कानें उल्लास और आत्मीयता व्यक्त करती हैं, किन्तु अब वे अपना नैसर्गिक कार्य न करके आत्मीयता और उल्लास के भावों के अभिनय को ढोने के कारण अपना छद्म रूप ही प्रकट करती हैं। पहचानों का मछली की तरह फिसलना भी भाषिक विचलन का नमूना है।

चिकनी मछली-सी मुट्ठी से,
फिसल गयी हैं पहचानें।
अब तो अभिनय ही ढोती हैं,
नकली फीकी मुस्कानें।

श्री गौतम के गीत आधुनिक युग-बोध की जटिलताओं और विषमताओं के मध्य से उभरे हैं। इनमें अनुभूतियाँ चिन्तन की ऊबड़-खाबड़, पथरीली घाटियों से गुजरी हैं। इन गीतों की अनुभूतियाँ गहन हैं और शिल्प प्रौढ़ तथा स्तरीय है। अनुभूतिगत उत्कर्ष और शिल्पगत गठन तथा कसाव के समन्वय से अनूठे गीतों का उदय हुआ है। गहन अनुभूतियों की प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिए विलम्बित गति वाले छन्दों का प्रयोग सफलतापूर्वक किया गया है। यदि श्री गौतम की साधना इसी प्रकार सारस्वत निष्ठा के साथ ज्योतिपंखी गीतों की रचना में सतत अग्रसर रही तो कविता का परिवेश इतना निराशाजनक नहीं रहेगा तथा उन्हें विवशतावश यह नहीं लिखना पड़ेगा :

ज्योतिपंखी गीत तो सब
सो रहे हैं मौन
दिशाएँ धूमिल सभी
काजल नहीं बुहरा।

मैं 'पंख होते हैं समय के' गीत-संग्रह के प्रकाशन के उपलक्ष्य में श्री राजन्द्र गौतम को हार्दिक साधुवाद और बधाइयाँ देता हूँ और कामना करता हूँ कि वे क्षयोन्मुखी, गद्यग्रस्त तथाकथित कविता के इस दौर में अपनी सर्जनात्मक ऊर्जा का इसी प्रकार सही दिशा में उपयोग करते हुए ऐसे ही उत्कृष्ट गीतों की सृष्टि करते रहेंगे।

डॉ हरिश्चन्द्र वर्मा
एम०ए०, पीएच०डी० (हिन्दी-संस्कृत), डी०लिट्०
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,
डीन, मानविकी संकाय,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक।
(१९८९)

हमारी नवीनतम प्रकाशित पुस्तकें

पुस्तक शीर्षक	लेखक	मूल्य
रचना और आलोचना का दोआब : राजेन्द्र कुमार	हितेश कुमार सिंह	₹ 320/-
काँच की कहानी	अनिल कुमार शुक्ला	₹ 350/-
कमलेश्वर के कथा साहित्य में व्यापक सामाजिक यथार्थ	डॉ. उर्मिला बौद्ध	₹ 375/-
काव्य प्रसून (राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह)	महेन्द्र साहा	₹ 200/-
समाचार एजेन्सियाँ और हिन्दी अनुवाद	शिवम चतुर्वेदी	₹ 350/-
समेकित विद्यालय एवं दिव्यांगों की शैक्षणिक समस्याएँ	डॉ० नीता मिश्रा	₹ 450/-
।। श्रीमद्भगवद्गीता ।। (सरल) सजिल्द संस्करण	डॉ० ध्यानचन्द्र अग्रवाल	₹ 350/-
प्रस्थानत्रयी	दिनेश सिंह	₹ 300/-

सम्पूर्ण पुस्तिका सूची के लिए 9792737737 अथवा email : firstprintpublications@gmail.com पर सम्पर्क करें

अपनी पुस्तक प्रकाशित करायें मात्र 21 दिनों में ISBN के साथ

- Text Book
- काव्य संग्रह/Anthology of Poems
- (हिन्दी एवं अंग्रेजी साहित्य)
- Seminar Souvenirs/Abstract Book
- Proceeding Book
- Edited Book
- Thesis to Book

लेखकों, शिक्षाविदों एवं शोधछात्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी — **न्यूनतम लागत में कार्य**

First Print Publications

164/3/50 Tagore Town Prayagraj. (U.P.) 211002
Mob.: 9792737737, 7800905512
email : firstprintpublications@gmail.com

amazon एवं flipkart पर डिस्ट्रीब्यूशन सुविधा उपलब्ध